RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2016-2018

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

प्रकाशन की निरन्तरता ग्यारहवाँ वर्ष 129 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

मासिक पत्रिका

वर्ष 11 ■ अंक 09 ■ पूर्णांक 129 ■ दिसम्बर 2018 ■ ₹ 60/ –(व्यक्ति) ₹ 150/ –(संस्था)

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य
रेखांकित : ओम नागर की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय
कविताएँ : राजीव कुमार त्रिगर्ती,
किशोर काबरा, अशोक गीते
कहानी : राग विदाई : जीवनसिंह ठाकुर

सरोकार

प्रेमचंद जैसी लेखनी और आत्मा किसी में नहीं है
- कमलकिशोर गोयनका

एकाग्र

सायास लेखन और प्रतिबद्ध लेखन के कारण साहित्य में पाठकीयता का संकट गहराता जा रहा है
- नीरजा माधव

नाट्यराग - 5
(रंगकर्म को समर्पित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)
शेखर सेन और शास्त्रीय नाट्य परम्परा
भारतरत्न भार्गव

घरौंदे - 5
(लघुकथाओं पर केन्द्रीत द्वैमासिक स्तम्भ)
डॉ.शील कौशिक की लघुकथाएँ - चयन : वाणी दवे शर्मा

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर विशेष धारावाहिक आलेख
अभिषेक कुमार गौड़

विशेष आलेख : साहित्यसेवी अनुवादक डॉ.रामशंकर द्विवेदी
रेशमी पाण्डा मुखर्जी

समकाल-कथाकाल : सूर्यकांत नागर की कहानी : 'तमाचा'
चयन : मुकेश वर्मा
प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल, नई किताबें

ISSN - 2348-8638

वर्ष 11 ■ अंक 09 ■ पूर्णांक 129 ■ दिसम्बर 2018 ■ रू. 60/- (व्यक्ति) रू. 150/- (संस्था)

समावर्तन

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/-
संस्थागत प्रति अंक 150/- वार्षिक 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय
आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन

दिसम्बर -2018

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : रात्रि! तुम देखती नक्षत्र आँखों से : मुरलीधर चाँदनीवाला 05

अभिमुख : पुस्तक बचाओ-पुस्तक बढ़ाओ : रमेश दवे 06

मेरा नमन : इनसे मिलिये : अजय भट्टाचार्य 07

सरोकार

कमलकिशोर गोयनका

परिचय : कमलकिशोर गोयनका : 08

आत्मकथ्य : प्रेमचंद पर काम करते हुए जीना.... : 09

मॉरिशस बन्धु : अभिमन्यु अनत : 12

भारतीय मनीषा के साधक : पुष्पिता अवस्थी : 13

कलम के सिपाही का एक और सिपाही : रमेश दवे : 14

कुछ उनकी कुछ अपनी : कुसुम गोयनका : 15

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान : तब और अब : आशीष कंधवे : 16

साक्षात्कार : गोयनका जी द्वारा ओम निश्छल के प्रश्नों के उत्तर : 17

चित्रों में कमल किशोर गोयनका : 35

एकाग्र

नीरजा माधव

परिचय : नीरजा माधव : 26

नीरजा माधव की कहानी : सैल्यूट : 26

ललित निबंध : दीया जले आगम का : 30

नीरजा माधव की कविताएँ : 32

कथाकार नीरजा माधव : बी.एम.मिश्र : 32

साक्षात्कार : नीरजा माधव से प्रो.षण्मुखन की बातचीत 33

रेखांकित : ओम नागर की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 21

समकाल-कथाकाल : सूर्यकांत नागर की कहानी : तमाचा : चयन : मुकेश वर्मा : 47

नाट्यराग-5

(समावर्तन के अधबीच नाट्यकर्म केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ) 39-46

कविताएँ : राजीव कुमार त्रिगर्ती, अशोक गीते, किशोर काबरा : 50, कहानी : राग विदाई : जीवनसिंह ठाकुर : 51

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर विशेष : अभिषेक कुमार गौड़ 53

घरोंदे-5 लघुकथाओं पर केंद्रीत द्वेमासिक स्तम्भ , इस बार शील कौशिक की लघुकथाएँ : चयन : वाणी दवे शर्मा : 54

साहित्यिक हलचल : 57 वीक्षा : प्रतापसिंह सोढ़ी, राजेश सक्सेना, अजयकुमार पटनायक : 59 नई किताबें : 63

साहित्य सेवी अनुवादक रामशंकर द्विवेदी द्वारा बांग्ला की 5 कृतियों के अनुवाद पर विशेष आलेख : रेशमी पाण्डा मुखर्जी : 64

अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे

प्रथम पृष्ठ

रात्रि ! तुम देखती नक्षत्र-आँखों से

रात्रि को हमने जड़ता और अंधकार का प्रतिनिधि मान लिया है जबकि वैदिक ऋषि रात्रि को अमृतमयी ज्योति से भरी हुई माँ के स्वरूप में देखता है। वहाँ पर वह नकारात्मक नहीं, अपितु अत्यंत सकारात्मक ऊर्जा से भरी हुई दिखाई देती है । शारदीय और चैत्र नवरात्रि के पवित्र दिनों में दुर्गापाठ से पहले ऋग्वेद के रात्रिसूक्त के पाठ की प्राचीन परम्परा है। ऋग्वेद के दशम मंडल का यह रात्रिसूक्त गायत्री छंद में निबद्ध आठ ऋचाओं का कितना सुंदर काव्य है, इसके लिये यह सूक्त ही प्रमाण है।

रात्री व्यख्यदायती पुःत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित।।
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः।
ज्योतिषा बाधते तमः।।
निः स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ।।

ऋग्वेदः रात्रिसूक्त.10.127.1,2,3

रात्रि !
मेरे जीवन में रोज आती हो तुम
शान्ति का प्रकाश भरने के लिये ।
मैं सोने चला जाता और तुम
देखती रहती नक्षत्र-आँखों से,
तुम श्री हो, मेरी सम्पन्नता हो,
सुरक्षा का दिव्य आश्वासन हो।।1।।

रात्रि !
तुम अमर हो।
तुम्हारे भीतर लहराता कृपा का सागर,
तुम भर लेती अपनी बाँहों में
विशाल अंतरिक्ष को,
इस ऊँची-नीची पृथ्वी को ।
तुम्हारी ज्योति से पराजित है अंधकार।।2।।

रात्रि !
तुम आती हो हृदय में प्रकाश भर कर,
तुम ही बुलाकर लाती हो उषा को।
ज्योति के सूत्र तुम्हारे हाथों में,
तमस् से मोह का भंग होना
तुम्हारी ही इच्छा का प्रतिफल ।।3।।

रात्रि !
आओ भर लो अपने अंक में हमें ।
दिन भर के थके हुओं को घर ले चलो,
जैसे ले चलती हो पंछियों को नीड़ में ।।4।।

ये गाँव, ये बस्तियाँ
विश्राम की मुद्रा में हैं,
नर-नारी पशु-पक्षी लौट रहे अपने घर,
काम से लौटते श्रमिक, व्यापारी
तुम्हारे अनुग्रह की प्रतीक्षा में ।।5।।

रात्रि !
हिंसातुर भेड़ियों को दूर छोड़ आओ।
दुष्ट, चोर, लोभियों को हमसे दूर करो।
अपने आँचल में ढँक कर हमें
रोग, शोक, विषमता से मुक्त दो।।6।।

रात्रि !
अंधकार मुझे पीस डालने को आतुर,
कलुषित जड़ता ने घेर लिया है मुझे।
तुम मेरे जीवन में उषा को ले आओ,
और मुझे ऋणमुक्त कर दो।।7।।

रात्रि !
मैं तुम्हारे पास में हूँ
उज्ज्वल रश्मियों के साथ
पार जाने को व्याकुल।
दिव्य प्रकाश लेकर उतर रही है उषा ।
तुम मुझे प्रकाश के वृत्त में
खींच ला हो।
मैं तुम्हारी जयजयकार करता हूँ ।।8।।

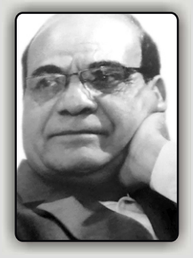

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

पुस्तक बचाओ-पुस्तक बढ़ाओ

रमेश दवे

क्या पुस्तक का अंत हो गया है? पश्चिम के विद्वानों ने महाकाव्य और महा-आख्यानों के अन्त के बाद यह फतवा भी दिया कि लेखक का, लेखन का और साहित्य का अन्त हो चुका है और इसलिए पुस्तक भी मर चुकी है लाइब्रेरियों में पड़ी-पड़ी पुस्तकें ऐसी लग रही है जैसे वे अपने अन्दर मौजूद ज्ञान का मातम मना रही हों। यूरोप तो सदैव ही त्रासदियों का महाद्वीप रहा है फिर चाहे वहाँ ग्रीक नाटककार सोफोक्लीज़ की दुखान्त-त्रयी के नाटक हो या शैक्सपीयर की चार महान ट्रेजेडी हो। हेमलेट का मृत्यु-विज्ञान 'टुबी और नॉट टुबी' के अन्तरद्वंद्व का दुखद अंत है तो किंग लेयर अपनी ही व्यथा का पारिवारिक शिकार है, मेकबेथ लेडी मेक बेथ की महत्त्वाकांक्षी और हत्यारी प्रवृत्ति का दुखद रूप है तो ऑथेलो का दुख एक रूमाल की ट्रेजेडी में उड़ रहा है। ऐसे में क्या यह नहीं लगता कि सम्पन्न, संभ्रांत कहलाने वाला यूरोप संपत्ति के सुख के बजाए महत्त्वाकांक्षाओं की पीड़ा से ग्रस्त था और आज भी है जिसका परिणाम है यूरोप में कभी सात वर्षीय युद्ध हुए, कभी क्रीमियन युद्ध हुआ, कभी तीस-वर्षीय युद्ध हुआ तो एक युद्ध तो ऐसा हुआ जो सौ वर्ष तक चला। दो-दो विश्वयुद्ध भी यूरोप ने पैदा किए और जापान पर फेंके गए अणु बम यूरोप के हिंसक पशुबल के अमानवीय प्रमाण हैं।

पुस्तकों ने ही बताया था कि फ्रांस की राज्य-क्रांति तो रूसो जैसे महान लेखक के शब्दों से पैदा हुई थी और अगर रूसो नहीं होता तो फ्रांस की क्रांति भी नहीं होती। उसी ने सर्वप्रथम स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के तीन सूत्र वाक्य दिए थे। क्रांति हुई और नेपोलियन ने अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा से क्रांति की मशाल को फूँक मार कर उड़ा दिया। फिर विश्वविजय का एक और क्रूर स्वप्न लेकर आया हिटलर जिसने दूसरे विश्वयुद्ध को पैदा किया और लगभग सत्तर लाख यहूदियों की गैस-चेम्बर्स में हत्या कर दी। आज भी पुस्तकें उस नृशंस हत्याकाण्ड की गवाह है।

रूस में एक और क्रांति का विस्फोट हुआ बोल्शेविक क्रांति के नाम से। ज़ारों, जागीरदारों, जमींदारों के विरुद्ध जन-आक्रोश फूट पड़ा। वर्ष 1905 की क्रांति विफल हो गई थी, उसी वर्ष रूस जापान से युद्ध में हार गया था, मगर 1905 के बारह वर्ष बाद वास्तविक जन क्रांति हुई जिसके नायक लेनिन, ट्राटस्की जैसे नेता थे। कहा जाता है इस क्रांति में भी रूस में लगभग एक करोड़ लोग मारे गए या यातना शिविरों में बंदी बनाये गए। अकेले लेनिनग्राद जो पहले पीटर ग्राद था में पाँच लाख से अधिक लोग मारे गये थे। इस प्रकार चाहे सम्राटों का राज हो, या क्रांतियों का, यूरोप सदैव हिंसक राजनीति और विद्रूप महत्वाकांक्षाओं से युद्ध पैदा करने वाला क्षेत्र बना। इसके विपरीत यदि हम भारत जैसे देश को देखें तो यहाँ युद्ध नहीं, बुद्ध पैदा हुए, वीर नहीं महावीर पैदा हुए, हिंसक आंधी नहीं, गांधी पैदा हुए। यहाँ तक कि मार्टिन लूथर किंग जूनियर, अब्राहम लिंकन भी अपने शांतिवाद पर शहीद हो गए और इस हिंसा से जाति, क्षेत्र, धर्मवादी, कट्टरपन का क्रूर विस्तार ऐसा हुआ कि भारत जैसे अहिंसक, अयुद्धवादी, और शांतिप्रिय देश में गांधी की हत्या कर दी गई, यहाँ तक कि गांधी नाम धारण करने वाली इंदिरा गांधी और राजीव गांधी भी इस हिंसा के शिकार हुए। क्या इसका तात्पर्य यह नहीं कि गांधी शब्द अस्तित्व से, पुस्तक से, विचार से मिटा देने की यह प्रौद्योगिकी हिंसावादी शक्ति का ही एक परिणाम था और है? आज भी तकनीक पुस्तक के विरुद्ध अपना संजाल फैलाए हुए है।

पुस्तकें अप्रासंगिक हो गई है। पुस्तक को प्रौद्योगिकी का नेटवर्क, वेबसाइट निगल गया है और लेखन एप या तरह-तरह के प्रौद्योगिकी या तकनीकी संसाधनों का गुलाम हो गया है। अब एक नया आन्दोलन खड़ा होना चाहिए। जिस तरह बेटी बचाओ, बेटी बढ़ाओ एक नारा है वैसे ही पुस्तक बचाओ, पुस्तक बढ़ाओ का भी अभियान चलाना होगा क्योंकि पुस्तक भी आखिर ज्ञान की बेटी ही है। हमें याद रखना होगा कि पुस्तकें युद्ध नहीं रचती वे ज्ञान रचती है, संवेदन रचती है मनुष्य के अन्दर करूणा जगाती है और मानवीय सभ्यता के विकास की प्रतीक होती है। इसलिए ऐसा न हो कि प्रौद्योगिकी के हिंसक जबड़ों में पुस्तक समा जाए।

इस अंक में प्रेमचंद साहित्य को हृदयंगम कर विशेषज्ञता अर्जित करने वाले वरिष्ठ लेखक कमलकिशोर गोयनका के विविधआयामी व्यक्तित्व पर जहाँ सरोकार केन्द्रीत है वहीं ख्यात कथाकार नीरजा माधव के कृतित्व और व्यक्तित्व पर एकाग्र संयोजित है। रंगकर्म को समर्पित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ नाट्यराग भी इस अंक को विशेष बना रहा है।

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये ....

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

भूपेन्द्र हरदेनिया

'समावर्तन' के सहयोगियों की सूची लंबी है तथा प्रसन्नता इस बात की है कि अत्यन्त सीमित संसाधनों के बावजूद यह पत्रिका अनवरत प्रकाशन के ग्यारह वर्ष पूर्ण करने की ओर अग्रसर है। निश्चित ही इस अनवरत यात्रा में जहाँ इसके वार्षिक ग्राहकों, विज्ञापनदाताओं का सहयोग प्रमुख है, वहीं इस पत्रिका के लोकप्रिय हुए एकाग्र, रंगशीर्ष, सरोकार, रेखांकित, समकाल कथाकाल, वक्रोक्ति, काव्यराग, कथाराग, मनोराग, नाट्यराग, लोकराग तथा घरोंदे आदि स्तम्भों के लिए अपेक्षित सामग्री उपलब्ध कराने वाले सहयोगियों का सहयोग भी अहम है। समावर्तन के लिये एकाग्र, सरोकार आदि स्तम्भों के लिए संबंधित व्यक्तित्व से साक्षात्कार करने वाले तथा समय-समय पर पुस्तकों की समीक्षा/आलेख आदि सामग्री उपलब्ध कराने वालों में सबलगढ़(मुरैना) म.प्र. के डॉ.भूपेन्द्र हरदेनिया भी है। उनके व्यक्तित्व और सहयोग के बारे में समावर्तन के सम्पादक श्री श्रीराम दवे जी कुछ इस तरह बता रहे हैं।

''विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन से एमफिल तथा पीएच.डी. करने वाले डॉ.भूपेन्द्र हरदेनिया ने ''काव्य रचना-प्रक्रिया : सैद्धांतिक विवेचन'' जैसे गूढ़विषय को अपनी पीएच.डी. का शोध विषय बनाया तथा अक्टूबर 2009 में उपाधि प्राप्त की। म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कुछ प्रकाशनों के कुशल सम्पादनों के लिए सम्मेलन की मानद आजीवन सदस्यता से सम्मानित होने वाले भूपेन्द्र जी यों तो पिछले तेरह वर्षों से क्रमशः सेंधवा, दमोह, पलेरा, ब्यावरा, भोपाल और सबलगढ़ के महाविद्यालयों में अतिथि विद्वान के रूप में अध्यापन करते रहे हैं तथापि वे राष्ट्रीय स्तर की 15 संगोष्ठियों 4 कार्यशालाओं तथा 5 राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी भी करते रहे हैं। आश्वस्त, वीणा, समय आगम, भारत वाणी, मानस वंदन, मध्यभारती, शोध मंथन, शब्दब्रह्म, मालती, आर्टिस्ट नेरेशन, क्वेस्ट, जिज्ञासा, शोध प्रेरक, संदर्भ गवेषणा, समालोचना, रचना, मीडिया विमर्श, अक्षर वार्ता, दी कोट आदि पत्रिकाओं में आलेखों, समीक्षाओं आदि के माध्यम से सतत सक्रिय डॉ.भूपेन्द्र हरदेनिया की अभी तक दो पुस्तकें ''आचार्य पूनमचंद तिवारी और उनका खजुराहों'' एवं ''रचना प्रक्रिया विमर्श'' प्रकाशित हो चुके हैं तथा तीन पुस्तकें प्रकाशन की प्रक्रिया में है।

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विद्यालय भोपाल में अतिथि विद्वान रह चुके हरदेनिया विश्वविद्यालय की अनुशासन कमेटी, विभिन्न खेलकूद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सह समन्वयक प्रायोगिक परीक्षाओं के आंतरिक प्रशिक्षक और प्रश्न पत्र नियोजक रह चुके हैं। शास्त्रीय संगीत गायन एवं वादन में निपुण यह युवा व्यक्तित्व कम्प्यूटर एवं अन्तरजाल की आवश्यक जानकारियों से युक्त है तथा डॉ.सी.वी.रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर से पीजीडीसीए की अर्हता प्राप्त हैं। बीएड और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली की हिन्दी साहित्य में नेट परीक्षा उत्तीर्ण भूपेन्द्र हरदेनिया अपनी सृजनात्मकता और सक्रियता बनाये हुए हैं। समावर्तन के प्रति उनके सहयोग को नमन करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामनाएँ....

एकाग्र

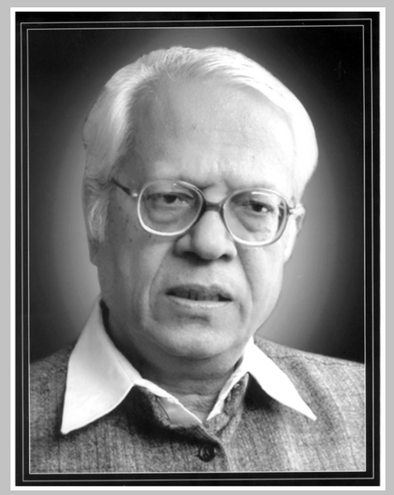

कमलकिशोर गोयनका

संपर्क : - ए-98 अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052
फोन- 011-27219251, 271115465, 42475051
मो. 9811052469 ई-मेल - kkgoyanka@gmail.com

जन्म : 11 अक्टू.1938 बुलंदशहर (उत्तर-प्रदेश) **पिता का नाम :** श्री चन्द्रभान गोयनका

कार्यक्षेत्र : एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जाकिर हुसैन पोस्ट-ग्रेजुएट (सांध्य) महाविद्यालय, दिल्ली

शिक्षा : एम.ए.(हिन्दी) प्रथम श्रेणी, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1961 पीएच.डी. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-1972 डी.लिट्.रांची विश्वविद्यालय, रांची 1984

शोध कार्य करने का अनुभव : 25 वर्ष, पाँच छात्रों को पीएच.डी. के लिए शोध-निर्देशन किया और उन्हें उपाधि प्राप्त हुई, 30 शोध-प्रबंधों का परीक्षण किया।

शोध कार्य की विशेषज्ञता : हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद के विशेषज्ञ के रूप में देश-विदेश में विख्यात तथा प्रेमचंद संबंधी शोध की मौलिकता एवं उनके नए शोध निष्कर्षों को सर्वत्र मान्यता तथा प्रवासी हिन्दी साहित्य के विशेषज्ञ।

प्रेमचंद संबंधी कार्य : ⊙ प्रेमचंद के जीवन, विचार तथा साहित्य के शोध पर लगभग पचास वर्षों से निरन्तर कार्यरत तथा शोध एवं अध्ययन की नई दिशाओं का उद्घाटन, प्रेमचंद पर आलोचकों की पुरानी मान्यताओं को खारिज करके नई मान्यताओं एवं निष्कर्षों का प्रतिपादन, प्रेमचंद के हजारों पृष्ठों के लुप्त तथा अज्ञात साहित्य को खोजकर साहित्य-संसार के सम्मुख प्रस्तुत करना तथा प्रेमचंद की हिन्दी में पहली कालक्रमानुसार जीवनी का लेखन। ⊙ प्रेमचंद पर पीएच.डी. तथा डी.लिट करने वाले भारत के एकमात्र शोधार्थी तथा प्रेमचंद संबंधी अपने अनुसंधान कार्य से प्रेमचंद की एक नई 'भारतीयता' से परिपूर्ण मूर्ति की संरचना का कार्य करना, प्रेमचंद पर लगभग 350 लेख, शोध-आलेख प्रकाशित। ⊙ प्रेमचंद की जन्म शताब्दी पर दिल्ली में प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति की स्थापना तथा उसके संस्थापक महासचिव, इस समिति की संरक्षक तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी बनी, जैनेन्द्र कुमार की अध्यक्षता तथा प्रो.विजेंद्र स्नातक के संयोजकत्व में कई राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों का आयोजन करना। ⊙ प्रेमचंद जन्म-शताब्दी पर लगभग 50 छोटी एवं बड़ी पत्र-पत्रिकाओं को 'प्रेमचंद विशेषांक' निकालने के लिए प्रेरित करना तथा रचनात्मक सहयोग देना। ⊙ प्रेमचंद के मूल दस्तावेजों, पत्रों, डायरी, बैंक पास-बुक, फोटोग्राफों, पाण्डुलिपियों की लगभग 3000 वस्तुओं का संग्रह करना तथा भारत सरकार के सहयोग से सन 1980 में 'प्रेमचंद शताब्दी' पर देश-विदेश में 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' का आयोजन करना तथा नई दिल्ली टेलीविजन के लिए प्रेमचंद पर एक फिल्म बनाने में प्रमुख रूप से योगदान करना। ⊙ प्रेमचंद शताब्दी वर्ष-1980 से अब तक लगभग 70 नगरों, विश्वविद्यालयों, अकादमियों, साहित्यिक संस्थाओं द्वारा प्रेमचंद पर व्याख्यान के लिये आमंत्रित करना तथा सम्मानित करना। ⊙ भारत के राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह से वर्ष 1986 में 'भारतीय भाषा परिषद', कोलकाता द्वारा 'प्रेमचंद विश्वकोश' पर दिए गए पुरस्कार को प्राप्त करना तथा उनके कर-कमलों द्वारा सम्मानित होना। ⊙ प्रेमचंद शताब्दी पर मॉरिशस की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' में प्रेमचंद पर कार्यक्रम का आयोजन कराना और भारत सरकार द्वारा 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में वहाँ भेजा जाना, मॉरिशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ.शिवसागर रामगुलाम की अध्यक्षता में कार्यक्रम होना और उनके द्वारा सम्मानित होना। ⊙ 'प्रेमचंद अकादमी' और 'प्रेमचंद संग्रहालय' की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहना। ⊙ 'हिन्दी अकादमी' दिल्ली द्वारा दो बार पुरस्कृत और सम्मानित। ⊙ मॉरिशस के महात्मा गांधी इंस्टिट्यूट द्वारा सन 1989, 1994 तथा 1996 में प्रेमचंद पर अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियों की अध्यक्षता तथा व्याख्यान के लिए आमंत्रित करना तथा मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के प्रकाशन तथा मूल्यांकन में सक्रियता से कार्य करना।

कृतियाँ : प्रेमचंद पर 31 पुस्तकें प्रकाशित, प्रेमचंद पर 5 पुस्तकें प्रकाशाधीन, प्रेमचंद पर 3 पुस्तकें शीघ्र पूर्ण होने वाली, अन्य प्रकाशित पुस्तकों की संख्या लगभग 25 है।

प्रेमचंद संबंधी शोध को मान्यता : प्रेमचंद संबंधी शोध कार्य पर देश-विदेश के अनेक विद्वानों द्वारा मान्यता के साथ-साथ कई साहित्यिक पत्रिकाओं ने कमलकिशोर गोयनका के कृतित्व और व्यक्तित्व पर विशेषांकों का प्रकाशन किया।

साहित्यिक संस्थाओं से संबंध : * संस्थापक महासचिव - 'प्रेमचंद जन्म शताब्दी राष्ट्रीय समिति', दिल्ली (1979 से) * प्रधानमंत्री- भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद (1993 से मई 1997 तक) * अध्यक्ष - अखिल भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली प्रदेश (1995 से 2000 तक) * सदस्य कार्यकारिणी - हिन्दी अकादमी, दिल्ली सरकार, दिल्ली (1995 से 1999 तक) * सदस्य कार्यकारणी - ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया, नई दिल्ली * उपाध्यक्ष - भारतीय लेखक संगठन, नई दिल्ली * आजीवन सदस्य - दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी अनुसंधान परिषद, दिल्ली * सदस्य : सरकारी समिति- विश्व हिन्दी सम्मेलन लंदन 1999, सूरीनाम 2003 तथा मॉरिशस 2018 * अध्यक्ष - वित्तीय समिति, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार) * सदस्य - सामान्य सभा, भारतीय सांस्कृतिक सम्बद्ध परिषद, भारत सरकार * सदस्य - पुस्तक चयन समिति, राजा राममोहन राय लाईब्रेरी फाउण्डेशन (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) * सदस्य - अधिकारिक परिषद, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद * सदस्य - सामान्य परिषद, साहित्य अकादेमी (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) 2018-23

विदेशों में हिन्दी साहित्य के लिए विशेष कार्य : मॉरिशस के अतिरिक्त अमेरिका, इंग्लैण्ड, यूरोप, एशिया, फिजी, सूरीनाम, जापान आदि देशों तथा भारत की अप्रवासी जनसंख्या वाले देशों के हिन्दी साहित्य को भारत में प्रकाशित, प्रचारित तथा स्थापित करने एवं उसके उचित मूल्यांकन के लिए इधर कुछ वर्षों से प्रयत्नशील तथा इसके लिए दिल्ली में एक 'अप्रवासी हिन्दी साहित्य मंच' जैसी संस्था की स्थापना के लिए, जिससे अप्रवासी हिन्दी साहित्य को उचित मान्यता मिलने के साथ भारतीय विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम में भी उसे उचित स्थान दिलाया जा सके। साहित्य अकादमी में 'प्रवासी साहित्य' की स्थापना में भागीदारी तथा अभिमन्यु अनत को मानद सदस्यता से सम्मानित करने में सक्रीय योगदान।

पुरस्कार एवं सम्मान : * भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता का 'नथमल भुवालका पुरस्कार' से सम्मानित * हिन्दी अकादमी, दिल्ली सरकार द्वारा दो बार पुरस्कृत एवं सम्मानित * भारत के कई महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, साहित्यिक अकादमियों तथा संस्थाओं द्वारा प्रेमचंद संबंधी मौलिक कार्य के लिए सम्मानित * उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ साहित्य भूषण पुरस्कार 1998 * केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा का पं.राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार 2001 * हिन्दी प्रचारिणी सभा, मॉरिशस, 2002 * भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार (सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार) 2008 * विष्णु प्रभाकर पुरस्कार, बरेली 2011 * आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार, साहित्य अकादेमी भोपाल 2011 * अखिल भारतीय मारवाड़ी युवा मंच, कोलकाता द्वारा भावरमल सिंघी सम्मान * के.के.बिरला फाउण्डेशन का 'व्यास सम्मान' 2014 * डॉ.हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान, कोलकाता 2018

वर्तमान कार्यक्षेत्र : उपाध्यक्ष केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल, आगरा (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार) केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा को संचालित करने वाली अधिकारिक संस्था, उपाध्यक्ष कार्यालयीन, केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल, आगरा (मुख्यालय)।

आत्मकथ्य

प्रेमचंद पर काम करते हुए जीना चाहता हूं...

कमल किशोर गोयनका

मैं 11 अक्टूबर को अस्सीवर्ष का हो गया। कितनी जल्दी, देखते-देखते अस्सीवर्ष का हो गया। विश्वास नहीं होता पर मेरा शरीर, मेरे मित्र, परिवार तथा समाज सभी याद दिलाते रहते हैं कि अस्सी के हो गये हो, ध्यान से रहो और ध्यान से चलो और सब काम-धाम छोड़कर भगवान का भजन करो। मैं प्रायः हर दो-चार दिन में इसे सुनता रहता हूँ और फिर अपने काम पर लग जाता हूँ। आखिर इस उम्र में कोई काम न हो तो जिंदगी कटे कैसे। सच यह है कि जिंदगी जो भी बची है, उसे सो कर, टेलीविजन देखकर, मोबाइल में डूबकर और परनिंदा में आनंद लेकर काटना नहीं चाहता। जानता हूँ एक जिंदगी में किसी के काम पूरे नहीं होते, पर यह तो मुमकिन है कि जो भी साँसें बची हैं उनका उपयोग निर्द्वंद्व होकर, निर्भय होकर पूरी मस्ती के साथ किया जाये और जो काम अधूरे हैं और जो शुरू करने के इंतजार में हैं, उन्हें पूरी लगन से किया जाये। मुझे तो यही जीवन-मंत्र सही लगता है। क्या यह बेहतर है कि आदमी मृत्यु के इंतजार में बैठा रहे या यह बेहतर है कि मृत्यु आये और आपको मालूम ही न पड़े कि वह कब आई और कब आपको ले गई ?

कुछ समय पहले एक किताब आई थी-'अस्सीका काशी'। उसकी खूब चर्चा हुई। होती क्यों नहीं।अस्सी तक पहुँचना एवरेस्ट की चढ़ाई से भी कठिन काम है और वह भी आपके हाथ में नहीं है, अन्यथा कौन नहीं चाहता कि वह अस्सी पार करे। यह परम परमात्मा की कृपा है जो अस्सी पार करने का सौभाग्य देता है। काशीनाथ सिंह सौभाग्यशाली हैं और रामदरश मिश्र, नामवर सिंह भी भाग्यशाली हैं जो नब्बे को पार करके सौ तक पहुँचने के लिए दौड़ लगा रहे हैं। वे सौ तक पहुँचेंगे तो कुछ अन्यों को भी इससे प्रेरणा मिलेगी और हिंदी साहित्य में सौ वर्षीय लेखकों की एक अलग दुनिया बन जायेगी। यदि मैं उस दुनिया का सदस्य बन सका तो भाग्यशाली होऊँगा। सच तो यह है- गालिब के शब्दों में-*'मौत का एक दिन मुअय्यन है, पर क्यों रात भर नींद नहीं आती।'* नींद नहीं आती तो अपने काम पर बैठ जाता हूँ और तब न नींद की याद रहती है न मौत। और यही जीवन का आनंद है।

मुझे आत्म-कथ्य लिखना है। मैं व्यर्थ में बह रहा हूँ। मेरा जन्म 11 अक्टूबर,1938 को बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। मेरे दादाश्री

बद्रीदास गोयनका मंडावा (राजस्थान) से आकर बुलंदशहर में स्थापित हो गये थे। मेरा जन्म लगभग सौवर्ष पुरानी हवेली में हुआ। परिवार में जमींदारी थी और नगर में प्रतिष्ठा थी। मेरी दादीश्री कुंजिकुंवरि गोयनका ने मेरे दादाश्री की असमय मृत्यु पर सन्1916 में मोहल्ला शीतलगंज, बुलंदशहर में एक भव्य श्री लक्ष्मीनारायण का मंदिर उनकी आत्मा की शांति के लिए बनवाया था। उस समय राजा लक्ष्मण सिंह जिन्होंने 'मेघदूत' का अनुवाद किया था, बुलंदशहर के कलेक्टर थे और मेरे दादाश्री के उनसे अच्छे संबंध थे। वे बुलंदशहर म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष भी रहे थे। मेरे पिताश्री चंद्रभान गोयनका कांग्रेसी थे, जीवन-पर्यंत खद्दर पहनते रहे और 'शुद्ध खादी भंडार' की स्थापना की और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मेरठ के बाद बुलंदशहर को खादी के उत्पादन का केंद्र बनाया। मेरी माताश्री इलायची देवी गोयनका पटना की कनोडिया परिवार की थीं। स्वाभिमानी थीं, धार्मिक स्वाभाव की थीं और बचपन में 'श्रीभगवत् गीता','रामचरितमानस','हनुमान चालीसा' का नियमित पाठ करने की आदत डालदी। मंदिर में 'जानकी पुस्तकालय' था और उसमें 'चाँद','माधुरी','हंस','सरस्वती' आदि क पत्रिकाएँ आती थीं और प्रेमचंद आदि की पुस्तकें भी आती रहती थीं। इस पुस्तकालय ने मेरे अंदर साहित्य के प्रति अभिरूचि पैदा की और बी.ए. करने तक मैं साहित्य का विद्यार्थी बन चुका था। मैंने बी.ए.में एक बार जयशंकर प्रसाद की 'आँसू' के पदों का गायन किया था और बच्चन, नीरज आदि की कविताएँ सुनकर यह संस्कार और भी पुष्ट होता गया। बुलंदशहर के डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज से सन् 1958 में बी.ए.किया तो आगे क्या करना है, यह समस्या आई। मैं एम.ए. करके हिंदी का प्रोफेसर बनना चाहता था,पर घर तो व्यापार की ओर धकेल रहा था। फैसला कठिन था लेकिन मैंने दिल्ली जाने का निर्णय किया। कुछ समय के लिए मेरी बहन सावित्री पोद्दार की ससुराल में ठहरने का अवसर मिला तो मैंने नब्बे रूपये महीने की नौकरी की, ईवनिंग से एम.ए. प्रथम श्रेणी में किया और सितंबर,1962 में दो सौ रूपये महीने दिल्ली कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय, इसका नाम अब 'जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज' है) में हिंदी का लेक्चरार हो गया। मेरे जीवन के ये चारवर्ष पूर्णतः संघर्ष-काल था। दिल में धैर्य था, हिम्मत थी,असुविधाओं के बीच रहने की आदत बना ली थी और बस एक ही लक्ष्य था- दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापक होना है। वह जमाना डॉ. नगेंद्र का था। वे प्रतीक-पुरूष थे। उनका व्यक्तित्व मोहक था और प्रेरक भी। डॉ. नगेंद्र की राह ही मुझे अपने मन की राह लगी। व्यापार की राह भी अपनी ओर खींच रही थी, शादी के लिए तीन मिलों के मालिक बनने का प्रस्ताव भी आया लेकिन मैं तो साहित्य-पथ की सहचरी की तलाश में था और वह पूरी हुई। मेरी पत्नी कुसुम गोयनका साहित्य की छात्रा रही और जिसने आगे चलकर बच्चों के लिए कहानियाँ लिखीं। आज भी वह मुझसे अधिक साहित्य पढ़ती हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज में हिंदी अध्यापक होने से मेरे जीवन की दशा तय हो गई । तभी विवाह हुआ और पीएच.डी. का विषय भी तय हुआ। डॉ. नगेंद्र के आदेश पर प्रेमचंद पर पीएच.डी की। आठ वर्ष लगे और वर्ष 1972 में पीएच.डी मिलने की घोषणा हुई। सवाल पैदा हुआ कि अब क्या करना है? पीएच.डी. के बाद क्या ? और एक रात विचार-प्रवाह में 'प्रेमचंद विश्वकोश' के चार खंडों की कल्पना पैदा हु । शायद इसे ही लोग इल्हाम कहते हैं, पर कुछ भी हो इल्हाम तो मानवीय शरीर के तंतुओं से ही होता है। आदमी स्वयं को गौरवान्वित करने के लिए इल्हाम का दर्जा दे देता है। उस समय हिंदी के प्रसिद्ध लेखक गंगाप्रसाद विमल मेरे साथी थे और वे मेरे आग्रह पर प्रेमचंद के बड़े बेटे श्रीपतराय से मिलाने ले गये। मैंने प्रेमचंद पर अपनी योजना रखी और वे सहयोग देने के लिए तैयार हो गये। मैंने विमल के साथ 'प्रेमचंद विश्वकोश' का काम शुरू किया पर वर्ष 1972-73 के एक 'प्रगतिशील लेखक संघ' के सम्मेलन में नये बने युवा कामरेड सुधीश पचौरी ने एक हिंदूवादी तथा प्रतिक्रियावादी लेखक को सहयोग देने पर गंगाप्रसाद विमल को पार्टी से निकालने का प्रस्ताव किया। इस पर विमल ने मेरा साथ छोड़ दिया। मैं हतप्रभ था, क्योंकि मुझे तब इस घटना की जानकारी नहीं थी। बाद में मैंने 'आलोचना' पढ़ी तो उसमें उसका पूरा विवरण छपा है। उसके बाद प्रगतिशील लेखकों ने मुझे अपना शत्रु मान लिया। मलयज ने वर्ष 1979 की डायरी में प्रेमचंद पर मेरे नये-नये शोध-निष्कर्षों में आर.एस.एस. से मेरे संबंधों को दोषी ठहरा दिया और उसके बाद यह सिलसिला नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र, मधुरेश, विशंभरनाथ उपाध्याय, कमर रईस आदि कई वामपंथियों से गुजरता हुआ आज भी थोड़ी-बहुत साँसें ले रहा है।

प्रेमचंद पर मेरा शोध-ग्रंथ छप गयाथा, पर उसके बाद 'कादंबिनी', 'सारिका', 'धर्मयुग' आदि में मेरे लेख छपने लगे तो मार्क्सवादियों की टोली इकट्ठा होने लगी और मैं उनका घोषित शत्रु बन गया। तभी प्रेमचंद की जन्म-शताब्दी पर मैंने 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बना । जैनेंद्र जी अध्यक्ष बने और उनके प्रस्ताव पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी संरक्षक और मैं महामंत्री। इससे महादेवी वर्मा, उमाशंकर जोशी, वेदप्रताप वैदिक, विजयेंद्र स्नातक, नगेंद्र आदि भी जुड़े पर अफसोस है कि मुझे केवल विजयेंद्र स्नातक आदि का ही सहयोग मिला। जैनेंद्र जी को उनके कुछ पुराने मित्रों ने ऐसा भड़काया कि वे सहयोग देने में आनाकानी करने लगे। वे मुझे इंदिरा गांधी से मिलते समय अपने साथ नहीं ले गये और श्रीमती गांधी से सहयोग भी नहीं माँगा। यहाँ तक कि कनॉट प्लेस में एक बिल्डिंग का केंद्रीय सरकार ने प्रेमचंद समिति को अलॉटमेंट भी कर दिया लेकिन उसका कब्जा भी नहीं लेने दिया। उनके इस व्यवहार के कारण 'प्रेमचंद अकादमी' तथा 'प्रेमचंद संग्रहालय' की स्थापना और 'प्रेमचंद' शीर्षक पत्रिका शुरू करने का स्वप्न धरा रह गया। वेदप्रताप वैदिक ने जैनेंद्र जी को बहुत समझाया पर वे मेरे संबंध में अपनी राय न बदल सके। मेरे जीवन का यह खेदजनक प्रसंग है।

प्रेमचंद-शताब्दी पर एक कार्यक्रम फिक्की, नई दिल्ली में हुआ। अमृतराय ने 'प्रेमचंद विश्वकोश' का लोकार्पण किया और वामपंथियों के घोर विरोध के बावजूद लगभग तीस हिंदी के प्रतिष्ठित लेखकों, आलोचकों तथा प्रोफेसरों ने मुझे 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में स्थापित कर दिया। प्रेमचंद-शताब्दी पर मैंने अपने कार्य का विस्तार किया-लगभग चालीस पत्रिकाओं के प्रेमचंद विशेषांक निकलवाये, साहित्य अकादमी के प्रांगण में 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' लगाई, दूरदर्शन के लिए प्रेमचंद पर वृत्त-चित्र बनाया तथा देश-विदेश में प्रेमचंद समारोह कराये और स्वयं भी भाग लिया। मॉरिशस में मेरे प्रस्ताव पर वहाँ की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने अगस्त-सितंबर,1980 में 'प्रेमचंद शताब्दी समारोह' किया और भारत सरकार ने मुझे तथा जैनेंद्र जी को भारत का प्रतिनिधि बनाकर भेजा और तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने मेरे द्वारा आयोजित 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' का उद्घाटन किया और मॉरिशस के कई स्थानों पर कार्यक्रम हुए।

प्रेमचंद पर मेरा काम कभी बंद नहीं हुआ। रात-दिन लाइब्रेरी में खाक छानकर तथा सैकड़ों पत्र लिखकर तथा दर-दर खोजता हुआ प्रेमचंद का लगभग 1400पृष्ठों का अज्ञात-अप्राप्य साहित्य खोजा और 1988 में भारतीय ज्ञानपीठ ने 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य'(दो खंड)शीर्षक से प्रकाशित किया। इसके प्रकाशन को राजेंद्र यादव तक ने'हंस' में इस कार्य को उच्चकोटि का शोधकर्म माना और सुधीश पचौरी तक ने 'नवभारत टाइम्स' में लंबा लेख लिखा, परंतु नामवर सिंह ने मुंह से तारीफ तो की पर लिखा एक शब्द नहीं और बाद में तो वे मारवाड़ी सेठ कहकर मजाक उड़ाते रहे। वामपंथी आलोचक पार्टी के उद्देश्यों-आदेशों की जंजीर में बँधे गुलाम होते हैं जिनका स्वविवेक

खत्म हो जाता है। इसके बाद तो मेरी प्रेमचंद पर बराबर किताबें आती रहीं, वामपंथी विरोध करते रहे लेकिन प्रशंसा एवं समर्थन के आलोचकों-पाठकों का एक बड़ा राष्ट्रव्यापी समूह सामने आया जिससे प्रगतिशीलों का स्वर मध्यम होता गया और अब वे पराजित होकर मौन धारण करने लगे हैं। प्रेमचंद ने लिखा था कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है, इन वामपंथियों ने राजनीति को साहित्य के आगे बैठा दिया; प्रेमचंद ने साहित्य से 'भारतीय आत्मा' की रक्षा की बात कही थी, इन वामपंथियों ने मार्क्सवाद की रक्षा एवं 'विचार का साम्राज्य' फैलाने तक सीमित करके भयंकर अपराध किया। यहाँ तक कि प्रेमचंद के 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से 'आदर्शवाद' को निकालकर आधे प्रेमचंद का बहिष्कार कर दिया और उन्हें कपोल-कल्पना करने का अपराधी बना दिया। इन वामपंथी लेखकों-आलोचकों ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' में प्रेमचंद के दिये व्याख्यान तक के संबंध में झूठ बोला। डॉ. रामविलास शर्मा से लेकर प्रायः सभी वामपंथियों ने लिखा कि प्रेमचंद ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की थी। स्थापना तो लंदन में सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनंद आदि युवकों ने की थी जो उच्च परिवारों-नवाबों के बेटे थे और जो लंदन उच्च-शिक्षा के लिए गये थे। इनमें सज्जाद जहीर नवाब के बेटे थे और वे केवल उर्दू प्रेमचंद को ही जानते थे। उनमें कोई भी हिंदी का ज्ञाता नहीं था। इसके साथ प्रेमचंद के व्याख्यान में एक शब्द भी मार्क्सवाद के समर्थन में नहीं है। प्रेमचंद बार-बार आध्यात्मिक आनंद, आध्यात्मिक संतोष आदि की चर्चा करते हैं और 'मन का संस्कार' करना साहित्य का उद्देश्य बताते हैं। अफ़सोस है, किसी आलोचक ने इस व्याख्यान को नहीं पढ़ा अन्यथा बहुत पहले वामपंथियों की साजिश स्पष्ट हो जाती।वामपंथी अपने को प्रेमचंद का वारिश बताते हैं और प्रेमचंद के दावेदार बनते हैं, लेकिन ये वे लोग हैं जिन्होंने प्रेमचंद का बड़ा अहित किया, उनकी साहित्य-मूर्ति को छोटा कर दिया और पार्टी के कटघरे में बंद करके उनका अंग भंग कर दिया। अब मेरी लगभग 30 पुस्तकों और सैकड़ों लेखों ने इस बंदी प्रेमचंद को मुक्त कर दिया है और अब वे व्यापक भारतीयता के कालजयी लेखक हैं। प्रेमचंद अपनी विजय-यात्रा पर निकल चुके हैं और भारतीय जीवन के लगभग तीन हजार पात्रों के द्वारा मानवीय यातना और मुक्ति का महागाथा रचकर सदैव के लिए भारतीय मन में स्थापित हो चुके हैं।

प्रेमचंद की इस चार दशकों की यात्रा में मैंने कई बार अपमान, आरोप, धमकी, बहिष्कार आदि सहा है, परंतु मैं आहत तो हुआ पर टूटा नहीं। राम विरथी होकर रावण रथी का मुकाबला कर रहे थे। मेरे सामने डॉ. नामवर सिंह, मलयज, शिवकुमार मिश्र जैसे महान आलोचक थे। इनके सामने मेरी हैसियत क्या थी ? पर शोध की सत्यता एवं दस्तावेजों की प्रामाणिकता तथा वामपंथियों के भ्रमजाल को तोड़ने के संकल्प और भारतीयता की ताकत ने मुझे लड़ने के लिए उद्यत किया और अंत में लगा कि सत्य की जीत हुई और जीवन सार्थक हुआ। हिंदी की आलोचना तथा शोध की दुनिया में ऐसा साहित्यिक युद्ध पहली बार लड़ा गया था और अंत में झूठ को तथा मिथ्या धारणाओं को पराजित होना ही था।

मैं प्रेमचंद पर ही नहीं रूका। मैंने प्रवासी-विमर्श शुरू किया और अब तक मेरी 12 पुस्तकें प्रवासी साहित्य पर हैं। अभिमन्यु अनत से अपने चालीस वर्ष के संबंधों में मैंने अनत की पांडुलिपियों का शोधन किया, भूमिकाएँ लिखीं, उन्हें प्रकाशित कराया, साहित्य अकादमी की मानद सदस्यता दिलवाई और भारत में अनेक कार्यक्रम कराये। मॉरिशस तथा अन्य देशों के अनेक लेखकों को प्रकाशक उपलब्ध कराये और उनकी पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखीं। लघुकथा के आंदोलन को सहयोग दिया और उसकी दो पुस्तकें छपीं। बालशौरि रेड्डी, मंजुल भगत, रविंद्रनाथ त्यागी रचनावलियों का संपादन किया और प्रकाशित कराईं। इंटरव्यू विधा में बच्चन, अभिमन्यु अनत तथा दिनेशनंदिनी डालमिया पर अलग-अलग पुस्तकें आईं। महात्मा गांधी पर भी मेरी पुस्तकें प्रकाशित हुईं- 'गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान' तथा 'गांधी : भाषा लिपि विचार-कोश।' केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष के रूप में जो कार्य किया है उसकी तो अलग कहानी है।

आज अस्सीवर्ष का होने पर यह विचार आता है कि मैंने जो आधी शताब्दी में किया और परिवार से भिन्न रास्ता अपनाया तो उसकी क्या सार्थकता है ? सार्थकता का प्रश्न व्यक्ति के लिए तभी तक है जब तक वह जीवित है, अन्यथा मृत्यु के बाद तो उसकी सार्थकता समय और समाज तय करता है। साहित्य में बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास आदि कुछ ही साहित्यकारों की सार्थकता कालजयी होती है, अन्यथा साहित्यकार के जाने के साथ ही उसकी सार्थकता भी अदृश्य होने लगती है। आज जैनेन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, चतुरसेन शास्त्री, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह जैसे अनेक साहित्यकार हमारी स्मृति से लुप्त होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मेरी कोई कालजयी सार्थकता नहीं हो सकती और मैं सोचता हूँ, जब तक प्रेमचंद की सार्थकता रहेगी तब तक संभवतः मेरी कोई उपयोगिता बनी रहेगी। विष्णु प्रभाकर तथा मधुरेश ने मुझे 'प्रेमचंद के गोयनका' कहा था और डॉ. चंद्रकांत वांदिवडेकर ने 'प्रेमचंद का बॉसवेल' और शुरू के दिनों में मेरे घर के कुछ लोगों की निगाह में मैं 'मास्टर' था, तब आज मैं उनकी दृष्टि में परिवार का महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया हूँ तो मुझे लगता है कि मेरी यह साहित्य-यात्रा की कुछ-न-कुछ तो सार्थकता है ही। मैं आज भी प्रेमचंद के साहित्य के मूल पाठ और प्रथम संस्करणों के पुनः प्रकाशन और 'प्रेमचंद विश्वकोश' को पाँच खंडों के प्रकाशन में लगा हूँ। प्रेमचंद मूल रूप में आने वाली पीढ़ियों को उपलब्ध हों और भारतीय आत्मा के कथाकार के रूप में जाने-पहचाने जायें और जो छूट गया है उसे खोजा जाये तो इस कार्य को करने के लिए स्वयं को धन्य समझता हूँ और इसे सरस्वती की कृपा मानता हूँ। औरों की तरह मैं भी सौ वर्ष जीना चाहता हूँ पर प्रेमचंद पर काम करते ही जीना चाहता हूँ। मेरा कितना जीवन है, ईश्वर ही जानता है, जितना भी है, वह साहित्य-कर्म को अर्पित है। एक लेखक के अध्ययन-अनुसंधान के लिए एक जीवन देना पागलपन ही कहा जायेगा, पर मैं विवश था और हूँ कि मुझे प्रेमचंद के अलावा कुछ सूझता ही नहीं है। हिंदी के मठाधीशों ने साहित्य और उसके अध्ययन को धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा आदि में बाँटकर बड़ा अपराध किया है। हमें इन संकीर्णताओं से साहित्य को मुक्त करना होगा। और अंत में देश-विदेश के असंख्य व्यक्तियों का मुझे प्रेम और आशीर्वाद मिला, मैं उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम,
दिल्ली-110052/मो. 9811052469

मॉरिशस बन्धु : डॉ.कमलकिशोर गोयनका

अभिमन्यु अनत

भारत में कई विद्वान, कलाकार तथा लेखक मॉरिशस आते रहे, पर मौरिशस में श्रीमती इंदिरा गांधी जी की पहली यात्रा और फिर द्वीप में दूसरे 'विश्व हिन्दी सम्मेलन' के बाद से यह सिलसिला ज़ोर पकड़ता गया। प्रायः सभी भारतीय जो यहाँ पहुँचते रहे वे मॉरिशस की सुन्दरता, यहाँ के भारतीय वंशजों की सफलता की कहानी, यहाँ के भारतीय संस्कृति तथा भारतीय भाषाओं की जीवन्तता से मुग्ध हुए और मौरिशस की अपनी दूसरी यात्रा के सपने देखते रहे। बहुत कम ऐसे लेखक यहाँ पहुँचे, जिन्होंने मॉरिशस और भारत को एक-दूसरे के और भी करीब लाकर दोनों देशों के बीच के सांस्कृतिक रिश्ते को और भी प्रगाढ़बनाने की कोशिश की। मॉरिशस के द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान तो देश के प्रधानमंत्री डॉ.सर शिवसागर रामगुलाम तथा मंत्री खेर जगतसिंह के सहयोग से सौ से अधिक भारतीय लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों को मॉरिशस पधारने का एक सुनहरा अवसर पैदा किया गया। पहली बार मॉरिशस की धरती पर बुद्धिजीवियों की इतनी बड़ी संख्या पहुँच पायी थी जिनमें ऐसी हस्तियाँ भी थीं- कर्णसिंह, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नामवरसिंह, धर्मवीर भारती, अमृतलाल नागर, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, अमृता प्रीतम, विमल मित्र और शीला सन्धु, इत्यादि। लेकिन इस सम्मेलन से पहले भी लोगों का यहाँ आना शुरू हो चुका था और रामधारी सिंह 'दिनकर', 'शिवमंगलसिंह 'सुमन', यशपाल और जैनेन्द्र कुमार जैसी विभूतियाँ यहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं। इनमें केवल यशपाल जी मॉरिशस पर एक पुस्तक लिख पाए। इस पुस्तक के बाद कुछ ऐसे लेखक-सम्पादक हुए जिन्होंने मॉरिशस के सांस्कृतिक सम्बन्ध को और भी घनिष्ठता प्रदान की। भारती जी ने 'धर्मयुग' के माध्यम से और कमलेश्वर जी ने 'सारिका' के जरिए भारत के पाठकों के सामने मॉरिशस को उभारना शुरू किया। मॉरिशस पर विशेषांक निकाल कर भारतवासियों का ध्यान द्वीप की ओर आकृष्ट किया। इस कार्य में महावीर अधिकारी तथा कुछ अन्य लेखकों ने भी अपना-अपना सहयोग दिया। मॉरिशस-भारत के इस सांस्कृतिक पुल को और भी सशक्त बनाने की इस प्रक्रिया में 1980 में एक नाम और जुड़ा और वह था डॉ.कमल किशोर गोयनका का।

डॉ.कमल किशोर गोयनका जी से मेरी मुलाकात अगस्त 1980 में पहली बार मॉरिशस के महात्मा गांधी संस्थान में हुई थी। जैनेन्द्र जी के साथ वे 'प्रेमचन्द शताब्दी समारोह' के दौरान मॉरिशस पहुँचे थे। उस पहली ही मुलाकात से मुझे इस व्यक्ति में मौरिशस के प्रति विशेष रुझान दिखाई पड़ा। फिर भी मैं उसी वक्त वह नहीं सोच पाया था कि डॉ.कमल किशोर गोयनका जी के साथ आगे जाकर मेरी इतनी घनिष्ठता बढ़सकती थी। दिल्ली में जब पहली बार उनके परिवार के साथ ठहरने का अवसर मिला तब लगा कि मैं अपने किसी बहुत करीब के परिवार के यहाँ ठहरा हुआ था। अगर कभी सरकारी अतिथि के रूप में अच्छे होटलों में ठहरने का अवसर मिला तो भी गोयनका परिवार ने मुझे उन स्थानों पर रहने नहीं दिया। गोयनका जी की पत्नी कुसुम जी तथा उनके दो बेटों-संजय और राहुल भी इतने अपने लगे कि कभी लगा ही नहीं कि मैं मॉरिशस के अपने त्रिओले निवास से दूर था। उस घर में मेरा इस तरह ख्याल रखा जाता रहा होगा कि मैं कोई बच्चा था और जब उस घर में रूपाली आई और फिर अस्मिता का जन्म हुआ तो वह घर और भी मनभावना बन गया। कमल किशोर गोयनका परिवार का यह स्नेह केवल मेरे और मेरे परिवार के प्रति नहीं रहा। वक्त के साथ वह घर मॉरिशस के बेशुमार छात्रों और हिन्दी प्रेमियों का भी अपना घर-सा बनता गया। यही कारण है कि अशोक विहार के उस घर को मैं 'मॉरिशस-भवन' कहता रहा हूँ। मेंने कमल किशोर जी को अपने यहाँ भी काम करते देखा और उनके अपने घर पर भी और हर बार मैं अपने से यही कहता रहा-काश! मैं भी उनकी तरह अनुशासित होता और इतनी देर तक बिना विश्राम के काम कर पाता। मैंने अपने को उनके सामने बार-बार इस बात के लिए शर्मिन्दा पाया कि उनके नियमित और लम्बे पत्रों का मैंने कभी ढंग से उत्तर दिया ही नहीं और इस बात को लेकर उनकी शिकायत आज भी बनी हुई है। डॉ.कमलकिशोर गोयनका मॉरिशस के हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों के साथ जो सम्बन्ध करने में सफल हुए उसे शायद कोई दूसरा भारतीय नहीं कर पाया। मॉरिशस के छात्रों को डॉ.गोयनका में एक ऐसा स्नेही मददगार मिला जिसने पग-पग पर लोगों के छात्र जीवन की कठिनाइयाँ और समस्याएँ आसानी से सुलझाता रहा। मॉरिशस के कई लेखकों की रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपवाने और उन्हें लिखने का प्रोत्साहन वे देते रहे। यही नहीं मॉरिशस में यहाँ की संस्थाओं, हिन्दी जगत तथा आमजनों के बीच भी वे इतने प्रसिद्ध हुए कि कई बार मुझे उनसे कहना पड़ा कि यार, तुम तो मेरे देश में मुझसे अधिक मशहूर थे। प्रेमचन्द के इस विशेषज्ञ से जहाँ मेरी जमकर पटती रही है वहीं उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता को लेकर हमारे बीच लम्बी बहसें भी होती रहीं और इसके बावजूद उन्होंने मेरे विचारों का कभी अनादर नहीं किया, उसी तरह मैं भी उनके प्रतिमानों को उनके अपने विश्वास, उनके अपने प्रतिमान मानकर उनकी कदर की। मेरा यह घनिष्ठ दोस्त जब भी मॉरिशस में रहा मैंने उनका सहायक रह के खुशी हासिल की और मेरे दिल्ली में होने पर कमल किशोर अपनी सारी गतिविधियों को पीछे रख कर मेरी दोस्ती को प्राथमिकता देते रहे।

इस आपसी सहयोग और आपसी दोस्ती में मैं हमेशा पीछे ही रहा, क्योंकि गोयनका जी दिल्ली में मेरे लिए जितना समय निकाल पाते थे और जितना कुछ मेरे लिए कर पाते थे उस मुकाबले मैं मैं उनका आधा भी नहीं कर पाया। इस आदमी की यह अपनी खासियत थी कि बीमारी की हालत में भी वे कदम-कदम पर मेरे सहयोगी बने रहे। कभी इस हद तक कि मुझे कहना पड़ता कि भैया अपने को मित्र ही बनाए रखो, सेक्रेटरी तक मत उतरो। अपने इस मित्र के बारे में बोलते हुए मैं उनकी पत्नी के बारे में अगर न बोलूँ तो कमल किशोर के प्रति मेरी आत्मीयता अधूरी रहेगी। जितना ख्याल वह मेरा रखने के आदी थे उतना ही ख्याल कुसुम ने मेरे और मेरे परिवार के सदस्यों के साथ रखने में कुछ भी बाकी नहीं रखा। पहली भेंट से कुसुम को मैंने अपनी छोटी बहन मान लिया था और वह मुझे अपना बड़ा भाई मान कर राखी बाँधती रहीं।

डॉ.गोयनका के भीतर दोस्ताना पक्ष और आदमियत भरे भाग ने मुझे उनके विद्वत पक्ष और साहित्यिक पहुँच से कहीं अधिक प्रभावित किया है। यह उनकी एक ऐसी खासियत है जिसके कारण मॉरिशस में लोग अगाध स्नेह और सम्मान देने में कभी नहीं चूके। उनके साथ के मेरे बेशुमार संस्मरणों में दो का मैं यहाँ जिक्र करना चाहूँगा।

पहली घटना तब की है जब भारत सरकार के आमंत्रण पर मैं दिल्ली के जनपथ होटल में ठहरा हुआ था। दिल्ली में मेरा दो सप्ताह का कार्यक्रम था। बम्बई आते समय हवाई जहाज ही में मुझे बुखार हो गया था। होटल पहुँचते-पहुँचते तो मैं और भी अधिक बीमार पड़ गया और मौसम के एकाएक परिवर्तन के कारण मुझे ब्रोकाइटिस हो गया था। श्रीमती बनर्जी के साथ जो कि शिक्षा मंत्रालय से मुझे लेने आई थीं और जो मेरे दिल्ली के सारे कार्यक्रमों की जिम्मेदार थीं, डॉ.गोयनका ने बात की और कहा वे वैसी हालत में मुझे किसी के घर नहीं भेज सकतीं। उनकी स्थिति को समझते हुए मैंने अपने दोस्त से कहा कि राजकीय अतिथि होने के कारण मेरा श्रीमती बनर्जी की देख-देख में रहना ही उचित होगा। पति-पत्नी कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। इस पर श्रीमती बनर्जी ने अपनी ओर से रियायत की और कहा कि मैं पहले अच्छा हो जाऊँ फिर वे लोग मुझे अपने घर ले जा सकते हैं, लेकिन डॉ.गोयनका और उनकी पत्नी यही चाहते रहे कि मेरी देख-भाल उनके घर पर हो। सरकारी पक्ष और दोस्ती पक्ष की इस रस्साकशी में आखिर जीत दोस्ती पक्ष की होकर रही और श्रीमती बनर्जी मुझे मेरे दोस्त के हवाले करते हुए बोलीं।

- इस आत्मीयता के सामने मैं अपने फर्ज से हट रही हूँ, पर सुबह-शाम आप लोगों को तंग करने पहुँचती रहूँगी। यह घटना जहाँ दोस्ती की पहचान देती है, वहीं यह घटना डॉ.गोयनका के भीतर के इन्सानी पक्ष को रेखांकित करती है। हमें सुरेश ऋतुपर्ण जी के यहाँ रात को भोजन पर जाना था। मेरे परिवार के लोग तो डॉ.गोयनका की गाड़ी से जा चुके थे। मैं और डॉ.गोयनका को एक थ्री-व्हीलर लेनी पड़ी। हमें कुछ देर हो गयी थी इसलिए कमलकिशोर जी ने चालक को यह हिदायत दे रखी थी कि वह कुछ तेज चलाए। हम जिस सड़क से जा रहे थे वह ट्रैफिक जाम से खचाखच भरी थी और चालक पूरी सावधानी के साथ निकालता हुआ आगे बढ़रहा था कि एकाएक एक मोटर साइकिल हमारी थ्री-व्हीलर को पार करके एकाएक हमारे आगे खड़ी हो गयी। पीछे बैठी एक पुलिस महिला, जो वर्दी में नहीं थीं, उतरी और अचानक हमारी थ्री-हीलर के ड्राइवर को अंधाधुंध कई थप्पड़ जड़ दिए। हम आवाक देखते रहे। इसके बाद मोटर साइकिल चलाने वाले पुलिस अफसर, जो कि इस महिला का जूनियर लग रहा था, आकर चालक को डाँट-डपट लगाने लगा कि हमारी गाड़ी ने ग़लत ढंग से उसका ओवर टेक किया था। जब हमारे चालक ने अपनी सफाई देने की कोशिश की तो उस महिला ने उसकी बाँह जकड़ कर उसको गाड़ी से बाहर कर लिया और चुनिंदा गालियाँ देती हुई उस पर लात-मुक्के से प्रहार कर बैठी।

मैं हैरत में पड़ा सभी कुछ इस तरह देख रहा था, जैसे कि कुछ भी समझ में नहीं आ रहा हो। इस तरह का काण्ड मेरे अपने देश में कल्पना से बाहर का था। औरत का इस तरह गाली देना और अपने अधिकार का इतना गलत उपयोग कर सचमुच ही हैरत में डाल देने वाली बात थी, पर अभी में अपने दोस्त से कुछ कहता कि वह सवारी से झट उतर कर पुलिस और चालक के बीच खड़ा हो गया। भीड़ इकट्ठी हो गयी थी। शुरू-शुरू में तो लोग उस महिला और उसके साथी को कोस रहे थे, पर जब उन्हें भी पता चला कि वे दोनों पुलिस अफसर थे तो भीड़ चैखव की कहानी 'कामेलेवन' की भीड़ वाली रुख हासिल कर ली और रंग बदल कर बेचारे थ्री-व्हीलर के चालक को ही कोस बैठे। उस भीड़ में केवल डॉ.गोयनका ने ही उस चालक के पक्ष में खड़े होकर दोनों पुलिस अफसरों को उनकी गलती की ओर संकेत करने की कोशिश की। समझाने-बुझाने की वह प्रक्रिया देखते-ही-देखते झगड़े का रूप लेने लगी फिर भी डॉ.गोयनका उस चालक को उनको आपे से बाहर और अपने अधिकार के नशे में चूर अफसरों के क्रूर पंजे से बचा कर ही रहे।

प्रेमचन्द-जीवन और प्रेमचन्द-साहित्य के प्रतिबद्ध एवं बौद्धिक अध्येता के अपने व्यक्तित्व की यह एक झलक उस रात मुझे यह एहसास देकर रही कि डॉ.गोयनका ने प्रेमचन्द पर केवल गहरा अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि प्रेमचन्द से उन्होंने सीखा भी है और एक दिन राजेन्द्र यादव ने बड़े ही दोस्ताने ढंग से कहा कि अभिमन्यु अनत, हमें कमल किशोर से दो आदमियों को मुक्त करना है...एक प्रेमचन्द को और एक तुम्हें; तो मुझे लगा था कि हम दोनों की मित्रता की इससे बड़ी अच्छी परिभाषा और शुभकामना क्या हो सकती है?

मॉरिशस के वरिष्ठ साहित्यकार

भारतीय मनीषा के साधक

प्रो. पुष्पिता अवस्थी

प्रो. गोयनका जी ने अपने संवेदनात्मक ज्ञान के निकष पर प्रेमचन्द साहित्य की वैज्ञानिक दृष्टि से सैद्धान्तिक प्रस्तुति की है। कवि के कृतित्व और उसकी पहचान, उसके साहित्यिक विवेक, कर्म, अन्वेषण और साहित्यिक अनुष्ठान की महिमा से सम्पन्न होती है। प्रेमचन्द से जुड़ना और विश्व को जोड़ना वस्तुतः भारत के स्वतंत्रता संग्राम और पराधीनता की पीड़ा से वर्तमान भारत को जोड़ने का दुसाध्य उद्यम है। जिससे आज का भारतीय समाज अपनी अर्जित भारतीयता और स्वाधीनता के समायोजन पर गर्व अनुभव कर सकेगा, क्योंकि वर्तमान भारत का बुद्धिजीवी और सम्भ्रान्त वर्ग अभी भी मुगलों और ब्रिटिश पराधीनता से मुक्त नहीं है। प्रो. गोयनका जी ने अपनी भूमिकाओं में प्रेमचन्द के साहित्य की अन्तर्रात्मा के अन्तरंग को भी उजागर कर दिया है। प्रेमचन्द के लिखे ऐसे अंशों, पत्रों और हंस के आलेखों को प्रस्तुत किया है जिससे प्रेमचन्द की रचनात्मक भूमि की वैचारिकता के तत्त्वों के साथ ही उसकी ताकत की जानकारी मिलती है। प्रेमचन्द साहित्य में गोयनका जी की भूमिकाओं से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द साहित्य एक विचार है जो भारतीयता का जीवंत प्राणवान उदाहरण है।सरलता और सादगी के उपासक,गोयनका जी स्थितप्रज्ञ पुरुष, पारदर्शी अन्वेषक और चिंतनशील साहित्य साधक हैं। खोजनी मन से सच हासिल करने की साधना में एकाकी ही आधी सदी से सक्रिय हैं। कई पीढ़ियों के वे एकसाथ सहचर और आत्मीय मित्र हैं। संवादों में वे मित्रता रचते हैं। इसीलिए वे सबके हो जाते हैं। प्रेमचन्द साहित्य हो या प्रवासी साहित्य, गोयनका जी की विवेकपयस्विनी लेखनी ने उसका अनुसन्धानपरक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिसके परिणामस्वरूप प्रेमचन्द साहित्य कम्युनिस्टवाद की संकीर्ण विचारधारा के बुद्धिपाश से मुक्त होकर हिन्दुस्तानी जनमानस का अपना आत्मीय साहित्य बन सका। वह हिन्दुस्तानी संस्कृति के संघर्ष के स्पन्दनों का आख्यान बन सका। इस संघर्ष यात्रा में विश्वविद्यालयी विद्वानों की राजनीति का एकाकी जुझारू यातना झेली। जिसकी वेदना उनकी स्मृतियों में आज भी धड़कती रहती है।गोयनका जी ने आश्चर्यजनक ढ़ंग से लेखन संपादन का प्रमूत कार्य सम्पन्न किया है कि पीढ़ियाँ आश्चर्य करेंगी जैसे आज हम राहुल सांस्कृत्यायन मनीषी जैसे व्यक्तित्व पर करते हैं। आलोचना, समीक्षा और विवेचना की दिशा में भी उनका कार्य बहुविध किस्म का होते हुए भी हिन्दी-साहित्य का प्रतिमान है।

प्रेमचन्द पर अब तक दर्जनों पुस्तकें लिखकर उन्होंने विलक्षण प्रतिमान स्थापित किया है। हजारों पन्नों का अनुवाद कार्य कराया है तथा अस्सी की वय में भी कई अन्वेषण और अप्रकाशित कार्यों को साधने में लगे हुए हैं। मारीशस का सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य उनकी ही लगन से विश्व के समक्ष उजागर हो सका है। अध्यापन के शुरूआती दिनों में ही प्रेमचन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की परछाई उनमें उजागर होने लगी थी। प्रेमचन्द की साहित्यिक विचारधारा ने उन्हें किसी भी राजनीतिक पार्टी का होने से बचा लिया। प्रेमचन्द की गाँधीवादी विचारधारा ने उन्हें राष्ट्रसेवक के चरित्र की पहचान दी है। उनके खाते में यशपाल और हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनेक संस्मरण भी हैं। जिन पर उनकी स्वतंत्र पुस्तकें प्रकाशित हैं। इसके साथ-साथ सुधी साहित्यकारों की रचनावलियाँ व रचना समग्र संपादित कर उनके कृतित्व को नये सिरे से प्रकाशित कराने का बीड़ा उठाया है।

निदेशक, हिन्दी यूनीवर्स फाउन्डेशन, नीदरलैंड
info@pushpitaawasthi.com
ऊ.र. 0031226753104

कलम के सिपाही का एक और सिपाही

रमेश दवे

डॉ.कमल किशोर गोयनका का नाम एक प्रकार से प्रेमचंद का पर्याय बन गया है। अमृतराय ने कलम का सिपाही लिखकर प्रेमचन्द के सिपाहीपन को जिस प्रकार प्रकट किया था, उससे आगे के प्रेमचंद का एक बड़ा सिपाही यदि कोई है तो वह निर्विवाद रूप से कमल किशोर गोयनका ही है। डॉ.शिवमंगलसिंह सुमन अक्सर साहित्य में भाषा के सिपाहीपन की चर्चा किया करते थे- मगर भाषा का सिपाही होना कोई सरल काम नहीं है। सिपाही वरदी में कसा कसा, जिस प्रकार अपने कर्तव्य और कर्म में निर्भावुक होकर जीता है, भाषा के सिपाही की भी वरदी व्याकरण है, भाषा के संरचना उसका अनुशासन है और एक सृजनशील व्यक्ति का भाषा को समृद्ध करने का वही कर्त्तव्य है जो सिपाही का कर्त्तव्य निभाने में। भाषा का सेण्टीमेण्टल होना, अनेक बार भाषा के अपने अनुशासन को भंग करता है। संभवतया महात्मा गांधी ने इसीलिए कहा था कि 'विशेषणों ने हमारी संज्ञाओं को खराब कर दिया है।''

शोध कार्य केवल अकादमिक ही नहीं होता। प्रत्येक शोध किसी विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि अर्जित करने का उद्योग भी नहीं होता। शोध तो संदर्भ को सृजन में बदलता है, शोध अध्येता की प्रज्ञा और उसके चिंतन की तथ्यपूर्ण अभिव्यक्ति होता है। शोध को पठनीय बना देना, उसके माध्यम से साहित्य के पाठकों को संस्कारित कर अध्ययन के लिए प्रेरणा देना और किसी भी साहित्यिक रचना और रचनाकार के अन्तश्लोक को उद्घाटित करना तभी संभव है जब कोई शोधार्थी गोयनका की तरह शोध समर्पित हो।

कमल किशोर गोयनका वैसे तो एक समालोचक हैं लेकिन समालोचना को शोध परक विश्वसनीयता प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी साहित्य में करके उन्होंने शोध की नई दिशा का आविष्कार किया है। जिस प्रकार एक पुरातत्त्ववेत्ता किसी पुरा स्थापत्य का उत्खनन कर, उसकी डीएनए जाँच से उसका काल-निर्णय अथवा आयु-निर्णय करता है, ठीक उसी प्रकार गोयनका ने प्रेमचन्द के पूरे कथा-स्थापत्य का उत्खनन और उद्घाटन किया है। प्रेमचन्द का कालक्रम में कथा-संयोजन का प्रथम उद्यम गोयनका ने ही किया है और इस प्रकार के तथ्यात्मक शोध का नया रास्ता बनाया। साहित्य के अत्यन्त वस्तुनिष्ठ अध्येता महेन्द्र जैन ने प्रेमचन्द के कथा साहित्य का कोश बनाकर गोयनका की परम्परा को निरन्तरता दी है।

गोयनका की विशेषता केवल प्रेमचंद का तिथिवार केलेण्डर बना देना ही नहीं है बल्कि प्रेमचंद का कथा-चयन, चयनित कहानियों का संयोजन-

सम्पादन और साथ ही अत्यंत सारगर्भित भूमिका लिखने का जो काम किया है उससे लगता है प्रेमचन्द के कथा-प्रस्थान से कथान्त तक का जो पर्यटन रहा है वह कैसे विकसित और प्रगाढ़हुआ, इसका भी प्रमाण मिलता है। प्रेमचन्द की ऐसी कहानियाँ जो मर्मस्पर्शी है और लोकजीवन की पीड़ा की पहचान है, उनके संवेदनात्मक स्वरूप का विवेचन कर गोयनका यह भी साबित करते हैं कि कोई भी कहानी केवल विषय, कथ्य, पात्र और परिवेश में ही सीमित नहीं होती बल्कि उसके सतह नीचे भी अनेक तहें होती हैं जिन्हें उद्घाटित करना होता है।

प्रेमचन्द हिन्दी-उर्दू कथा-साहित्य में जिस प्रकार के समान गौरव के साथ स्वीकारे गए, वैसा संभवतया अन्य कोई कथाकार नहीं स्वीकारा गया। प्रेमचन्द ने समूचे भारतीय कथा साहित्य में हिन्दी कथा-साहित्य की जैसी स्थापना की, वैसा भी अन्य कथाकार न कर सका। प्रेमचन्द जन्मे तो थे उस काल में जब भारत परतंत्र था, उन्होंने कथा रचना भी तब की जब अंग्रेजों का राज था और साथ ही अनेक रियासतों में देसी राजाओं और सामंतों का प्रभुत्व था। प्रेमचंद ने ऐसे विपरीत समय में लोक-संवेदना का कथा-साहित्य रचा, लोक जीवन की व्यथा, विडम्बना और करुणा का साहित्य रचा। कहानी को अपना शब्द-शस्त्र बनाकर प्रेमचंद ने एक और भारतीय जन का संवेदनात्मक प्रतिनिधित्व किया तो दूसरी ओर 'सोजे वतन' जैसी रचना से तत्कालीन सत्ता के बौद्धिक प्रतिपक्ष रचा। उनकी कहानियाँ केवल ग़रीब-अमीर, शोषण-उत्पीड़न और विश्वास-अंधविश्वास के द्वंद्व की कहानियाँ ही नहीं थीं बल्कि ऐसी चेतना की कहानियाँ थीं जो जन के जीवन-संदर्भ से जुड़ी थीं। कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद के कहानी साहित्य की तीन प्रकार से पहचान रची-एक प्रेमचंद का लोक-संवेदन, दूसरा प्रेमचंद का भाषा-संवेदन और तीसरा प्रेमचंद का सामाजिक-राजनीतिक संवेदन।

गोयनका का सर्वाधिक योगदान यह है कि उन्होंने प्रेमचंद के अप्रकाशित साहित्य की भी खोज की। अनेक कहानियाँ और प्रेमचंद के लेख, प्रेमचंद की पत्रकारिता से जुड़े विषय और उन पर प्रेमचंद का समकालीन लेखन, प्रेमचंद के अनेक जीवन-प्रसंग किसी अतीत के तलघर में पड़े थे उन्हें विस्मृति के उस अंधकूप से निकाल कर प्रकाश के शब्द लोक में लाने का जो काम गोयनका ने किया, वैसा काम किसी भी शोधार्थी ने कभी किसी अन्य कथाकार पर किया हो, ऐसा नहीं लगता। प्रेमचंद एक कहानीकार, उपन्याकार के रूप में इतने चर्चित हो गए कि उनके अन्य गद्य-लेखन को लगभग अनदेखा ही कर दिया गया था। गोयनका ने उसे अनदृश्य और उपेक्षित पक्ष को भी प्रत्यक्ष किया।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि अभी तक जो भी शोध हुए या लेखन हुआ, वह प्रेमचंद के प्रकाशित कथा-साहित्य को लेकर ही हुआ। गोस्वामी तुलसीदास और प्रेमचंद पर जितना विवेचनात्मक या समालोचनात्मक साहित्य रचा गया, और शोध किया गया, संभवतया हिन्दी के अन्य रचनाकार पर नहीं किया गया होगा। हिन्दी शोध की सामान्य प्रकृति यह रही है कि यदि कोई रचना या रचनाकार किसी एक तत्त्व या विषय को लेकर शोध या लेखन करता है तो उसी तत्व और विषय पर शोधार्थियों की विश्वविद्यालयीन भीड़ उमड़ पड़ती है। गोयनका जी ने इस शोध-प्रवृत्ति से विचलन किया और उन्होंने तो नया काम किया ही, साथ ही समकाल और भविष्य के लिये प्रेमचंद के ऐसे विषय शोध के लिए उपलब्ध करा दिए जिनसे प्रेमचंद का मूल्यांकन नये ढंग से, अब तक के अशोध्य साहित्य पर किया जा सके।

गोयनका की एक विशेषता यह है कि अपने अकादमिक उपाधि-ग्रहण के बाद भी उन्होंने अपना शोध एवं अध्ययन प्रेमचंद को लेकर स्थगित या बंद नहीं किया। अधिकांश शोधार्थी या प्राध्यापक, आलोचक जब अपने एक शोध के बाद, या एक पुस्तक की रचना के बाद जब थक जाते हैं, तब गोयनका नवीन ऊर्जा के साथ पुनः अपने शोध के विस्तार में लग जाते हैं जिसे पोस्ट-डॉक्टरल-वर्क कहा जाता है। अंग्रेजी साहित्य में कहा जाता है कि सर्वाधिक लेखन शेक्सपीयर को लेकर किया गया, प्रेमचंद को लेकर भी यही कहा जा सकता है कि शायद कथा-साहित्य में हिन्दी, उर्दू यहाँ तक कि अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में जितना विवेचनात्मक काम प्रेमचंद पर हुआ उतना किसी अन्य पर नहीं।

गोयनका की एक और देन यह है कि उन्होंने प्रेमचंद के कथा-साहित्य का सामाजिक, संवेदनात्मक और विषयगत वर्गीकरण भी समग्र रूप से किया। उनके शोध और विवेचन को पढ़कर यह समझा जा सकता है कि क़फन, सद्गति, पूस की रात, ठाकुर का कुआँ, नमक का दारोगा, ईदगाह, जैसी कहानियाँ एक दूसरे से संवेदन के स्तर पर और तत्काल के परिवेश और सामाजिक स्तर पर किस प्रकार भिन्न हैं। यही काम गबन, निर्मला, गोदान आदि को लेकर भी किया गया। गोदान में ग्रामीण, शहरी और राजनीतिक परिवेश को पात्रों एवं तत्कालीन परिवेश के संदर्भ में प्रेमचंद ने जिस प्रकार रचा। उससे रंगभूमि और कर्मभूमि का प्रवेश कितना पृथक और कितना समान है- इस अन्तर को समझने के लिए भी गोयनका को पढ़ना इसलिए जरूरी है कि गोयनका जी ने किसान, श्रमिक, आमजन या गरीब, अदृश्य, महाजनी शोषण आदि तत्वों को किसी भी वाम या दक्षिणपंथी विचारधारा के आधार पर नहीं परखा है बल्कि उनकी मानवीय धरातल पर तर्कबद्ध विवेचना की है। गोयनका के कारण प्रेमचंद लोकव्यापी हुए, लोकप्रिय हुए या उनकी साहित्यिक स्थापना हुई ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, मगर गोयनका ने जिस सिपाहीपन के बौद्धिक अनुशासन से प्रेमचंद को अपना इष्ट माना है उससे लगता है कोई भी साहित्य हवा में या भावुकता के जोश में नहीं लिखा जाता बल्कि यदि उसमें मूल लेखक का ज्ञान, अध्ययन, अनुभव, भाषा-शिल्प, शब्द-विन्यास और संवेदन तंत्र निहित है तो गोयनका जैसे प्रेमचंद के कलम के सिपाही के पास वे ही तत्त्व हैं जिनसे उन्होंने प्रेमचंद को कथा सम्राट की छवि के बजाय लोकनायक की छवि में स्थापित कर दिया।

सीएच-19/8 सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड,
भोपाल म.प्र. मो.94065-23071

कुछ उनकी कुछ अपनी

श्रीमती कुसुम गोयनका

गोयनका जी अस्सीवर्ष के हो गये हैं। हम छप्पनवर्ष के साथी हैं। इस छप्पनवर्ष की सहयात्रा के कुछ पलों को मैं आपसे साझा करना चाहती हूँ। मैं अपने जीवन से बहुत संतुष्ट हूँ। खुशनसीब भी हूँ कि गोयनका जी जैसा जीवन-साथी मिला, हालाँकि गोयनका जी के साथ मेरा विवाह मेरे सपने के अनुरूप नहीं था, क्योंकि मैं एक ऐसे व्यक्ति को अपना जीवन-साथी बनाना चाहती थी जो गाँव के एक जमींदार परिवार से ताल्लुक रखता हो। जो अंगरेजियत से दूर, देसी लिवास में रहता हो और प्रातः अपनी पूरी जमींदारी आन-बान-शान के साथ घोड़े पर बैठकर कर कारिन्दों के साथ अपनी काश्त का मुआइना करने जाता हो। सायंकाल दरबार लगाकर अपने सभी मुलाजिमों से जवाबदेही लेता हो। विवाह तो मेरा एक बड़े जमींदार परिवार में ही हुआ किंतु वह मेरे सपने का आधा सत्य था, क्योंकि गोयनका जी का जमींदार परिवार गाँव में नहीं शहर में रहता था। घर-परिवार में कुछ जमींदारी प्रथाएँ निभाई जाती थीं, जैसे पर्दा प्रथा, आस-पास की स्त्रियों से बातचीत न करना, कुलीनता का सदैव अहसास रखना, आदि। बाबूजी (श्वसुर साहब) महीने में एक-दो बार गाँव की अपनी जमींदारी का निरीक्षण करने जाते रहते थे। गाँव में जो कारिन्दे जमींदारी की देखभाल करते थे, वे भी जब-तब सलाम ठोकने आते रहते थे। गोयनका जी मेरे पतिदेव को इन सब मामलों में कोई रूचि नहीं थी। उनका ध्यान सिर्फ पढ़ाई और पढ़ाई की ओर था। शहर बुलंदशहर में हमारा एक बहुत बड़ा मंदिर है और उसमें एक बड़ी लाइब्रेरी हमारे श्वसुर जी ने स्थापित की थी। विवाह के पश्चात् जितने दिन बुलंदशहर में रहे, मैंने पतिदेव गोयनका जी को लाइब्रेरी में बैठकर नोट्स बनाते देखा- नहीं-नहीं, सुना, क्योंकि मंदिर जाने की अनुमति हमको नही थी। फिर मैं तो नई -नई दुलहिन थी।

विवाह के पश्चात् शीघ्र ही हम दिल्ली आ गये। फिर तो मेरे सपने ने साहित्यिक अभिरूचि की ओर करवट लेनी प्रारंभ कर दी। इस बदलाव से मुझे को परेशानी नहीं हुई, बल्कि यह बदलाव आनंददायक ही सिद्ध हुआ, क्योंकि साहित्य में मेरी रूचि बचपन से रही है। पिता के घर में बहुत पत्र-पत्रिकाएँ आती रहती थीं और बी.ए. में मेरे पास हिंदी और अंग्रेजी लिटरेचर दोनों विषय थे। गोयनका जी दिल्ली के जाकिर हुसैन सांध्यकालीन कॉलेज में लेक्चरार थे। दिन-भर घर में रहकर अपने पढ़ने-लिखने में लगे रहते। एक पल भी नष्ट करना उन्हें दुःखदायी लगता। वे बहुत कर्मठ, दृढ़संकल्पी और बहुत ही परिश्रमी हैं। मैंने कभी भी उन्हें दो बजे से पहले सोते नहीं देखा। वे निरंतर अपने अध्ययन में रत रहते हैं। वे स्वयं तो पढ़ाई में लगे ही रहते हैं, दूसरों को भी सदैव प्रेरणा देते रहते हैं कि कुछ पढ़ो, कुछ लिखो। उन्हें नये विषय बताते रहते हैं और उन विषयों के बारे में जानकारी भी देते रहते हैं। लोगों के लिखे लेखों को या उनकी पुस्तकों को छपवाने का दायित्व भी अपने ऊपर लेते रहते हैं। उनकी भूमिकाएँ लिखने की जिम्मेदारी भी ले लेते हैं। यहाँ तक कि लेखों की या पुस्तकों की अशुद्धियाँ सुधारने का दायित्व भी उठा लेते हैं। वे हर दशा में चाहते हैं कि साहित्य सृजन होता रहे और नई पीढ़ी सामने आती रहे। मुझसे भी बार-बार लिखने को कहते रहते हैं। इसके लिए मुझसे झगड़ा भी कर लेते हैं, किंतु लिखने में मेरी बहुत रूचि नहीं है। कुछ कविताएँ लिखी हैं। कुछ बाल कहानियाँ भी लिखी हैं जो 'धर्मयुग', 'हिंदुस्तान', 'नंदन', 'पराग' तथा अन्य बाल पत्रिकाओं में आती रही हैं। पीतांबर पब्लिशिंग हाउस से बच्चों की एक कहानी पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

घर में बहुत पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें आती रहती हैं। गोयनका जी से उनके बारे में समीक्षात्मक रूप से वाद-विवाद भी करती रहती हूँ। उनके सभी साहित्यिक मित्रों से परिचित हूँ। उनके साहित्य को पढ़ती भी

परिजनों के साथ गोयनकाजी

रहती हूँ और कभी-कभी फोन पर उनको अपनी प्रतिक्रिया से अवगत भी कराती हूँ। मैं एक बात बताना चाहती हूँ। गोयनका जी बहुत ही सरल व्यक्ति हैं। उनको आदमी की पहचान नहीं है। अपने जैसा ही सबको समझ लेते हैं और उनसे वे बातें भी कर लेते हैं जो उन्हें नहीं करनी चाहिए। हमारे समझाने का उन पर कोई असर नहीं होता। भोजन कर रहे हों, कोई फोन आ जायें, खाना छोड़कर बातें करने लगते हैं। कोई सज्जन मिलने आए आ जायें तो थाली में खाना अधूरा छोड़कर बात करने ड्राइंगरूम में चले जाते हैं। हम उन्हें आश्वासन देते हैं कि हम तुम्हारे मित्र का उचित सत्कार करते हैं तब तक आप भोजन कर लीजिए पर वे इस बात के लिए कभी राजी नहीं होते। थाली छोड़ कर चले जाते हैं और भूखे रह जाते हैं। अपने मित्रों का, अपने परिजनों का बहुत ध्यान रखते हैं, किंतु घर के प्रति बहुत उदासीन रहते हैं। उनको नहीं पता कि उनके बच्चों की परवरिश कैसे हुई। इसका एक बड़ा उदाहरण है- हमारा छोटा बेटा आठ साल का था। वह मोंटफोर्ट स्कूल में तीसरी कक्षा में पढ़ता था। एक दिन वह परीक्षा देने गया तो घर पर पैंसिल बॉक्स छोड़ गया। मैं घबरा गई । मैंने कहा आप जाकर दे आओ। गोयनका जी पूछने लगे बेटा कौन-सी कक्षा में पढ़ता है और कौन-से सैक्सन में है। इसीलिए मुझे लेखन से अरूचि हो गई। मैं अपने पति की सुविधा तथा अपने बच्चों का कैरियर बनाने के लिए समर्पित हो गई । आज मेरे दोनों बेटे 'सोलीटियर' हीरे हैं। मेरे पति भी देश में और परदेश में सम्मान पा रहे हैं। यह मेरा भी सम्मान है। मैं अपने को बहुत गौरवान्वित अनुभव करती हूँ। मैं अपने पति के साथ कभी किसी सभा या सोसाइटी में नहीं जाती। मैं बहुत अंतर्मुखी हूँ। मेरा घर एक मंदिर है जहाँ मैं बहुत सुख पाती हूँ। अपने को बहुत सौभाग्यशाली समझती हूँ। इमरजेंसी के दौरान मेरे पतिदेव दो महीने तिहाड़ जेल में रहे। उन पर यह चार्ज लगाकर कि वे दीप सिनेमा के आगे कुछ लोगों को इकट्ठा करके श्रीमती इंदिरा गांधी के मर्डर की साजिश रच रहे थे। उन्हें आधी रात को पुलिस घर से पकड़ कर ले गई । गोयनका जी ने पुलिस के साथ जाने से पहले कुछ चैकों पर साइन किये और मुझसे कहा कि हो सकता है कि मैं कभी न लौटूँ। किसी अज्ञात स्थान पर ले जाकर गोली भी मार सकते हैं। तुम यह मकान बेचकर या तो अपनी ससुराल चली जाना या अपने मायके। मेरे बच्चे उस समय बहुत छोटे थे। छोटा बेटा राहुल एक वर्ष का था। मैं घर में अकेली थी। घर में बच्चों को एक नौकर के सहारे छोड़ कर दिन-दिन भर कोर्ट-कचहरी और जेल के चक्कर लगाया करती थी। आसपास के लोगों ने हमसे बात करना बंद कर दिया था। वे घबराते थे कि वे भी न धर लिये जायें। ऐसे में हमारे ब्लॉक के दीपचंद बंधु नाम के कांग्रेसी नेता ने एक सज्जन को मेरे पास भेजा कि यदि गोयनका जी यह लिखकर दे दें कि ''मैं माफी माँगता हूँ। न मैं आर.एस.एस. का मेंबर रहूँगा न संघ से कोई मतलब रखूँगा'' तो मैं उनको जेल से निकलवाने में मदद कर सकता हूँ। मैंने उन सज्जन से कहा कि ''बंधु जी से मेरी तरफ से धन्यवाद कह देना, क्योंकि मैंने तो बंधुजी के पास सिफारिश के लिए को संदेश भेजा नहीं। हम आर.एस.एस. के स्वयंसेवक हैं और संघ से हमारा पुराना नाता है। आप अपने नेता जी से कह देना कि ''हम सिर कटा सकते हैं सिर झुका नहीं सकते।'' कुछ पलों के बाद वे सज्जन पुनः घर पर आये और बोले कि बंधु जी आप से मिलना चाहते हैं। मैंने कहा,''ठीक है। जरूर मेरे घर आयें। मैं उनका स्वागत करूँगी।''अंत में, मैं अपने मुँह से गोयनका जी की अधिक सराहना नहीं करना चाहती। उनके गुण-अवगुण बहुत कुछ गिना दिये हैं जो प्रायः सभी मनुष्यों में होते हैं। वे बहुत कर्मशील है, बुद्धिमान हैं, दृढ़संकल्पी हैं, मन के इतने सरल हैं कि 'सरल' शब्द भी उनके सामने लज्जान्वित हो जायेगा। मेरे प्रति वे इतने उदार, शुभ-चिंतक तथा प्रेमी हैं कि एक-दूसरे के बिना हम कुछ भी नहीं।

ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052
मोबाइल 91- 9560922120

केंद्रीय हिन्दी संस्थान : आज और कल

आशीष कंधवे

केंद्रीय हिन्दी संस्थान भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन एक उच्चतर शैक्षणिक और शोध संस्थान है। संविधान के अनुच्छेद 351 के दिशा-निर्देश के अनुसार हिन्दी को समर्थ और सक्रिय बनाने के लिये अनेक शैक्षणिक सांस्कृतिक और व्यावहारिक अनुसंधानों के द्वारा हिन्दी शिक्षण प्रशिक्षण, हिन्दी भाषा विश्लेषण भाषा का तुलनात्मक अध्ययन तथा शिक्षण सामग्री आदि के निर्माण को संगठित और परिपक्व रूप देने के लिये 19 मार्च 1960 में भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय ने केंद्रीय हिन्दी संस्थान की स्थापना उत्तर प्रदेश के आगरा शहर में की। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त केंद्रीय हिन्दी संस्थान शुरू में अहिंदी भाषी क्षेत्र के लिए योग्य, सक्षम, प्रभावशाली हिन्दी अध्यापकों को ट्रेनिंग देना, उन्हें कॉलेज और स्कूली स्तर पर शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षित करना था। किन्तु बाद में हिन्दी के शैक्षणिक प्रचार-प्रसार और विकास को ध्यान में रखते हुए संस्थान ने अपने दृष्टिकोण और कार्यक्षेत्र में बदलाव और विस्तार किया जिसके अन्तर्गत हिन्दी शिक्षण कार्यक्रमों को संचालित करना और साथ ही विभिन्न स्तरों के शैक्षणिक पाठयक्रम, शैक्षणिक सामग्री, अध्यापक निर्देशक आदि तैयार करने का कार्य भी प्रारंभ हुआ। इस प्रकार के सकारात्मक विस्तार कार्यक्रमों के आयोजन से हिन्दी संस्थान का कार्यक्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया और राष्ट्रीय के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी उपयोगिता को सिद्ध करने में सक्षम हो गया।

वर्तमान में केंद्रीय हिन्दी संस्थान अपने यशस्वी उपाध्यक्ष डॉक्टर कमल किशोर गोयनका के नेतृत्व में नित्य नए कार्यों को अंजाम दे रहा है और भविष्य की योजनाओं को सार्थक सिद्ध करने में लगा है। डॉक्टर गोयनका केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल के वर्तमान उपाध्यक्ष है। ज्ञात हो कि आप दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज से अवकाश प्राप्त है, प्रेमचंद साहित्य के अधिकारिक विद्वान एवं प्रमाणिक शोधकर्ता के रूप में आप जाने जाते हैं। अभी तक आपका 65 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है प्रेमचंद ग्रंथावली के संकलन एवं संपादन में आपको विशेष योगदान है। आप के गतिशील एवं सकारात्मक मार्गदर्शन में केंद्रीय हिन्दी संस्थान अपने निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए भविष्य के सुनहरे पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध है। मंडल के माननीय उपाध्यक्ष एवं प्रख्यात लेखक कमल किशोर गोयनका 2014 में व्यास सम्मान से विभूषित हो चुके हैं। आइए डॉक्टर गोयनका के नेतृत्व में विगत 4 वर्षों में होने वाले प्रगति पर कुछ चर्चा कर लेते हैं। यहाँ मैं यह बताना उचित समझता हूँ कि सितंबर 2014 डॉ.गोयनका के कार्यकाल की शुरूआत हुई और फिलहाल फरवरी 2020 तक उनके कार्यकाल को बढ़ा दिया गया। यह भी अपने आप में विशेष बात है कि डॉ.गोयनका लगातार दो कार्यकाल एक साथ पूरा करने जा रहे हैं। दूसरे कार्यकाल के रूप में मिला विस्तार इस बात को निरूपित करता है कि अपने प्रथम कार्यकाल में उन्होंने संतोषजनक से कहीं बेहतर परिणाम दिया होगा तभी दूसरे कार्यकाल के वो विस्तार पाने में सफल रहे। मुख्य रूप से इनके कार्यकाल में हिन्दी ज्ञान कोष के प्रकाशन की योजना बनाई गई यह 16 खंडों में प्रकाशित की जाएगी जिसके कर्ताधर्ता डॉ.इंदु चौधरी को बनाया गया है। साथ में सस्ता साहित्य मंडल को इसके प्रकाशन का दायित्व भी दिया गया है। डॉ.गोयनका के कार्यकाल शुरू होने के बाद केंद्रीय हिन्दी शिक्षण मंडल ने पत्रकारिता के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है पहले जहाँ एक या दो पत्रिकाएं ही प्रकाशित होती थी अब केंद्रीय हिन्दी संस्थान 8 भाषाई और साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहा है। संवाद पथ, भावक, गवेषणा, समन्वय दक्षिण, समन्वय पूर्वोत्तर आदि....। अन्य प्रमुख परियोजनाओं में हिन्दी लोक शब्द कोष परियोजना, हिन्दी कॉर्नोट परियोजना, हिन्दी सौ रत्नमाला पुस्तक निर्माण श्रृंखला, भाषा साहित्य सी.डी.निर्माण परियोजना, शैक्षिक मल्टी मीडिया कार्यक्रम श्रृंखला, हिन्दी आलोक, शैक्षिक ऑडियो कार्यक्रम श्रृंखला, हिन्दी सुरभि, शैक्षिक वीडियो कार्यक्रम श्रृंखला, विदेशी हिन्दी अध्यापकों के लिए पुनश्चर्या कोष का निर्माण आदि प्रमुख हैं।

संपादक : आधुनिक साहित्य, मो.नं.9811184393
(लेखक के शीर्षक आलेख का संपादित अंश)

''शार्टकट से क्षणिक उपलब्धि ही संभव है...''

कमल किशोर गोयनका द्वारा ओम निश्चल के प्रश्नों के उत्तर

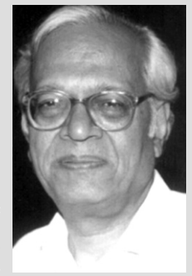

निश्चल : गोयनका जी लेखन की शुरूआत कैसे हुई?

गोयनका : निश्चल जी, बात उन दिनों की है जब मैं बुलन्दशहर के डी.ए.वी पोस्टग्रेजुएट कॉलेज में बी.ए. कर रहा था। यह वर्ष 1956-58 का समय था और कॉलेज तभी डिग्री कॉलेज बना था। मेरे पास हिन्दी साहित्य विषय था और जयशंकर प्रसाद की काव्य-रचना 'आँसू' पाठ्यक्रम में थी। कॉलेज का मैं साहित्य परिषद् का मंत्री था और कवि गोष्ठी में मैंने प्रसाद बन कर 'आँसू' के कुछ पदों का पाठ किया था। उस समय प्रसाद मेरे प्रिय कवि थे और एम.ए. करते समय में भी और युवावस्था थी, अतः प्रसाद की रोमांटिक कविताओं का असर स्वाभविक था। तभी मैंने अपने पिता के पुस्तकालय में पत्रिकाओं तथा साहित्य की विभिन्न पुस्तकों से सम्पर्क शुरू कर दिया था। परिणामतः उस समय मैंने कुछ प्रेम-गीत लिखे थो जो काफी वर्षों तक सुरक्षित बने रहे, लेकिन वह समय विधिवत् लेखन का नहीं था। कुछ भाव उठते थे और वे गीत बन जाते थे। फिर एम.ए. (हिन्दी) करने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय में दाखिला लिया और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनने का स्वप्न लेकर बुलन्दशहर से दिल्ली आया था। मेरा परिवार मारवाड़ी होने के कारण व्यापारिक तथा जमींदारी परिवार था, अतः दिल्ली में गैराज में रहना, होटल में रोटी खाना, गर्मी में पार्क में सोना और रात को बिजली के खम्भे के नीचे बैठकर पढ़ना मेरे लिए एक नया जीवन था। बुलन्दशहर में मैं अपने पूर्वजों की हवेली में रहा था और दिल्ली जैसा जीवन मैंने देखा नहीं था, किन्तु प्रोफेसर व लेखक बनने की कामना इतनी प्रबल थी कि इन कष्टों से कभी कष्ट का अनुभव नहीं किया। एम.ए. करने के बाद कुछ कहानियाँ लिखीं, वे छपी भी, कुछ शोधपरक लेख भी लिखे, किन्तु मेरा मन कविता-कहानी में न लगकर शोध एवं अनुसन्धान की ओर प्रवृत्त हो गया। सर्जनात्मक लेखन छूटता था और शोधपरक आलोचना हावी होती गई। अब यह कह सकता हूँ कि मेरे जीवन का सही रास्ता यही था- खोजने का, नये तथ्यों के उद्घाटन का जैसे कोई पुरातत्त्ववेत्ता करता है। साहित्य में ऐसे पुरातत्त्ववेत्ता का यह पहला कदम था।

पिछले दिनों प्रवासी लेखन चर्चा में रहा है और दिनोदिन परवान चढ़ा है। आपने भी प्रवासी लेखन की पहचान और मूल्यांकन में गहरा योगदान दिया है। इसे लेकर आपके मन में क्या योजनाएँ हैं?

हिन्दी में प्रवासी साहित्य का एक नया विमर्श है। यह तेजी से फल-फूल रहा है। इस नये क्षेत्र में पहली बार मॉरीशस के अभिमन्यु अनत के उपन्यास और कहानियाँ व कविताएँ प्रकाश में आईं और वर्ष 1980 में मेरे से सम्पर्क के बाद अभिमन्यु की कृतियाँ बराबर आती रहीं। मैं एक प्रकार से अनत का लिटरेरी एजेन्ट था, उसकी पांडुलिपियाँ देखता था, कुछ की भूमिकाएँ लिखीं, उनकी समीक्षा कराईं और उनकी रायल्टी का भुगतान कराया। अनत के कई मॉरीशस मित्र लेखकों की कृतियाँ प्रकाशित कराईं और उनकी भी भूमिकाएँ लिखीं। मॉरीशस के विख्यात राष्ट्रकवि बजेन्द्रकुमार भगत 'मधुकर' की काव्य-रचनावली सम्पादित की और लम्बी भूमिका लिखीं। दो-तीन दशकों तक मॉरीशस के हिन्दी-साहित्य के प्रकाशन एवं प्रोत्साहन का दायित्व मैं ही निभाता रहा और इसका परिणाम था कि वहाँ के हिन्दी समाज ने मुझे भरपूर स्नेह दिया और मैं पाँच बार मॉरीशस आमंत्रित किया गया। मॉरीशस की एक दुर्लभ हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' (1935-38) की एक वर्ष की फाइल विदेश मंत्रालय के कबाड़खाने में पड़ी थी। उसे वापिस हिन्दी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस को विधिवत् लौटाने का भी काम किया। एक बार राजेन्द्र यादव ने मजाक में कहा था कि हे भगवान, प्रेमचन्द और अभिमन्यु को गोयनका से बचाओ। इसके बाद अमेरिका, इंग्लैण्ड, नीदरलैंड, सूरीनाम, फीजी, जापान, कनाड़ा आदि देशों के हिन्दी लेखकों से सम्पर्क होता गया और यथाशक्ति इस प्रवासी साहित्य के विकास के लिए उद्योग करता रहा। अमेरिका में सुषम बेदी ने मुझे कोलम्बिया विश्वविद्यालय तथा ग्रेबिएला निकलीवा ने न्यूयार्क विश्वविद्यालय में प्रेमचन्द पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया और पेरिस के एक विश्वविद्यालय में प्रेमचन्द पर ही मुख्य व्याख्यान दिया, लेकिन वहाँ के प्रवासी हिन्दी लेखकों से सम्पर्क भी होता रहा। अब भारत और विदेशों में प्रवासी हिन्दी-साहित्य की पहचान बन चुकी है और अटलबिहारी वाजपेयी के जमाने से डायस्पोरा को जोड़ने की भी सरकारी कोशिश चली है। हिन्दी में प्रवासी साहित्य अब आरक्षण अथवा हाशिये का साहित्य नहीं है, उसका अपना विमर्श बन चुका है और साहित्य की मुख्यधारा का वह अंग है। इसका निरन्तर विकास हो रहा है, परन्तु नई पीढ़ियों को भी लेखन में लाने की आवश्यकता है। प्रवासी साहित्य के देश में समुचित वितरण की व्यवस्था तथा प्रकाशन की सुविधाएँ भी उपलब्ध रहनी चाहिए। प्रवासी साहित्य पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, गोष्ठियाँ तथा राष्ट्रीय पुरस्कार होने चाहिए और भारत के हिन्दी संसार से निरन्तर जुड़ने की व्यवस्था होनी चाहिए। मैंने कई पत्रिकाओं के प्रवासी अंक निकलवाये हैं, कुछ का स्वयं सम्पादन भी किया है और कुछ पूर्ण होने की प्रक्रिया में है। अभिमन्यु अनत की हीरक जयन्ती पर मैंने बारह हिन्दी पत्रिकाओं के विशेषांक निकलवाये थे और उसे साहित्य अकादमी की 'महत्तर सदस्यता' दिलवाने में पहल की, अर्थात् इसी प्रकार की अनेक योजनाएँ हो सकती हैं, पर इसके लिए समर्पित साहित्य प्रेमी सी जरूरत होगी।

इन दिनों प्रवासी लेखकों में किन लेखकों से आपको ज्यादा उम्मीदें हैं कि वे आगे चलकर एक दिशा निर्धारित करेंगे।

अभिमन्यु अनत का लेखन बंद है। वे अस्वस्थ हैं, याददाश्त धोखा दे रही है। वहाँ हेमराज सुन्दर, राज हीरामन, रामदेव धुरन्धर अभी सक्रिय हैं और अभी कुछ कर सकते हैं।

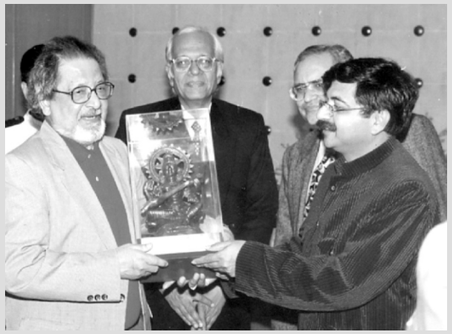

अमेरिका की सुधा ओम ढ़ींगरा, नीदरलैंड की पुष्पिता अवस्थी, इंग्लैण्ड की दिव्या माथुर तथा तेजेन्द्र शर्मा, आबूधाबी के कृष्णबिहारी आदि में अभी काफी सम्भावनाएँ हैं। ये अभी और भी बेहतर साहित्य दे सकते हैं। इसमें तीन तो पत्रिकाएँ निकालते हैं और सभी साहित्यिक संस्थाएँ चलाते हैं। मेरी चिन्ता यह है कि प्रवासी साहित्य का भविष्य क्या होगा? क्या ऐसे प्रतिभावान लेखकों की नई नस्लें आती रहेंगी या यह प्रवासी विमर्श इतिहास का विषय बन कर रह जायेगा?

गोयनकाजी, आप केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा से जुड़े हैं। इसे लेकर बहुत-सी योजनाएँ हैं आपके पास। पिछले दिनों मंच पर कुछ बातें आपने बताई भी थीं। क्या-क्या नया कर रहे हैं इस संस्थान में?

मैंने सितम्बर 2014 में उपाध्यक्ष का कार्यभार संभाला था। मैं पहले से केन्द्रीय हिन्दी संस्थान की गतिविधियों से अवगत था, संस्थान द्वारा सम्मानित हो चुका था और उसकी 'गवेषणा' पत्रिका में मेरे लेख भी छप चुके थे। मेरे पदग्रहण के समय प्रो. मोहन निदेशक थे, परन्तु उनकी रुचि कार्य के विस्तार में नहीं थी। उसके बाद प्रो. नंदकिशोर पांडेय निदेशक बनकर आये तब नये कार्यक्रम बने और पुरानों में गति आई। डॉ. शम्भूनाथ के समय 'हिन्दी लघुकोश' की योजना बनी थी, सरकार से धन भी आ गया था, लेकिन शम्भूनाथ के जाने के बाद वह प्रायः बंद-सी हो गई। मैंने आकर इसे जीवित किया और इसके संयोजक प्रो. इंद्रनाथ चौधरी को पूरा सहयोग दिया और प्रो. पांडेय ने आकर इसे और गति दी। यह अब 16 खंडों की योजना है और इसका नाम है- 'हिन्दी विश्वकोश' तथा इसके तीन खंड इस वर्ष के अंत तक प्रकाशित हो जायेंगे। इसके साथ आगरा में हिन्दी के साथ बोलियों के कोश तैयार हो रहे हैं, लगभग 15प्रकाशित हो चुके हैं, नई पत्रिकाएँ शुरू की गई हैं, श्रीलंका में हिन्दी शिक्षण के केन्द्र खोले गये हैं और रूस में खोलने की तैयारी है, विदेशी हिन्दी अध्यापकों के लिए पुनश्चर्या कोर्स शुरू किये हैं, आगरा में 400 सीटों का आधुनिक सभागार निर्मित हो गया है, तीन हास्टेलों का पुनर्निर्माण चल रहा है तथा अन्य निर्माण भी चल रहे हैं। हमारा इस पर ध्यान है कि संस्थान का शैक्षणिक स्तर बढ़े, विदेशी छात्रों को अधिक से अधिक सुविधाएँ मिलें और प्रशासन में गति एवं कुशलता आये तथा संस्थान का विस्तार हो। शिलांग में संस्थान का भवन बन रहा है और नागालैंड सरकार ने तीन एकड़ जमीन हमें निःशुल्क दी है कि हम संस्थान का भवन निर्मित करें। हैदराबाद, भुवनेश्वर, गुवाहाटी में भी भवन निर्माण की योजनाएँ चल रही हैं। इतना कार्य इससे पूर्व संस्थान में कभी नहीं हुआ और इसका श्रेय मैं वर्तमान निदेशक प्रो. नंदकिशोर पांडेय को देता हूँ।

विदेशियों को हिन्दी सिखाने की दिशा में आपका संस्थान और कौन से नए-नए प्रयत्न कर रहा है?

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का एक मुख्य उद्देश्य है हिन्दी शिक्षा विदेशी एवं देश के अहिन्दी क्षेत्रों के छात्रों को। आगरा में लगभग 100 तथा दिल्ली में भी लगभग इतने ही विदेशी छात्र हिन्दी पढ़ते/सीखते हैं। आगरा में तो उनके लिए हास्टेल की व्यवस्था है और संस्थान उन्हें छात्रवृत्ति देता है और सारा खर्च उठाता है। दिल्ली में ये स्ववित्त से पढ़ते हैं, पर ये छात्र प्रायः विदेशी कम्पनियों अथवा दूतावासों में काम करते हैं, लेकिन कुछ केवल हिन्दी सीखने भी आते हैं। इन विदेशी छात्रों को हम भारत दर्शन कराते हैं इनके हिन्दी लेखों/रचनाओं की प्रतिवर्ष पत्रिका प्रकाशित करते हैं और पुरस्कृत करते हैं तथा त्यौहारों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम करते हैं तथा समय-समय पर इनकी कठिनाइयों को दूर करते हैं। हमारा उद्देश्य रहता है कि ये विदेशी छात्र हिन्दी सीखने के साथ भारतीय जीवन को भी देखें, समझें और अपने साथ अच्छी स्मृतियाँ ले जायें।

हिन्दी के पाठ्यक्रमों में प्रवासी लेखकों की रचनाओं के समावेशन को लेकर कोई पहल आपकी ओर से पहल हुई क्या?

हाँ, मैंने इसका प्रयत्न काफी पहले शुरू कर दिया था। अभिमन्यु अनत का एक उपन्यास दिल्ली विश्वविद्यालय के एक हिन्दी पाठ्यक्रम में लगवाया था। इसके बाद कई विश्वविद्यालय को पत्र लिखे, परन्तु कुछ नहीं हुआ। इधर कुछ विश्वविद्यालयों में रुचि जागी है और उनके आग्रह पर मैंने कुछ प्रवासी रचनाओं का प्रस्ताव भेजा है, परन्तु वह पाठ्यक्रम बना या नहीं, जानकारी नहीं मिली। इस क्षेत्र में सामूहिक प्रयास आवश्यक है, क्योंकि अब समय आ गया है जब प्रवासी साहित्य को पाठ्यक्रमों में रखना और पढ़ाना जरूरी हो गया है।

कई संस्थानों से आप जुड़े हैं। हिन्दी की दशा, दिशा को देखते हुए इसके भविष्य के बारे में क्या कहना चाहेंगे?

भारत में अनेक संस्थाएँ हैं जो हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए काम करती हैं। उनके उद्देश्य बहुत अच्छे हैं, इतिहास भी अच्छा है, परन्तु वर्तमान शोचनीय है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि की दुर्दशा से हम अवगत हैं। देश में ऐसी अनेक संस्थाएँ हैं, लेकिन हिन्दी भवन, भोपाल, श्री मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा चैन्नई, हिन्दी प्रचार समिति, वर्धा आदि अच्छा काम कर रही हैं। संस्थाओं को चलाने के लिए निष्ठावान, निःस्वार्थी हिन्दी प्रेमी चाहिए। जहाँ ये हैं, वहाँ यथाशक्ति ठीक काम हो रहा है।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में आपने सभी विभागों की सात-सात पत्रिकाएँ निकालने का संकल्प लिया था। यह योजना क्या मूर्त्त रूप ले चुकी है?

जी, छः पत्रिकाएँ छप चुकी हैं। वैसे यह अपने प्रकार की अकेली योजना है। एक संस्था से इतनी पत्रिकाओं का प्रकाशन अभिनव प्रयोग है। इसके साथ केन्द्रीय हिन्दी संस्थान हिन्दी की लगभग 40 लघु पत्रिकाओं को अनुदान देता है और लगभग 20 लाख खर्च करता है। इससे लघु पत्रिकाओं को बने रहने में कुछ मदद मिल जाती है।

विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन की जितनी धूम रहती है उसके बाद उसकी धूल छँटते ही हिन्दी फिर अपनी गतानुगतिक स्थिति में आ जाती है। सम्मेलन के पिछले निर्णयों पर हुई प्रगति से आप कहाँ तक संतुष्ट हैं। और क्या कुछ किया जाना चाहिए इस दिशा में।

विश्व हिन्दी सम्मेलनों का ऐसा ही इतिहास है। मैंने सूरीनाम, इंग्लैण्ड, न्यूयार्क, साउथ अफ्रीका तथा भोपाल में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलनों में भाग लिया, लेकिन प्रायः वहाँ स्वीकृत प्रस्तावों पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। भोपाल में वर्ष 2015 में आयोजित सम्मेलन के बाद विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने विशेष रुचि ली और वे अभी तक कई बैठकें कर चुकी हैं। मैं स्वयं इन बैठकों में रहा हूँ। सुषमा जी प्रत्येक से प्रगति की रिपोर्ट लेती हैं और जो करणीय है उस पर बात होती है। वे पहली विदेशमंत्री हैं जो सक्रिय हैं और मन से चाहती हैं कि विश्व में हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो। अब उनके मंत्रालय में हिन्दी विभाग है और उसका दायित्व एक संयुक्त सचिव को दिया हुआ है। अभी विकास की गति धीमी है, परन्तु मुझे विश्वास है कि सुषमा जी के कार्यकाल में अवश्य ही कुछ प्रगति होगी।

विश्व के तमाम देशों में भारतवंशी हैं। कई देशों में हिन्दी बोलने वालों की संख्या भी अच्छी है। पर क्या जिस तरह हमारी भाषा की व्याप्ति होनी चाहिए विश्व भर में, उनके पाठ्यक्रमों में, उनके विचार-विनिमय में - वहाँ हिन्दी अभी पिछड़ रही है। क्या कठिनाई महसूस करते हैं इस दिशा में।

आप ठीक कहते हैं कि विश्व के अनेक देशों में भारतीयों की संख्या काफी बढ़ी है, परन्तु ये सभी हिन्दीभाषी नहीं हैं और साथ ही भारततेर देशों में मुख्यतः अंग्रेजी भाषा है, अतः हिन्दी भाषा की स्थिति विदेशी भाषा के रूप में ही है और हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या बहुत सीमित है। मॉरीशस में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या बहुत है, परन्तु वहाँ हिन्दी बोलचाल की भाषा नहीं है। क्रिओली आम बोलचाल की भाषा है, फिर भी वहाँ हिन्दी में शोधकार्य तक होता है। अमेरिका, योरप आदि देशों में भारतीय बच्चे भी बहुत कम संख्या में हिन्दी पढ़ते हैं। ऐसी स्थिति में मुझे हिन्दी के विस्तार की, विचार-विनिमय आदि में उसके प्रयोग की बहुत कम संभावनाएँ दिखाई देती हैं। हिन्दी वहाँ एक विदेशी भाषा है और वह इसी रूप में बनी रहेगी।

लेखन में आज चार-चार पीढ़ियाँ सक्रिय हैं। सोशल मीडिया ने भी रचनाओं का माहौल बनाया है। पर जिस तरह के बड़े लेखक एक जमाने में थे अब वैसी धमक नए लेखकों की समाज में नहीं रही, इसकी क्या वजह है?

अब समय बदल गया है। पराधीनता के समय निराला, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, रामकुमार वर्मा, जैनेन्द्र, विष्णु प्रभाकर आदि अनेक युवा लेखक उभरकर सामने आ रहे थे। इन्हें प्रतिष्ठा की कोई जल्दी नहीं थी। अब तो नई पीढ़ियों में प्रतिष्ठा, यश की इतनी जल्दी है कि साधना का भाव ही खत्म हो गया है। इसी कारण लेखक का पहले सम्मान था, उसका प्रभाव था, अब यह सब निरर्थक है। आज का लेखक चार कविताएँ एवं कहानियाँ लिखकर यशस्वी होना चाहता है, मंच पर कविता पढ़ते-पढ़ते पद्मश्री हो जाता है तो ऐसे लेखकों से किसी धमक की आशा कैसे की जा सकती है?

प्रेमचन्द के बाद कोई दूसरा वैसा ही लोकप्रिय लेखक आपको इस परिदृश्य में क्या दिखाई देता है?

नहीं। प्रेमचन्द जैसी लेखनी और आत्मा किसी में नहीं है। जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि प्रेमचन्द की तुलना में अधिक बौद्धिक थे, परन्तु मनुष्य की और समाज की आत्मा का प्रेमचन्द जैसा परिज्ञान नहीं था। लोकप्रियता की दृष्टि से नरेन्द्र कोहली सबसे अधिक पढ़े जाते हैं।

लेखन की आगामी योजनाएँ क्या हैं?

कई योजनाएँ तैयारी में हैं- 'प्रेमचन्द : विश्वकोश' के शेष तीन खंड पूरे करने हैं, उपन्यासों के प्रथम संस्करण प्रकाशित कराने हैं, सम्पूर्ण रचनावली पर भी काम करना है, 'गोदान' की पांडुलिपि प्रकाशित करानी है, 'कफन' पर एक अलग किताब तैयार करनी है, प्रवासी साहित्य पर भी कई किताबें पाइपलाइन में हैं। समय कम है, काम ज्यादा है।

इतना प्रभूत काम किया है तो मन होता है पूछने का कि यह सब कैसे संभव हुआ? परिवार को कितना इग्नोर किया होगा आपने। क्या राय है आपके बारे में परिवार वालों की।

मेरी पत्नी कुसुम गोयनका साहित्यिक रुचि की हैं। शुरू में उन्होंने कुछ बाल कहानियाँ लिखी थीं और एक पुस्तक भी छपी थी, परन्तु घर-गृहस्थी और दो बेटों के पालन-पोषण के कारण उनका लिखना बंद हो गया, परन्तु स्वाध्याय अभी तक बना हुआ है। घर में आने वाली अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ वे बराबर देखती-पढ़ती हैं और कुछ पर हम चर्चा भी करते हैं। घर की व्यवस्था सब पत्नी के हाथ में रही और मैं प्रायः अध्ययन में रत रहता, दिल्ली से बाहर जाता और इसी प्रकार आधी शताब्दी कट गई। पत्नी ने कभी शिकायत न की हो, ऐसा तो नहीं है, परन्तु कुछ समय से उन्हें अकेलेपन की तकलीफ होती है। अब अपनी व्यस्तता कम हो गई है, लेकिन यह सच है कि पत्नी के सहयोग के बिना इतना काम असंभव था। वैसे मेरे परिवार के सदस्य मेरे काम के महत्त्व को समझते हैं और गर्व का भी अनुभव करते हैं।

आपकी लेखन-प्रक्रिया क्या है?

मेरा प्रमुख कार्य शोधपरक आलोचना, पाठ संशोधन, अज्ञात की खोज और फिर उसका विवेचन। मैं प्रायः रात को काम करने तथा लेट उठने का आदी हूँ। मैं नोट्स बनाता हूँ, कार्ड्स भी बनाता हूँ और फिर आलोचना के बिन्दु तय करता हूँ और तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष तक पहुँचता हूँ।

कोई संदेश जो आप नई पीढ़ी के लेखकों को देना चाहें।

नई पीढ़ी को संदेश अब प्रेरित नहीं करते। फिर भी मेरे जीवन का सत्य यह है कि साधना से ही सिद्धि मिलती है। बड़े स्वप्न से आदमी बड़ा होता है। ज्ञान की खोज निरन्तर करनी चाहिए। गति ही जीवन है, रूकना मृत्यु। शार्टकट से क्षणिक उपलब्धि ही संभव है। कर्मण्यता ही जीवन की संजीवनी है। मेरा देश ही सर्वोपरि है और मैं इसे कमियों, दोषों के

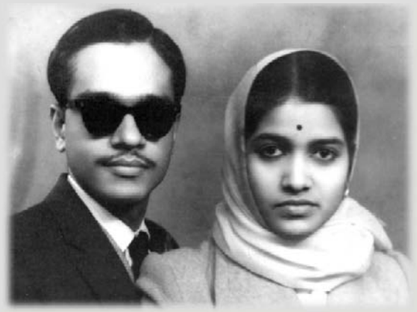

बावजूद किसी भी सम्पन्न, दोषरहित देश से नहीं बदलूँगा। मेरा भारत, उसकी अस्मिता, एकता और उच्चता सर्वोपरि है।

पुरस्कारों व सम्मानों पर अक्सर सियासत होती है। आप खुद केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष हैं तथा बीते वर्षों से आपने पुरस्कारों की संख्या लगभग दुगुनी की है व देश-विदेश के हिन्दी के सुधी सेवकों लेखकों को सम्मानित किया है। इस बारे में आपका क्या अनुभव रहा है।

हिन्दी के पुरस्कारों को लेकर अक्सर चर्चा होती है। जो पुरस्कार के आकांक्षी होते हैं और उन्हें पुरस्कार नहीं मिलता तो विवादों का जन्म होता है और तरह-तरह के आरोप लगाये जाते हैं। साहित्य अकादमी के पुरस्कार भी ऐसे आरोपों से अछूते नहीं हैं। पिछले दिनों कुछ लेखकों द्वारा पुरस्कार लौटाने से पुरस्कार की राजनीति केन्द्र मे आ गई है। मेरा अनुभव यह है कि पुरस्कारों के चयन में योग्यता एक मापदंड रहता है, परन्तु कई बार योग्यता का मापदंड व्यक्तिगत हो जाता है और रुचि-अभिरुचि अपना-पराया आदि भी कभी-कभी काम करता है। चयन समिति के चयन से प्रायः स्पष्ट हो जाता है कि पुरस्कार प्रदाता क्या चाहते हैं। आप ठीक कहते हैं, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा के 12 पुरस्कार 26 हुए तथा एक लाख रुपये की पुरस्कार राशि पाँच लाख हुई। मैं आभारी हूँ तत्कालीन मंत्री ने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार किया और वर्तमान मंत्री ने उसका सम्मान किया। अब देश का यह सबसे बड़ा पुरस्कार है राशि की दृष्टि से कि प्रत्येक वर्ष एक करोड़ तीस लाख रूपये पुरस्कार में वितरित होंगे और सम्मान राष्ट्रपति देंगे। पुरस्कार चयन समिति के सम्मुख दबाव तो रहता है,परन्तु उससे बचने के लिए कुछ रास्ते निकालने ही होते हैं।

लेखक और राज्याश्रय पर बहुधा बहसें होती हैं। क्या आज ऐसी स्थिति है कि लेखक राज्यसत्ता से अनुग्रहीत होने के लिए बाध्य हो।

लेखक के राज्याश्रय पर प्रायः चर्चा होती रही है। कांग्रेस राज में वामपंथियों को बराबर राज्याश्रय मिला, लाखों की योजनाएँ मिलीं, प्रोफेसर-अध्यक्ष बने, विदेशों की गोष्ठियों-सम्मेलनों में एकेडेमिक यात्राएँ कीं और यथासंभव सत्ता का उपयोग किया,परन्तु कोई भी राज ऐसा नहीं होता कि लेखक राज्याश्रय लेने के लिए मजबूर हो। लेखक की इच्छा है कि वे राज का अंग बने या घर बैठकर अपना कर्म करे। हम सब जानते हैं 'संतन सौ कहाँ सीकरी सौ काम' एक बड़ा आदर्श है और आज भी इसके अनुयायी मिल जायेंगे। लेखक यदि कोई राज-कर्म करता है तो उसे उसके अहंकार, मोह, लालसा से मुक्त रहना चाहिए। इसके उदाहरण हैं हमारे सामने- मैथिलीशरण गुप्त, बच्चन, दिनकर आदि का राजाश्रय का इतिहास देखा जा सकता है।

अरसे से लिख रहे हैं। लिखने का उद्देश्य यदि समाज में कुछ बदलता रहा है तो क्या कुछ बदलता हुआ दीखता है आपको?

साहित्य से परिवर्तन पर बड़ी बहसें हुई हैं। साहित्य से क्रान्ति तक करने का सिद्धान्त भी सामने आया और अनके वामपंथियों ने लाल साहित्य लिखा भी, लेकिन यह विचार हवा में उड़ गया। साहित्य में विचार एक शक्ति है, वह व्यक्ति-व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है और यदि वह विचार जीवन्त अनुभव से सम्पन्न है तो वह अपने पाठक की सोच को बदल सकता है। तुलसी और प्रेमचन्द जैसे लेखक अपने समाज को निरन्तर बदलते रहते हैं। मेरा लेखन तो मूलतः शोध आधारित है। प्रेमचन्द पर कई ऐसी मिथक बन गई थीं जिनका कोई आधार नहीं था। मेरे लेखों, पुस्तकों ने साहित्य प्रेमियों की सोच को काफी बदला है और ऐसे लोग पूरे देश में हैं जो मुझसे मिलते रहे हैं। प्रेमचन्द की अब वह मूर्ति नहीं है जो वामपंथियों ने झूठी बुनियाद पर बनाई थी। अब दस्तावेजों, प्रमाणों के आधार पर प्रेमचन्द की एक नई मूर्ति बनी है भारतीयतावादी। वे भारतीयता के कथाकार थे।

मंच पर लेखकों से प्रेरणा लेने की बातें बहुधा कही जाती है। राजनीतिज्ञ भी लेखकों के कसीदे पढ़ते हैं। पर मंच से ओझल होते ही सारी बातें हवा हो जाती है। कौन है जो आज लेखकों से प्रेरणा लेता है।

एक जमाना था जब लेखक प्रेरणा के केन्द्र होते थे, पर वह जमाना अब नहीं है। 'रामचरितमानस' आज भी शिक्षित-अशिक्षित सभी को जीवन के शुभ के लिए प्रेरित करती है, परन्तु आज सब प्रदर्शन की भेंट हो गया है। राजनीतिज्ञ तो लेखकों को सम्मानित करने का नाटक करते हैं,पर सच मानिये इन नेताओं ने लेखकों की एक पंक्ति भी नहीं पढ़ी होगी और लेखक भी नेताओं की चाटुकारिता करते फिरते हैं। बच्चन, नीरज, दिनकर, श्यामनारायण पांडेय, सोम ठाकुर आदि का वक्त मैंने देखा है जब ये कवि नेताओं से बड़े होते थे और इनके प्रति आदर-सम्मान रखते थे। अब न तो बच्चन, नीरज जैसे कवि हैं और न उस समय जैसे नेता। अब मंच पर हास्य कवि और उनके सम्मुख नेता बैठे होते हैं और हास्य कविताओं का दौर चलता है जो कई बार भौंडेपन का रूप ले लेता है। यह विकास नहीं पतन है।

साहित्य समाज में अपनी जगह फिर हासिल कर सके, इसके लिए क्या कुछ करना चाहिए।

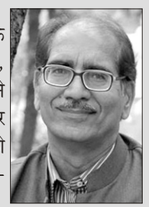

साहित्य यदि ऐसा चाहे भी तब भी नहीं हो सकता। साहित्य वैसे भी कोई सामूहिक प्रयास नहीं कर सकता। समाज में साहित्य का स्थान कोई एक महान् रचनाकार ही बना सकता है। वाल्मीकि, वेद व्यास, कालिदास, चंद बरदाई, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मैथिलीशरण गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा जैसे रचनाकार जब पैदा होते हैं तो साहित्य की समाज में पैठ स्वतः होने लगती है बिना किसी प्रयत्न के। आपको अब ऐसे किसी साहित्यकार की प्रतीक्षा करनी होगी जो अपने समय को कालजयी रचनाएँ दे सके और समाज को नई दिशा। आपको आश्चर्य नहीं होता कि स्वतंत्रता के सत्तर वर्षों में देश में एक भी ऐसा साहित्यकार उत्पन्न नहीं हुआ जो साहित्य को समाज में स्थान दिला सके, उसकी मान्यता बढ़ा सके और उसे जीवन का अंग बना सके। अब तो साहित्यकारों का प्रभामंडल सूख-सा गया है- निस्तेज, प्रभावहीन और निरर्थक।

(गोयनका जी द्वारा अक्टूबर 2017 में दिये गये उत्तरों का एक अंश)

ओम नागर की कविताएँ

युवा कवि ओम नागर की कविताओं में किसान झांकता है, उसका गाँव और खेत खलिहान झांकते हैं और तो और कवि का देशजपन साहूकार की बही में कैद सिसकते खेतों की रूलाई भी सुन पाता है। दरअसल कविता में अपनी जड़ों से जुड़ना, अपनी मिट्टी की गंध होना या अपनी परम्परा का निर्वहन करना इन दिनों एक मुहावरे की तरह घटित हो रहा है। लेखन में खेत-खलिहान और बोलियों को जस-का-तस रख देना देशजपन नहीं है। जब तक आप उस देसी खांटीपन को चीरकर उसके देशज दुख-सुखों का पता नहीं लेते तब तक वह एक सच्ची कविता नहीं हो सकती। ओम नागर किसान और गाँव के उन्हीं ढंके-छुपे घावों और दर्द की पड़ताल अपनी कविता में करते हैं। 'पिता की वर्णमाला' युवा कवि की एक मार्मिक कविता है जिसमें मौजूद पिता के लिए वर्णमाला और गणित सभी कुछ अपने खेत से शुरू होकर वहीं खत्म होते हैं। उनके लिए वर्णमाला सीखने का अर्थ किसानी के मौसमों की भाषा पढ़ना है। यह बेबस और सीधा-सादा पिता दुनियादारी के 'गणित' से अनभिज्ञ है और तभी उसके जीवन में कहीं 'जोड़' नहीं केवल 'घटाव' भर है। पूरी कविता में पिता की इस विवशता को चित्रित करते हुए कवि अंत में उसी सच्ची निस्संगता को बल प्रदान करता है-'पिता आज भी बो रहे हैं शब्दबीज/ पिता आज भी काट रहे वर्णमाला/ बारहखड़ी आज भी खड़ी है हाथ बांधे/ पिता के समक्ष।' 'जमीन और जमनालाल' का अनुप्रास कथित विकास की ओट में ग्रामीण भूगोल को तहस-नहस करने की व्यथा-कथा है। इस तथाकथित विकास ने जिस अंधाधुंध तरीके से हमारे ग्रामीण संसाधनों और अर्थव्यवस्था को नष्ट किया है उससे गाँव और किसान का जीवन कठिनतर होता जा रहा है। इन दिनों उद्योगों, राजमार्गों और बाँधों के कारण हुए जबरिया विस्थापन और मुआवजे के मजाक को यह कविता पूरे मर्म और तंज के साथ प्रकट करती है। 'गाँव इन दिनों' भी कृषि में गिरते हुए भूजल स्तर (धरती के पेंदे में बचा रह गया शेष अमृत), रासायनिक खाद का अविवेकपूर्ण प्रयोग (धरती भी भूलती जा रही है शनैःशनैः असल तासीर), अपने देशज संसाधनों की उपेक्षा (बिसरा दिया है गोबर-कूड़ा-करकट का समुच्चय) और इन सबके फलस्वरूप आत्महत्या करते किसान की सत्यकथा है। इस कविता के क्लाईमेक्स में 'राजधानी' शब्द का उपयोग समूची दुर्दशा के पीछे छुपी राजनीतिक-आर्थिक मंशा को उजागर कर देता है। 'समय के साथ' कविता ग्रामीण और कृषि जगत में आए बदलावों को रेखांकित करती है। कृषि भूमि का घटता रकबा, आधुनिकता के नाम पर पारंपरिक संसाधनों की उपेक्षा, बैंकों का ऋण-व्यापार, ग्रामीण युवाओं की बेरोजगारी और इन सबके बोझ तले सिसकते किसान का दर्द इस कविता में महसूसा जा सकता है-' और तो और धान के धान दिखने वाले खेत/ समय के साथ तब्दील हो गए हैं/ छोटे-छोटे रूमालों की शक्ल में।' 'तुम और मैं हमारे समय-समाज में पनप चुके दो ध्रुवों की दास्तान है। यह शोषक और शोषित, राजा और प्रजा, समरथ और विवश के अंतर की कविता है। यह कविता मंचासीन सत्ता और फर्शासीन जनता के बीच लगातार गहराती खाई को व्यक्त करती है। इस कविता में एक राजनीतिक दृष्टि भी है जो वंचितों के पक्ष में उसका हक मांगती है। 'लेकिन' एक भिन्न आस्वाद की कविता है जिसमें एक नया-सा शिल्प रचने की कवि-इच्छा है। बातें सीधी-सहज हैं लेकिन दो-दो पंक्तियों में उन्हें तोड़कर, एक तंजनुमा तेवर देकर कवि उन्हें रोचक बना देता है। 'तुम्हरा कहा कौन सुनता है' समकाल में अप्रासंगिक होते दीखते कवि और कविता के कारण उपजा दर्द है। शब्दों की सत्ता के लगातार कमजोर होते जाने का दुःख कवि को भीतर तक सालता है-' काहे बिना बात कुढ़ता है/ तुम्हरा कहा कौन सुनता है।' 'हम बंजारे' खानाबदोश जिंदगी की अस्थिरता और बेचैनी को बयां करती है। इस वर्चुअल होते जा रहे संसार में 'किताबों की बातें' जैसी कविता पढ़ना एक सुखद अहसास देता है। 'सॉफ्ट' वर्सेस 'हार्ड' की पशोपेश वाले समय में यह कविता एक 'गुलजारियन अहसास' देती है- 'मेज से गिर कर बोल उठी किताबें/ कि उन्हें कब पढ़ा जाना है अभी।' 'देश-दिशा से आती हुई खुशबू' में एक ग्लोबल दृष्टि है लेकिन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली, व्यापार वाली नहीं। यह दरअसल सद्भाव और शांति के पक्ष में रचा गया एक आधुनिक गीत है-' साबुत बची दिखेंगी/ युद्ध-टैंक के नीचे की हरी-कच्च दूब।' युद्ध के विरुद्ध ऐसी ही कविता 'फूल-सी कविताएँ' है। 'कवि का आखिरी हलफनामा' एक सच्चे कवि के प्रतिरोध और शब्द-सत्ता की ताकत की कविता है। 'हँसी के कण्ठ में अभी रोना बचा है' शृंखला की छः कविताओं में हँसने को लेकर कवि ने मार्मिक और प्रभावी बिम्ब रचे हैं। आकार में छोटी ये कविताएँ हँसी और उल्लास को नये तेवर प्रदान करती हैं। युवा कवि ओम नागर की कविताएँ एक भारतीय किसान के दुख-दर्द का रोजनामचा है। यहाँ आपको किसान का वास्तविक जीवन मिलेगा जहाँ कसक और आँसू हैं तो वह हँसी भी है जिसमें ईश्वर अपनी हँसी मिलाता है।

निरंजन श्रोत्रिय

पिता की वर्णमाला

पिता के लिए
काला अक्षर भैंस बराबर।

पिता नहीं गए कभी स्कूल
जो सीख पाते दुनिया की वर्णमाला
पिता ने कभी नहीं किया
काली स्लेट पर
जोड़-बाकी, गुणा-भाग
पिता आज भी नहीं उलझना चाहते
किसी भी गणितीय आंकड़े में।

किसी भी वर्णमाला का कोई अक्षर कभी
घर बैठे परेशान करने नहीं आया
पिता को।

पिता
बचपन से बोते आ रहे हैं
हल चलाते हुए
स्याह धरती की कोख में शब्द बीज
जीवन में कई बार देखी है पिता ने
खेत में उगती हुई पंक्तिबद्ध वर्णमाला।

पिता की बाराखड़ी
आषाढ़के आगमन से होती है शुरू
चैत्र के चुकतारे के बाद
बंद बोरियाँ या बंडे में भरी पड़ी रहती है
शेष बची हुई वर्णमाला
साल भर इसी वर्णमाला के शब्दबीज
भरते आ रहे हैं हमारा पेट।

पिता ने कभी नहीं बोई गणित
वरना हर साल यूँ ही
आखा तीज के आसपास
साहूकार की बही पर अंगूठा चस्पा कर
अनमने-से कभी घर नहीं लौटते पिता।

आज भी पिता के लिए
काला अक्षर भैंस बराबर ही है
मेरी सारी कविताओं के शब्दयुग्म
नहीं बांध सकते पिता की सादगी।

पिता आज भी बो रहे हैं शब्दबीज
पिता आज भी काट रहे हैं वर्णमाला
बाराखड़ी आज भी खड़ी है
हाथ बांधे
पिता के समक्ष।

जमीन और जमनालाल

आजकल आठों पहर यूँ
खेत की मेड़ पर
उदास क्यों बैठे रहते हो जमनालाल ?

क्या तुम नहीं जानते जमनालाल
कि तुम्हारे इसी खेत की मेड़ को चीरते हुए
निकलने को बेताब खड़ा है राजमार्ग
क्या तुम बिसर गए हो जमनालाल
'बेटी बाप की और धरती राज की होती है'
और राज को भा गए हैं तुम्हारे खेत

इसलिए एक बार फिर सोच लो जमनालाल
राज के काज में टांग अड़ाओगे तो
छलनी कर दिए जाओगे गोलियों से
शेष बचे रह गए जंगलों की ओर
भागना पड़ेगा तुम्हें और तुम्हारे परिवार को

सुनो! जमनालाल बहुत उगा ली तुमने
गन्ने की मिठास
बहुत कात लिया अपने हिस्से का कपास
बहुत नखरे दिखा लिए तुम्हारे खेत के कांदों ने
अब राज खड़ा करना चाहता है
तुम्हारे खेत के आसपास कंकरीट के जंगल

जो दे रहे हैं बख्शीश समझकर रख लो जमनालाल
वरना तुम्हारी कौम आत्महत्याओं के अलावा
कर भी क्या रही है आजकल
लो जमनालाल गिन लो रूपये
खेत की मेड़ पर ही
लक्ष्मी को ठोकर मारना ठीक नहीं जमनालाल।

गाँव इन दिनों

गाँव इन दिनों
दस बीघा लहसुन को जिंदा रखने के लिए
हजार फीट गहरे खुदवा रहा है ट्यूबवेल
निचोड़ लेना चाहता है
धरती के पेंदे में बचा रह गया शेष अमृत
क्योंकि मनुष्य के बचे रहने के लिए
जरूरी हो गया है
फसलों का बचे रहना।

फसल जिसे बमुश्किल
पहुँचाया जा रहा है रासायनिक खाद के बूते
घुटनों तक
धरती भी भूलती जा रही है
शनैःशनैः असल तासीर
और हमने भी बिसरा दिया है
गोबर- कूड़ा-करकट का समुच्चय।

गाँव इन दिनों
किसी न किसी बैंक की क्रेडिट पर है
बैंक में खातों के साथ
चस्पा कर दी गई है खेती की नकलें
बहुत आसान हो गया है अब
गिरवी होना।

शायद इसलिए गाँव इन दिनों
ओढ़े बैठा है मरघट-सी खामोशी
और जिंदगी से थक चुके किसान की गर्म राख
हवा के झोंके के साथ
उड़ी जा रही है
राजधानी की ओर.....।

समय के साथ

कुछ चीजें नहीं रहती समय के साथ
बदल लेती हैं अपनी सूरत और स्वभाव।

जैसे किसी भी किसान के हाथों में
नहीं नजर आती अब अलस्सुबह से शाम तक
बंजर खेतों की जुताई के दौरान
कील लगी बांस की लकड़ी/परानिया
और ना ही कमजोर बैल के पुट्ठों पर
बचा है अब इतना मांस
जो अनदेखी कर दे दर्द की पराकाष्ठा
बढ़ाता चला जाए अपनी रफ्तार

वैसे भी कितने कुछ रह गए हैं अब बैल
धरती को आहिस्ता-आहिस्ता जोतने के लिए
गडारों की धूल से उकताये
खंडित बैलगाड़ी के पहिये
कबाड़ की शक्ल में पड़े हैं
गाँव के बाहर पगडंडी के समीप
जो कभी-कभार याद दिला देते हो शायद
कुरूक्षेत्र में लड़े किसी विकट योद्धा की।

और तो और थान के थान दिखने वाले खेत
समय के साथ तब्दील हो गए हैं
छोटे-छोटे रूमालों की शक्ल में
कुछ बीघा-बिसवों में
पटवारी के बस्ते में बंद खेतों की नकलें
बढ़ा रही है किसी न किसी बैंक का ग्राफ
सही है कुछ चीजें नहीं रहती समय के साथ
बदल लेती है अपनी उपयोगिता व स्थान।

जैसे बीते बैसाख के अंधड़ ने
बूढ़े बरगद की वो डाली भी ला पटकी जमीन पर
जिस डाली पर गुजरी सदी के प्रारंभ में
सत्ता मद में चूर एक राजा ने
मुक्ति के आकांक्षी एक बागी को
लटकवा दिया था सबके समक्ष
फांसी के फंदे पर।

अब तो वो बरगद भी नहीं रहा
गाँव के बीचों-बीच
हालांकि वो राजा, वो हुकूमत भी नहीं रही अब
जिसके अट्टहास में दबी रह गई
कईयों की सिसकियाँ/ रूदन/ किलकारियाँ

आज उस जगह खड़ा हो रहा है पंचायत भवन
और बरगद की परछाई तक लगी है
महानरेगा की मस्टररोल में नाम तलाशते
युवाओं की लम्बी कतार।

तुम और मैं

तुम मंच पर
मैं फर्श पर बैठा हूँ
एक सच्चे सामाजिक की तरह

तुम्हें चिंता है अपने कलफ लगे कुरते पर
सिलवट उतर आने की
मुझे तो मुश्किल हो रही यह सोचते
कि अभी और कितनी खुरदरी करनी है तुम्हें
तथाकथित तरक्की की राह

तुम किस अजाने भय से रहते हो इन दिनों
डरो नहीं कुर्सियाँ किसी की सगी नहीं हुई
तुम्हारी भी नहीं होगी, यही सच है

मुझे क्या, तुम्हारी सारी कुर्सियाँ मुबारक तुम्हें
मैंतो तुम्हारे भाषण के कूड़े से
बेशकीमती कौड़ी ढूँढ रहा था बस
फिर भी तुम हो कि तुम्हारे चेहरे से डर की
छाया नहीं जाती
सियासत में इतना डर ठीक नहीं
तुम कुर्सियों के इर्द-गिर्द
पक्का कर रहे हो अपना बचना
ऐसे में तुम में जो मनुष्यता बचनी थी, नहीं बची

मेरा क्या, मैं तो रचता रहूँगा शब्द
यूँ ही अनवरत
जिन शब्दों को ब्रम्ह होने का वरदान है

तुम मेरे रचने से डर रहे हो
रचो! रचो मेरे रचने के खिलाफ कोई साजिश रचो
जो तुम मंच के लिए भी यही रचते रहे,
रचो बेधड़क
मैंमनुष्यता के लिए रच रहा हूँ शब्द
फिर भी डर रहे हो तुम।

लेकिन

बोलते बहुत अच्छा हो लाल किले से तुम भी
लेकिन भाषण से रोटी नहीं बनती

नाचते भी क्या खूब हो तुम दुनिया भर में
लेकिन हमारे घर का आंगन टेढ़ा है जरा-सा

गाते भी हो बहुत खूबसूरत हमारे दुःख
लेकिन तुम्हारे राग से न मेह बरसे न आँख झरे हैं

तुम्हारे दो कदम चलने से मिलता
बादशाहत का पता
लेकिन पगथलियाँ तुम्हारी छालों से अपरिचित हैं

बहुत अच्छा ही खाते होंगे, जब मन करे तुम तो
लेकिन कभी कोई रीती डकार आई हो तो बताना

कविता तो तुम भी कर ही लेते हो अच्छी-सी
लेकिन करते क्या हो इसके सिवा बताना जरा।

तुम्हरा कहा कौन सुनता है

कौन कवि
और कैसी कविता
काहे शब्दों का सिर धुनता है
तुम्हरा कहा कौन सुनता है

जर्दा खाए मास्टर प्यारे
छोरें डस्टर चोर तुम्हारे
क ख ग घ भूल गए सब
नाव गई मस्तूल गए सब
काहे बिना बात कुढ़ता है
तुम्हरा कहा कौन सुनता है

मक्का कटती सरसों लिखते
अभी-अभी परसों को लिखते
खेत की मिट्टी देखी नाहि
इंकलाब की करे उगाहि
काहे न धरती से जुड़ता है
तुम्हरा कहा कौन सुनता है

समय हुआ बहुत बलवंता
घाट-घाट पर साधु संता
जंतर-मंतर सुखिया तंतर
मनुज न जाने कोई अंतर
काहे बंद गली में मुड़ता है
तुम्हरा कहा कौन सुनता है।

हम बंजारे

दुःख जब-जब भी बरसा
मेरे मन की धरती पर
तब-तब तेरी यादें तिरपाल बन
ढाँकती रही मेरे संपूर्ण अस्तित्व को
और बचाती रही विपरीत
मौसमों की मार से।

मौसम बदलते हैं
बदलते रहेंगे
जमीन न बदली/ न बदलेगी
पोसरी हुई भी कभी तो
यादें ही दृढ़ बनाती रही
विश्वास के रजकणों को
ताकि खूंटियों की जकड़न
वैसी-की-वैसी बनी रहे ताउम्र।

और रहे भी क्यों नहीं
एक बाशिन्दा वो भी तो है
उसकी अपनी चीजें भी तो रखी हैं
किसी कोने में रखें
पुराने बक्से के पेंदे में बिछे
अखबार के नीचे।

और कौन होगा भला जो
अपनी चीजों को न संभाले

हम बंजारों का क्या
कबीले आज यहाँ तो कल वहाँ
यह तो
डम्र भर का सिलसिला है
बसना, उजड़ना फिर बसना।

किताबों की बातें

किताबें न होती
तो न होती किताबों की बातें
और न ही होता जीवन इतना खूबसूरत
अक्सर बातों में किताबों का जिक्र
ऐसे ही करती है वो!

जब भी सघन अँधेरे में डूबा उसका इर्द-गिर्द
तो उन्हीं किताबों के कई-कई पात्र
अपनी पोली मुट्ठियों में दमकाते रहें जुगनू

जब कुछ भी नहीं रहा आसपास
सन्नाटे के सिवा
दुःख भड़भड़ाता आया जो भीतर
नहीं लौटा फिर
किताबें ही थी जो गाहे बगाहे दिखाती रहीं
अंदर के दुःखों को बाहर का रास्ता

जिस सिरहाने पर सिर रखकर सोती वो
वह किताबों का भी सिरहाना रहा
जब कभी कुर्सी पर बैठे ली उनींदी अँगड़ाई
तो मेज से गिर कर बोल उठी किताबें
कि उन्हें कब पढ़ा जाना है अभी

हवा आती
फड़फड़ाने लगते किताबों के कोमल पंख
उड़ जाने के भय से
बोलने वाली किताबें कर देती बंद
उसका कमरा किताबों का कैदखाना

उसकी रूह
किताबों की बस्ती की बाशिन्द
उसका चेहरा
किताबों के शब्दों से लेता रौशनाई उधार
उसकी बातें
किताबों की बातों से होती है मुकम्मल
उसकी साँसों की मुलायम आवाजाही
चीन्ह लेते हैं अक्सर
किताबों के दुनियाई हातिम।

देश दिशा से आती हुई खुशबू

दुनिया भर में कौन-सा देश किस दिशा में है
इससे क्या फरक पड़ता है भला पृथ्वी को

किसी भी दिशा में देख लीजिए
पृथ्वी सिर्फ पृथ्वी ही रहेगी

लेकिन जैसे ही दिखने लगेंगे देश

हमारा देखना
हो जाएगा कई हिस्सों में विभाजित

हर देश का
अलग बंकर
अलग रंग
आँख की किरकिरी हैं बस

वो दिन कब आएगा
जब किसी भी दिशा से देखेंगे हम पृथ्वी
साबुत बची दिखेंगी
युद्ध टैंक के नीचे की हरी कच्च दूब

मिसाइलों के मुहानों पर उगे होंगे पीपल
बंदूक की नाल में सजे होंगे टहनीदार गुलाब

किसी दिशा में न होगी कोई दीवार
सभी देशों की ओर खुले मिलेंगे
सभी दरवाजे/ खिड़कियाँ

सरहदों पर न होगी कोई बाड़
न किसी तोप के निशाने पर होगा
कोई उड़ता परिन्दा

सब ओर लगे होंगे फूलों के बगीचे
एक ही क्यारी में खिले होंगे
सभी रंगों के फूल
लाल, नीले, हरे और पीले
काला भी हो तो हो फूलों का रंग

मोल रंग का नहीं होता कभी
और खुशबू का मोल कौन
लग सकता है भला

ये देश-दिशा से आती हुई खुशबू
बारूदी नहीं होगी कभी
जिस भी दिशा से आएँगी -जाएँगी नथुनों तक
उस हवा में घुली होगी मोगरे की महक।

फूल-सी कविताएँ

आधी दुनिया लड़ रही है युद्ध
आधी दुनिया जुटी है युद्ध की तैयारी में

हथियारों की मंडी में भीड़ बहुत है
मैं हूँ कि देख रहा हूँ अब भी हरे कच्च पेड़
पेड़ों पर टंगे हुए पत्ते और खिले हुए फूल
युद्धरत दुनिया में लिख रहा हूँ फूल-सी कविताएँ

आधी दुनिया सो रही है भूखे पेट
आधी दुनिया खा कर नहीं ले रही डकार भी

सरकारी गोदामों में अनाज बहुत है
मैंहूँ कि भूखे बच्चों को बंधा कर रोटी की आस
चाँद को उँगली से दिखा समेट लेता हूँ हाथपैर
युद्धरत दुनिया में लिख रहा हूँ रोटी-सी कविताएँ

आधी दुनिया जोत रही है अभी भी बैल
आधी दुनिया जोत रही है अभी भी आदमी
सबको हाँकने को तैयार बहुत हैं

मैं हूँ कि किसान को दे रहा हूँ पूरे दाम का दिलासा
सरकार के डस्टबिन में चिंदी-चिंदी पड़ा है मांगपत्र
युद्धरत दुनिया में लिख रहा हूँ फसल-सी कविताएँ

आधी दुनिया का हलक सूखा है
आधी दुनिया के सिर चढ़ा परस भर पानी
मैं हूँ कि हाइड्रोजन-ऑक्सीजन से बना रहा जल-युग्म
और आकाश का हरापन देख तोड़ देता शब्द-संधियाँ
युद्धरत दुनिया में लिख रहा हूँ जीवन-सी कविताएँ।

कवि का आखिरी हलफनामा

जब वो कुछ नहीं थे
तो भी उनके पुरखे तो थे ही कुछ न कुछ

पुरखों की जात वालों के वोट बहुत थे
जात के वोट बटोर लेने वालों की भीड़ थी बहुत

पहले ठेके समेटे फिर समेट लिया धरती का जल
एक दिन जात के कंधे पर चढ़ हो गए विधायक

विधायक हुए तो आदमी न रहे
कभी आदमी होने की कोशिश भी की तो
बीच में टपक जाता ठेकेदारी वाला बेईमान मिजाज

विधायक की भय-नगरी में
प्रतिरोध की सारी आवाजें खो चुकी हैं अपनी खनक
एक अदद कवि की जरा-सी ऐंठन और खर्राटे
उड़ाए हैं आराम पसंद विधायक की सनातन नींद

बहुत नरम है कवि की गर्दन
और कवि के शब्दों की धार बहुत तेज

विधायकजी आसानी से मरोड़ सकते हैं कवि की गर्दन
लेकिन शब्दों की गर्दन मरोड़ देना आसान नहीं

यह कविता नहीं है
ये कभी भी मार दिए जाने वाले
एक अदद कवि का आखिरी हलफनामा है।

हँसी के कंठ अभी रोना बचा है

(एक)
तुम हँसो
मुझे तो दुनिया भर के हिस्से का
रोना है अभी दो टूक

तुम हँसो
कोख से मुस्कुराते हुए आए दुनिया में
मैंने तो बेआवाज खोली अपनी आँखें

किसी खुरदरे हाथ की
सख्त चिकोटी के निशान अब भी मेरी
देह पर है चस्पा

मेरी काली चमड़ी में
वही एक जगह है
जहाँ से मिलती रहती है मुझे
प्रतिरोध की लाल सुर्खी।

(दो)
हँसो
कि हँसना सबसे अधिक नैसर्गिक है
प्रकृति की तरह

ऐसी निश्छल हँसी के अकाल के दिनों में
ऐसी ही हँसी से झरते हैं फूल
जैसे हँस रही हो बारिश

हँसो
कि रोने से अधिक कठिन हो चला है हँसना
जिनकी हँसते हुए टूट जाती साँसों की माला
उनके दर खड़ी रही मौत की आँख में
आँसू देखे गए अक्सर।

(तीन)
हँसो
हँस लो जितना भी हँसना है तुम्हें
जरा-सी उम्र का होता हँसी का यह उपहास

रूलाई की वय
आदमी की उम्र से होती है कहीं अधिक
एक दिन नहीं रहता जब आदमी
और उसकी हँसी भी
तब किसी दूसरे कंठ से फूटती है
उसके हिस्से की बची हुई रूलाई।

(चार)
हँसो
हर उस चीज पर
जो तुम्हारे दम्भ के आगे बौनी लगती है तुम्हें

दुस्साहस हँसी हँसो
पृथ्वी पर खड़े होकर आकाश पर हँसो
उँचाई पर खड़े होकर निचाई पर हँसो

हँसो
और हँसते-हँसते डूब जाओ रसातल में
कभी रोने का उत्प्लावन बल
ले आएगा तुम्हें समुद्र की सतह पर
जहाँ न रोने की प्रतिध्वनि होती है
न हँसने का कोई साबुत शोर
यहाँ नहीं बनता तुम्हारी करूण पुकार का
कोई ईको।

(पाँच)
हँसो
या रो लो किसी भी लिबास में
कोई भाषा में हो तुम्हारा उल्लास, अवसाद

एक-सी हँसी हँसता है
अखिल ब्रम्हाण्ड
हर युग के मानव की रूलाई में होती है
एक-सी नमी

किसी भी आँख में हँसते-हँसते
उतर आता है पानी
किसी आँख का रोते-रोते
सूख जाता है पानी।

(छः)
हँसो
यूँ ही हँसती रहा करो मेरी लाडो
तुम्हारे यूँ हँसते रहने को देख बँधी रहती है
जीत की उम्मीद

तुम्हारी हँसी से गुम हो जाती है थकन
तुम्हीं से हँसी उधार ले हँसता है गुलाब

तुम्हारी हँसी में शामिल है
ईश्वर की हँसी।

नाम : ओम नागर
जन्म : 20 नवम्बर 1980, ग्राम अन्ताना, जिला बाराँ (राजस्थान)
शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी एवं राजस्थानी), पी-एच.डी., बी.जे.एम.सी.
सृजन : 'निब के चीरे से' (कथेतर गद्य), दो कविता संग्रह 'देखना एक दिन' एवं 'विज्ञप्ति भर बारिश' प्रकाशित। इसके अलावा तीन काव्य संग्रह राजस्थानी भाषा में प्रकाशित। राजेश जोशी के काव्य संग्रह 'दो पंक्तियों के बीच' तथा लीलाधर जगूड़ी के काव्य संग्रह 'अनुभव के आकाश में चाँद' का राजस्थानी भाषा में अनुवाद प्रकाशित।
पुरस्कार : भारतीय ज्ञानपीठ का नवलेखन पुरस्कार (2015) कथेतर गद्य के लिए,केन्द्रीय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली का युवा पुरस्कार, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर का सुमनेश जोशी पुरस्कार, साहित्यिक पत्रिका 'पाखी' का शब्द साधक युवा सम्मान इत्यादि।
संप्रति : पत्रकारिता एवं स्वतंत्र लेखन
सम्पर्क : 3 ए-26, महावीर नगर तृतीय, कोटा- 324 005 (राजस्थान)
मोबाइल : 9460677638
ई-मेल : omnagaretv@gmail.com

नीरजा माधव

15 मार्च, 1962 को जौनपुर के मुफ्तीगंज के साथ ग्राम कोतवालपुर में जन्मी नीरजा माधव ने अंग्रेजी में एम.ए., बी.एड. और पी-एच्.डी. के साथ ही सितार में डिप्लोमा किया।

उपन्यास 'यमदीप', 'तेभ्य स्वधा', 'गेशे जम्पा', 'अनुपमेय शंकर', 'अवर्ण महिला कांस्टेबल की डायरी', 'ईहा मृग' और 'धन्यवाद सिवनी' प्रकाशित। स्त्री विमर्श पर इनकी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास' पाठकों के बीच बहुप्रशंसित रही।

'सर्जना पुरस्कार', 'यशपाल पुरस्कार', 'भारतेन्दु प्रभा', मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी अवार्ड, 'शंकराचार्य पुरस्कार', 'शैलेश मटियानी पुरस्कार', 'राष्ट्रीय साहित्य सर्जक पुरस्कार' और 'काशीरत्न सम्मान' आदि से सम्मानित।

संपर्क :- मधुवन, एसए 14/598 सारंगनाथ कॉलोनी
सारनाथ वाराणसी 221007 उ.प्र.
मोबाइल : 09792411451
ई-मेल : neerjamadhav@gmail.com

सैल्यूट

नीरजा माधव

हेमचन्द्र की आत्मा उसके शरीर से सिर के कटते ही जब अलग हुई तो वेग के नियम के अनुसार वह तेजी से ऊपर की ओर चली थी। कुछ इतनी तेज कि कुछ पलों में ही उसने सूर्य तक का अपना सफर तय कर लिया था। सूर्य, पृथ्वी को प्रकाशित करने के लिए अनजान क्षितिज के द्वार पर टँगा सबसे बड़ा बल्ब। एक ऐसा रहस्यमय बल्ब जो पृथ्वीवासियों को समुद्र के गर्भ से निकलता दिखाई देता है तो आकाश में रोशनी बिखेरते छोटे-छोटे तारों को अपने बीच का कोई प्रभावशाली महानायक मालूम पड़ता है। ब्रह्माण्ड के हर ग्रह पिण्ड को वह अपने-अपने ढ़ँग से दिखाई देता प्रतीत होता है।

हेमचन्द्र की आत्मा जब सूरज के पास पहुँची तो उस समय पवन उसके मुखमण्डल को धुँधला करने वाले कुहरे को हाथ बढ़ा कर साफ कर रहा था। स्वर्ग के अधिष्ठाता से उसे आदेश मिला था कि हेमचन्द्र की आत्मा के सामने कोई व्यवधान नहीं होना चाहिए, अस्तु पवन उसके आने की तैयारी में जुट गया था। सूरज का बल्ब अब साफ-सुथरा चमक रहा था। आकाश से लेकर पृथ्वी तक उसकी सुनहरी आभा फैल गई। एक शहीद की अगवानी में सूरज ने भी पलकें बिछा दी थीं।

'तुम आ गये हेम ?' पवन धीर गम्भीर पूछ रहा था। कोई उत्तर न पा उसने आगे जोड़ा-

''यह जो चन्द्रमा की सफेद घण्टी दिखाई पड़ रही है, उसे बजा दो। द्वार तुरन्त खुल जायेगा। ऐसा ही आदेश है कि तुम्हारा रास्ता बिलकुल न रोका जाय। नन्हा ध्रुव तारा अपने साथियों संग तुम्हें मोक्ष-द्वार तक छोड़ आयेगा। वहाँ सभी मुक्तात्माएँ तुम्हारे अभिनन्दन के लिए व्यग्र हैं हेम। इस चन्द्रमा की घण्टी को हिला दो जोर से।' पवन अनुनय कर रहा था।

परन्तु हेमचन्द्र की आत्मा चन्द्रमा से टकराकर पुनः धरती की ओर तीव्र गति से उड़ चली। तारे द्वार खोल नीचे की ओर झाँकने लगे। उनकी छाया में सूरज थोड़ा छिप-सा गया। पृथ्वी पर अँधेरा पसर गया था। हेमचन्द्र की आत्मा भारत-पाकिस्तान की सीमा पर गोल-गोल चक्कर काटने लगी। सीमा के उस पार उसके कटे सिर को जमीन पर रख फुटबाल की तरह एक ओर से दूसरी ओर उछाला जा रहा था। पहाड़ की वादी में वहशी अट्टहास गूँज रहा था।

अपमान से चीड़ वन दहक उठा। सीमा समाप्त कर देने के लिए भारतीय सेना का शौर्य मचलने लगा। मुट्ठियाँ भिंचने लगीं। मशीनगनें आग उगलने को बेताब हो उठी। सैनिकों के रंगों का लहू खौलने लगा। हेमचन्द्र की आत्मा अपना सिरविहीन धड़ जमीन पर देख रही थी। पूरी वर्दी खून से तर बतर। उसके हथियार गायब थे जिन्हें लेकर वह अपने साथी के साथ पैदल ही अँधेरे में अपनी सीमा का निरीक्षण करने निकल पड़ा था।

टार्च की रोशनी में वे अलग-अलग पहाड़ी रास्तों पर बढ़े चले जा रहे थे। कुछ महीनों पहले ही तो इस चौकी पर तैनाती हुई थी। प्रतिदिन सुबह-सुबह परेड में अपने कमाण्डर की जोश भरी आवाज उसे और जोशीला बना देती। वह दुगुनी शक्ति महसूस करने लगता अपने भीतर। कँटीले तारों के उस पार की पहाड़ियाँ और चीड़ के जंगल हाथ हिला-हिला कर मानों उसे अपना बना लेने के लिए आमंत्रित करने लगते। उसने पढ़ा था भारत विभाजन का इतिहास। उसने देखा था भूगोल में अखण्ड भारत का नकशा। उसने ली थी भारत माँ की सेवा की शपथ। इसीलिए सीमा की इस चौकी पर तैनाती को उसने पूरे जज्बे के साथ स्वीकार किया था। जब तब अपने साथी के साथ अकेला ही निकल पड़ता सीमा की सुरक्षा देखने। उसे पता था चोरों की तरह भारतीय सीमा में घुसपैठ करने वाली कायरों की जमात का। कितनी बार तो उसके सैनिकों ने साथ मिलकर कितने घुसपैठियों को ढेर कर दिया था। मक्खी की आदत होती है- आप उड़ाते रहिए वह आपके आस-पास भिनभिनाती रहेगी। एकमात्र वार करना ही विकल्प होता है। पर कभी-कभी थोड़ी-सी भी दृष्टि चूक से वह गर्दन पर बैठ जाती है। घुसपैठियों ने वैसी ही दृष्टि चूक का लाभ उठाया था इस बार। पहले से घात लगाकर बैठे उन आतंकी घुसपैठियों ने उस ओर उसे अकेला पाकर वार कर दिया था। सिर काटकर अपनी कायरता का प्रमाण देने के लिए साथ लेते गये थे।

हेमचन्द्र की आत्मा इस समय अपने सिरविहीन शव को देख रही थी। शव सैनिक शिविर के बाहर खुले में रखा गया था दर्शनार्थ। पुष्प चक्र उसके पैरों के पास पड़ा था। पूरा शव फूलों से ढ़ँका हुआ। उसे ताबूत में रखा जा रहा था। सेना के सर्वोच्च अधिकारी आ चुके थे। उनकी आँखों की लाली में साफ पढ़ा जा सकता था कि वे उस पार की धरती और आकाश को भी लाल कर देना चाह रहे हैं। उनकी मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं, जबड़े खिंचे हुए थे और चहलकदमी करते बूटों की धमक से घाटी का सन्नाटा भंग हो रहा था। वादियाँ धधक रही थीं। सभी चुप थे पर सभी खौल रहे थे। बर्फीले पहाड़ों पर सैनिकों के दिलों की आग लहक रही थी। एक सैनिक से रहा नहीं गया, पूछ बैठा-

'यूँ हम लोग कब तक चुप रहेंगे सर ? हमें आर्डर दीजिए।'

'विवशता है मेजर। हमें ऊपर से आदेश नहीं मिल पा रहा। तुम्हारें दिलों में जो सुलग रहा है वही यहाँ भी है जवान!' उच्चाधिकारी ने अपने सीने को ठोंक कर कहा था।

'तो क्या हमारे सैनिक ऐसे ही एक-एक.....'।

'नहीं, हम ऐसा नहीं होने देंगे।' कड़क आवाज गूँजी।

'फिर कैसे लें हम अपने वीर हेमचन्द्र की शहादत का बदला' दूसरी दहकती आवाज गूँज उठी।

'सैनिक की सबसे बड़ी उपलब्धि उसकी शहादत है पर उसकी शहादत का अपमान दुनिया का सबसे घृणित अपमान है।' सेनाधिकारी की आँखें शिकार पर वार करने से पहले शेर की आँखों की तरह सिकुड़ी थीं।

'एक मंत्री ने तो यह भी टिप्पणी कर दी कि शहीद होने के लिए ही लोग सेना में जाते हैं।'

मेजर की आवाज में बेचैनी थी। आज यहाँ पर संवाद की अघोषित छूट थी। छोटे-बड़े सभी अपने-अपने ढ़ंग से आक्रोश व्यक्त कर रहे थे।

'कुछ कूटनीतिक फैसले होते हैं जिन पर हम कुछ नहीं बोल सकते, परन्तु हमारी शहादत को एक सामान्य घटना मानकर चलना उचित नहीं है।'

सेनाधिकारी एक हाथ की मुट्ठी को अपने दूसरे हाथ की मुट्ठी पर जोर से मारते हुए बोल पड़ा।

'हमारे ताबूत तक के नाम पर तो घोटाले हो चुके। इससे बड़ा अनुचित कार्य और क्या होगा ?'

एक सैनिक धीरे से बड़बड़ाया।

'हम घर परिवार छोड़ बर्फीली चोटियों पर, जंगलों में कदम ताल करते, सरहदों की रक्षा करते हैं और वे वातानुकूलित कमरों से कूटनीतिक स्टेटमेन्ट जारी करते हैं?'' मेजर के नथुने फड़क उठे।

'सुना है शहीद हेमचन्द्र की पत्नी भूख हड़ताल पर बैठ गई हैं। सरकार से उनकी माँग है कि शहीद हेमचन्द्र का सिर वापस लाने पर ही वह शव लेंगी।'

एक अधिकारी ने चिन्ता व्यक्त की।

'तब भी सरकार नहीं फैसला ले रही ? अरे हमें आदेश करें हम हेमचन्द्र का एक सिर ही नहीं, उसके बदले एक सौ और सिरों को काटकर उसे शहीद की विधवा के पैरों में चढ़ा देंगे।'

मेजर की आवाज के समर्थन में सैकड़ों भिंची मुट्ठियाँ आकाश की ओर तन गईं थीं।

'चलो वीरों ! शहीद हेमचन्द्र के ताबूत को पूरे सैनिक सम्मान के साथ कन्धे पर उठाओ।' सेनाधिकारी की मर्माहत-सी वाणी गूँजी।

देश के मजबूत सैनिकों के मजबूत कन्धों पर रखे ताबूत से टकराकर हेमचन्द्र की आत्मा पुनः ऊर्ध्वमुखी हो तेज गति से ऊपर की ओर उड़ चली। ताबूत की कठोरता चन्द्रमा से कम न थी। इस बार की गति में पवन भी साथ था। दोनों एक-दूसरे से बिना कुछ बोले ऊपर की ओर उड़ रहे थे।

'मैं सोचता हूँ मित्र, इस बार तुम चन्द्रमा की घण्टी अवश्य हिला दोगे। सभी तुम्हारी अगवानी के लिए तत्पर हैं। सूरज, चाँद और आकाश की सार्वजनिक बत्तियाँ तारे भी। उस पार का आनन्दमय लोक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है दोस्त।'

पवन ने अपनी वायवीय सीमा से पार जाते हुए हेमचन्द्र की आत्मा के लिए हाथ हिलाते हुए विदा वाले स्वर में कहा, परन्तु कुछ ही पलों में चन्द्रमा से टक्कर ले वापस आती आत्मा को देखकर उसने गहरी निःश्वास छोड़ी-

'पृथ्वी का आकर्षण तुम्हें बार-बार नीचे की ओर खींच रहा है न हेम? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।'

इस बार पवन के साथ हेमचन्द्र की आत्मा अपने गाँव में उतरी थी। पूरे गाँव के लोग उमड़ कर शहर से गाँव को जोड़ने वाली सड़क को देख रहे थे जिधर से सेना की ट्रक उसके ताबूत को सैनिक सम्मान के साथ लिये आ रही थी। फूलों की जगह आँसुओं की वर्षा हो रही थी। सभी की आँखें भींगी थीं।

पवन के साथ हेमचन्द्र की आत्मा अपने घर के सामने उपस्थित हुई थी। पवन हाहाकार कर उठा। घर के आस-पास के वृक्ष जोर-जोर से हरहराने लगे। सूखी पत्तियाँ टूट-टूट कर गिरने लगीं। हेमचन्द्र की आत्मा कराह उठी। सामने जमीन पर पत्नी किरनबाला निढाल-सी बैठी थी। उसके दोनों हाथ अपनी गोद में अस्त-व्यस्त पड़े थे मानों उनमें जान ही न हो। सिर का घूँघट बार-बार नीचे गिर जा रहा था जिसे गाँव की औरतें जब तब ठीक कर दे रही थीं। किरनबाला अपनी छाती पर रह-रह कर हाथ से मुक्का मार रही थी और सिर हिलाते हुए दहाड़ रही थी-

'पहले मेरे शेर का कटा सिर वापस ले आओ।'

लोगों द्वारा समझाए जाने पर भी उसे कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। वह आँखें मूँद बस एक ही रट लगा रही थी- 'मेरे शेर का सिर लाओ पहले।'

हेमचन्द्र की आत्मा तड़प उठी। हवा की सरसराहट में उसकी कराह निकल पड़ी थी-

'किन्नो, यह क्या हाल हो गया तुम्हारा? कहाँ गई तुम्हारी वह लाल बिन्दी और सिन्दूर? हाथों की चूड़ियाँ भी तोड़ डाली तुमने?'

'अरे मेरा शृंगार लूट ले गये सब कायर? पीछे से वार क्यों किया रे नीचों। सामने से लड़ कर दिखाते। काट डालता मेरा हेम तुम लोगों को।...मेरे शेर का सिर लाओ...सिर लाओ...।'

वह दहाड़े मार-मार कर रोने लगी थी। कुछ सरकारी अधिकारी अपराधी की तरह सिर झुकाए पेड़ की छाया में खड़े थे। उन्हें पता चल गया था कि किरनबाला पति के सिर के लिए आमरण अनशन पर बैठ गई है। आनन-फानन में सरकार ने मामले को तूल पकड़ने से पहले सुलटाने के लिए आला अधिकारियों को मौके पर भेज दिया था। कुछ इसमें राजनीतिक षड़यंत्र की गन्ध तलाशने में लग गये तो कुछ किरनबाला का अनशन तुड़वाने के लिये जूस का गिलास हाथों में थामे खड़े हो गये।

किरनबाला को कुछ भी होश न था। वह लगातार बड़बड़ा रही थी- 'मेरे शेर का सिर लाओ।'

गाँव की औरतें आपस में फुसफुसाकर सलाह मशविरा करने लगीं-

'किन्नो के बेटे को बुलाओ। उसे देख शायद कुछ सँभले तबियत।'

'बेचारा, अभी आठ वर्ष का भी तो नहीं हुआ और यह पहाड़ टूट पड़ा। बाप का साया उठ गया उस गरीब के सिर से।' दूसरी महिला भावुक हो सुबक पड़ी।'

'हाँ बहन, पेट जो न करवाए। उसी के लिए न बेचारा हेमचन्द्र सेना में भर्ती हुआ। ये खा-खा कर चर्बियाए नेता परेता के बाल बच्चे नहीं न जाते सेना में भर्ती होने। उन्हें क्या दुःख होगा?'

'देश को लूटने के लिए वो लोग हैं और देश को बचाने के लिए हमारे बाल

बच्चे।'

दूसरी औरत का गुस्सा फूट पड़ा था। यह सावित्री चाची थीं। इनके पति और दोनों लड़के सेना में थे। उनकी आँखों से लगातार आँसू गिर रहे थे।

'बेचारा हेमचन्द्र, माँ-बाप का अकेला था और उसका बेटा बीनू भी अकेला।'

'अरे किन्नो और हेमचन्द्र की उम्र ही क्या थी अभी? दस-बारह वर्ष पहले ही तो ब्याह हुआ। और आज ये दिन देख रही बेचारी।'

सावित्री चाची बिलख पड़ीं। एक औरत उन्हें सान्त्वना देने लगी-

'जिज्जी चुप रहो नहीं तो बेचारी किन्नो पागल ही हो जायेगी तुमको भी रोता देख।'

वह भी आँखें पोंछ रही थी। पेड़ के नीचे एक टूटी चारपाई पर बैठे हेमचन्द्र के पिता को गाँव वाले घेरे बैठे थे। इकलौते बेटे के इस तरह शहीद होने की खबर मिलते ही वे ठकुआ से गये थे। आँखों सेआँसू और मुँह से बोली दोनों ही नहीं निकल रही थी। बस बारी-बारी से वे गाँव वालों का चेहरा पथराई आँखों से देख रहे थे। बीच-बीच में सिर उठाकर आकाश की ओर देख लेते मानो अपनी सम्पूर्ण घृणा कहीं भेजने की कोशिश कर रहे हों।

'बीनू, बीनू ऽऽऽ।' एक स्त्री की आवाज सुनाई पड़ी, तब लोगों का ध्यान उधर गया था जिधर खेत की मेड़ पर नन्हा बीनू अकेले सिर झुकाए बैठा था। वह अपनी नन्हीं हथेलियों में चेहरा छिपाए सुबक रहा था।

हेमचन्द्र की आत्मा तड़प उठी। जरूर नन्हा बीनू उसे ही याद कर बिलख रहा था। अभी कुछ दिनों पहले ही तो छुट्टी लेकर आया था वह तो बीनू को साथ लिए इस खेत में सब्जियाँ बो रहा था। वह कुदाल से गोड़ कर बीज डाल रहा था और बीनू उसे अपनी नन्हीं हथेलियों से समतल कर रहा था। छुट्टी में घर आने पर बीनू उसे पल भर के लिए भी नहीं छोड़ता था। पिताजी को खेत में अधिक काम न करना पड़े इसलिए वह ऐसी फसल बोता जिसमें उसके न रहने पर भी अधिक देखभाल की आवश्यकता न पड़े। सब्जियाँ वगैरह तोड़कर सट्टी में आसानी से पहुँचाई जा सकती थीं। खीरे का बीज डालते हुए हेमचन्द्र ने बीनू के गाल को थपथपाते हुए कहा था-

'अगली बार जब तुम्हारे बर्थ-डे पर आऊँगा, तब तक इसमें फल लग जायेगा। हम लोग खायेंगे।'

'कब है मेरा बर्थ-डे?' बीनू उदास हो पूछ बैठा।

'दो महीने बाद। नवम्बर में। बारह तारीख को।'

उसने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा।

'हर महीने बर्थ-डे क्यों नहीं मनाते पापा?'

वह भोलेपन से पूछ रहा था।

'मेरा बेटा इसलिए पूछ रहा है न कि पापा हर महीने घर आ सकें। आँ ऽऽऽ आँ ऽऽऽ।'

हेमचन्द्र ने बीनू को गोद में उठा उसके पेट में गुदगदी की। बीनू हँसने के स्थान पर रो पड़ा।

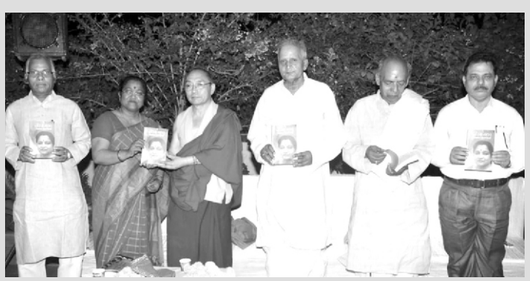

'हाँ, अच्छा नहीं लगता तुम चले जाते हो। मम्मी भी रोती हैं।'

बेटू, तुम तो रहते हो न? मम्मी को मत रोने दिया करो। मेरा समझदार बेटा।'

'मैं बड़ा होकर तुम्हारी तरह नौकरी नहीं करूँगा। बाबा को और मम्मी को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।'

बीनू रुआँसा था।

'और मुझे? मुझे छोड़ दोगे?'

'नहीं।' बीनू उसकी गर्दन पकड़ कर लिपट गया था।

'चलो, इसे भी बो दें फिर घर चलते हैं। किन्नो से पकौड़ियाँ बनवायेंगे, हम दोनों खायेंगे।'

इस समय बीनू दरवाजे के पास वाले उसी खेत की मेड़ पर बैठा था। सब्जियों के हरे पौधे अपनी-अपनी औकात के अनुसार लहरा रहे थे। बीनू रो रहा था। पापा की मौत की सूचना उसे भी मिल चुकी थी। दो दिन से घर में चूल्हा नहीं जला था। उसे भूख लगी थी तो बगल वाली बड़ी मम्मी उबले आलू के साथ एक लोटा चाय दे गईं थीं। मम्मी और बाबा ने तो नहीं खाया पर उसने थोड़ा-सा खा लिया था।

'पापा ऽऽऽ पापा ऽऽऽ।' खेत की मेड़ पर बैठा वह सब कुछ याद कर रो पड़ा। उसे खल रहा था। सुबह से न जाने कितने लोग शहर से आ आकर बाबा और मम्मी को समझा रहे थे पर उससे कोई बात नहीं कर रहा था। उसके पापा होते तो ऐसा न होने देते। उसे भला अकेले खेत की ओर क्यों आने देते ? हमेशा तो मना करते थे। अकेले कहीं नहीं जाना। वह तो आज जानबूझकर इस समय अकेले इधर चला आया। पापा को चिन्ता हो तो आकर रोकें उसे। नहीं तो वह अकेला ही खेत की मेड़ पर बैठा रहेगा। साँप आये, काटे तो काटे। पापा को चिन्ता है क्या कि बीनू अकेले मेड़ पर बैठा है।

बीनू पुनः हिलक-हिलक कर रोने लगा था।

'ओह ! शहीद होने से अधिक कठिन है इस स्थिति को बर्दाश्त करना।'

हेमचन्द्र की आत्मा टूटकर बिखरना चाह रही थी। पवन ने उसे सहेजा।

'हेम! बहुत देर यहाँ तुम्हारा रुकना सम्भव नहीं। चलो, सुनहरा द्वार तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। आकाशगंगा की साँकल इन्तजार कर रही है तुम्हारा, कि कब तुम आओगे और साँकल को स्पर्श करोगे। चन्द्रमा की घण्टी बज उठेगी और आनन्द लोक में अभिनन्दन का मौन स्वर मुखर हो उठेगा।'

'हाँ, जाना ही होगा। मैं अपना वेग थाम नहीं पा रहा।'

हेमचन्द्र की आत्मा उद्वेलित थी।

----------00----------

इस बार अरुन्धती तारे को आदेश मिला था कि हेमचन्द्र की आत्मा को पूरे ब्रह्माण्ड में घुमाओ। वहाँ समय अधिक लगेगा तो पृथ्वी की ओर आकर्षण की उसकी गति भी कम होगी। अतः पवन के राज्य की सीमा से ही अरुन्धती उसके साथ हो ली थी। वे तारों के बीच से गुजर रहे थे। एक के बाद एक अनगिनत तारे टिमटिमा रहे थे। कोई उनके आगे, कोई अगल-बगल। सभी मुस्करा रहे थे और उनके अभिनन्दन में अपनी ज्योत्सना लुटा रहे थे।

हेमचन्द्र की आत्मा रोशनी में नहा उठी।

'क्या यहाँ पृथ्वी की तरह जीवन नहीं है?' आत्मा पूछ बैठी।

'नहीं यहाँ क्षणिक जीवन नहीं है। अनन्त जीवन है यहाँ।'

अरुन्धती ने एक नन्हें तारे को धीरे से पार करते हुए कहा।

'तुम कौन हो?' हेमचन्द्र की आत्मा पूछ रही थी।

'मैं, अरुन्धती। अरुन्धती न्याय की कथा तो तुमने सुनी होगी पृथ्वी पर। परब्रह्म के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए, नेति नेति को समझाने के लिए मेरा ही तो उदाहरण दिया करते हैं।'

अब वे दोनों आकाशगंगा पार कर चुके थे।

'हम कहाँ चल रहे हैं ?' हेमचन्द्र की आत्मा व्याकुल थी।

'हम ब्रह्माण्ड में घूम रहे हैं। उसी ब्रह्माण्ड में जिसे भगवान कृष्ण ने मिट्टी खाने के बाद मुँह खोलकर माँ यशोदा को दिखाया था।' अरुन्धती ने खिलखिलाते हुए अपनी ज्योत्सना की ऊँगलियों से तारों के एक झुण्ड को बगल हटाकर निकलने की राह बनाई। उनके आगे-आगे एक विशाल चमकदार तारा निर्द्वन्द्व चला जा रहा था।

'अर्थात् हम इस समय परब्रह्म के मुखमण्डल में विचरण कर रहे हैं?' हेमचन्द्र की आत्मा पूछ रही थी।

'फिर भी वह इससे दश अंगुल ऊँचा और परे भी है।'

'तुम कभी इससे परे भी जा पाई?'

'नहीं, परे होते हुए भी वह हम सबमें समाया है। हम अपने से परे कहाँ जा सकते हैं? तुम्हारी आत्मा स्वयं से परे कहीं जा पाई है?'

हेमचन्द्र आकुल हो उठा। उसे पृथ्वी याद आ गई। उसने अरुन्धती से पूछा-

'कितना समय हो गया हमें परिभ्रमण करते? अभी कुछ ही पल...।'

'काल से परे है यहाँ सब कुछ। फिर भी तुम पृथ्वी के काल को जानना चाह रहे हो?'

अरुन्धती तारों के बीच ठिठकी थी। सप्तर्षि मण्डल पास आ गया खिसककर।

उसका मुखमण्डल दिपदिपा रहा था। हेमचन्द्र की आत्मा की आवाज वह भलीभाँति सुन रही थी। उसे आदेश था कि उसकी आत्मा के प्रतिकूल कुछ भी न होने पाए। अरुन्धती ने मुस्करा कर बताया-

'पृथ्वी का एक वर्ष बीत चुका है।'

'मैं इस बड़े तारे के पीछे चलते-चलते थक गया हूँ। धरती पर वापस जाना चाहता हूँ। किन्नो के पास, बीनू के पास।'

'चलो, जैसी तुम्हारी इच्छा। फिर भी, वापस तो आना ही होगा। यही गति और नियति का नियम है।'

अरुन्धती से बिछुड़ते हुए उसे थोड़ा दुःख हो रहा था। वह चला जा रहा था धरती की ओर, अपनी किन्नो की ओर, अपने बाबू और बीनू की ओर।

----------00----------

जिस समय हेमचन्द्र की आत्मा धरती पर पुनः पहुँची उसकी गति शिथिल हो चुकी थी। उसमें वह वेग न था। किन्नो खेत में गाय के लिए चरी काटने गई थी। वह किन्नो के एक हाथ में पकड़ी चरी के एक पत्ते पर जमी ओस के भीतर बैठ गया। अब वह उसे साफ-साफ देख सकता था। किन्नो पहले से बहुत दुबली हो गई थी। गालों की हड्डियाँ उभर आईं थीं। सूनी माँग और बिन्दीविहीन ललाट मानों आज तक हाहाकार कर रहे थे। आस-पास के खेतों में दूर तक हरियाली फैली थी, परन्तु किन्नो के चेहरे पर सूखा स्थायी भाव से घर बना चुका था। आँखें मानों गड्ढे के भीतर से निगरानी कर रही हों। वह कटी हुई चरी को छोटे से गट्ठर की तरह हाथ में उठाए बगल में बैठी गाँव की ही अपनी सखी बन चुकी दयावती से बात कर रही थी।

दयावती पूछ रही थी-

'ससुर जी अब चल-फिर नहीं पाते न?'

'नहीं, थोड़ा-थोड़ा चल-फिर कर अपना काम कर लेते हैं। अब खेती-पाती के लायक तो नहीं ही रह गई शरीर।'

'हेम भइया का सदमा उनको तोड़ डाला।'

'हाँ, किसको नहीं तोड़ा।'

किन्नो ने चरी का छोटा बोझ आँखों के सामने कर लिया। शायद यूँ ही दिल बहलाने लगे। ओस की बूँद में समाई हेमचन्द्र की आत्मा किन्नो की आँखों के बहुत पास थी अब। किन्नो की आँखों से ओस की तरह ही दो बूँदें ढुलकी थीं।

'कुछ हुआ नहीं न अब तक?'

'पेन्शन का कागज आ गया। और क्या?'

वह निराश लग रही थी।

'चलो जीने खाने का सहारा देकर ही गये हेम।'

'हूँ।' अब वह चरी के बोझ को धीरे-धीरे हवा में हिला-डुला रही थी। उसका चेहरा उदासी में डूब गया।

दयावती पूछ रही थी-

'जैसे कि सरकार तुम्हारा अनशन तुड़वाने के लिए इतना एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रही थी उसका क्या हुआ?' दयावती ने कुरेदा तो हेमचन्द्र की आत्मा भी उत्सुक हो उठी।

'बीत गई सो बात गई बहन। उस समय वादा कर लिया। अखबार में छप गया। उसके बाद अखबार वाले आते हैं कि टी.वी. वाले? क्या करेंगे पता करके? हम जीएँ चाहे मरें।'

'पर अब तो नई सरकार आ गई है। इससे तो बहुत उम्मीद लगाए हैं लोग। हो सकता है ये सरकार कुछ कर पाए?'

'हाँ, उम्मीद तो हम भी किये हैं। मेरे पति का सिर तो अब नहीं ला सकते पर उन गद्दारों को गले लगाने की बात तो नहीं करेंगे।' उसकी उदासी कुछ और गहरा उठी। उसने चरी का गट्ठर लिए लिये आस-पास नजर दौड़ाई। बीनू बगल में ही हाथों से चरी नोचकर माँ की मदद कर रहा था। उसकी शर्ट एक तरफ से फट गई थी। माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आईं थीं। कुछ ही दिनों में कितना बड़ा लगने लगा था बीनू।

'बीनू, ये चरी का गट्ठर ले चल। घर पर बाबा इन्तजार कर रहे होंगे। चाय पीकर अब तक ऐसे ही पड़े होंगे। कुछ खाया नहीं होगा।' किन्नो मानों स्वयं से कह रही थी।

'बीनू, पढ़ने जाते हो तुम ?' दयावती पुचकारते हुए पूछ रही थी।

'हाँ'।

'हाँ बेटा, खूब मन लगाकर पढ़लो। नौकरी करो ताकि तुम्हारी मम्मी का दुःख कटे।'

'नौकरी नहीं करूँगा। मैं फौज में जाऊँगा पापा की तरह, लेकिन घुसकर उन सबके सिर काटूँगा जिन्होंने मेरे पापा का काटा था।' वह हाँफ रहा था। ओठों के ऊपर पसीने की बूँदें उभर आईं थीं जिन्हें वह जीभ बढ़ाकर चाट रहा था।

'अच्छा, चुप रह। हमेशा एक ही बात। चल यह गट्ठर कन्धे पर लाद और घर चल। मैं थोड़ा-सा और काटकर आती हूँ। रसोई में दूध ढ़ँका है, पी लेना।'

'अच्छा।' बीनू चरी का छोटा वाला गट्ठर कन्धे पर लादे मेड़ पर चल पड़ा। हेमचन्द्र की आत्मा को सन्तोष हुआ। इसलिए कि उसे बीनू का कन्धा मिल गया था। इसलिए भी कि जीवन पटरी पर लौट रहा था। इसलिए भी कि उम्मीद की नदी फिर उमड़ने लगी थी। कुछ देर पहले का बेटे का नन्हा आक्रोश हेमचन्द्र की आत्मा के लिए किया गया शान्तिपाठ था। आत्मा ने धीरे से बेटे के गाल को स्पर्श किया। चरी के पत्ते पर अटकी स्नेह से लबालब ओस की बूँद बीनू के गाल पर मोती की तरह चिपक गई।

एक बार फिर हेमचन्द्र की आत्मा ने ऊर्ध्वमुखी उड़ान भरी थी। अबकी बार उसकी गति में वह आकुलता न थी। गति सन्तुलित थी। सूर्य उसके मार्ग में अपनी किरणें बिछाए था। चन्द्रमा की घण्टी प्रतीक्षा में थी। तारे मोक्षद्वार पर बन्दनवार की तरह टँग गये थे। मुक्तात्माएँ अगवानी के गीत गुनगुना रही थी। किसी शहीद की अभ्यर्थना का दिन था यह। धरती सैल्यूट कर रही थी अपने लाल को।

'मधुवन'
एस.ए.14/598, सारंगनाथ कॉलोनी,
सारनाथ, वाराणसी-221007
मोबा. 0-9792411451

ललित निबंध

दीया जले आगम का

नीरजा माधव

शरद पूर्णिमा पर महालक्ष्मी की आगवानी और फिर दूसरे दिन से प्रारंभ हो जाता है दीपमास, यानी कार्तिक मास। साँझ को तुलसी चौरे पर एक दीप जलाकर रखने का क्रम। अंदर-बाहर के अंधकार से जूझने का सिलसिला। माँ को भी तुलसी चौरे पर दीप जलाते देखा था,दादी और अपनी नानी को भी। दादी और नानी की माँ और उनकी भी माँओं ने यही किया होगा। कहीं न कहीं अजस्र स्रोत तो रहा होगा जिससे फूटकर प्रवाहित हुई यह धारा आज तक अनवरत् बह रही है। चुपचाप रखती आयी होंगी तुलसी चौरे पर एक दीप और आँचल को जुड़ी हथेलियों के बीच दबा, सिर नवा माँगा होगा अखण्ड सौभाग्य हरिप्रिया से, अपने प्रिय की प्रिय बनी रहने का आशीर्वाद, संतानों की कुशलक्षेम और परिजनों, स्वजनों का कल्याण। मैं भी करती हूँ। एक अजस्र प्रवाहमय संस्कृति जो संस्कार बन लहू में संचरित हो रही है। साँझ के हल्के अंधियारे में तुलसी चौरे पर दीप रखकर कभी-कभी मुग्ध-सी एकटक देखती रह जाती हूँ। एक अव्यक्त-सी अनुभूति आनंद की, एक जाना-पहचाना पर चिर नवीन पसरा सौंदर्य। परिसर में लगे विद्युत-बल्बों की कृत्रिम चकाचौंध वाली रोशनी आँखों को चुभने लगती है। सबको कुछ देर के लिए बुझा चुपचाप निहारती हूँ उस नन्हें दीप को जो अंधेरे को चुनौती देता हँसता रहता है झिल-मिल, झिल-मिल। मैं उसकी इस हँसी पर न्यौछावर होती रहती हूँ। आँखों में भर लेना चाहती हूँ उसके दिप्- दिप् करते सौन्दर्य को, हृदय में उतार लेना चाहती हूँ उसकी निश्छल मुस्कान। एक उल्लास से भर उठता है मन।

धनतेरस को कुबेर और लक्ष्मी की पूजा और दीपदान, नरक चतुर्दशी के दिन यम के नाम चौदह दीये एक साथ दक्षिण दिशा में जगमगाते हुए हर वर्ष एक प्रश्न मन में उठाते हैं दुनिया की कोई संस्कृति जिसमें सूर्यपुत्र के सत्य की अभ्यर्थना की जाती हो? और वह भी इस तरह कि वह जीवन बन जाये, एक अजस्र प्रवाह बन जाये? अमावस की काली रात में असंख्य दीये जलाकर अंधकार के विरोध में एक साथ बिगुल फूँकना मात्र एक क्षणिक उल्लास या लौकिक जगत् का पर्व नहीं, बल्कि एक अंतहीन प्रवाह है, एक धारा है जिसका आदि भी हम नहीं, अंत भी हम नहीं। एक कोई विराट् सत्य जिसकी लौ से प्रज्वलित हम सब असंख्य दीप। याद करते हैं दीपोत्सव के बहाने उस परम ज्योति को। दीपों की झिलमिलाहट में देखने का प्रयास करते हैं उस दिव्य, नित्य आलोक को। क्षणभंगुरता से अनंत की ओर की उन्मुखता।

कार्तिक के प्रथम दिवस से लेकर सूर्यषष्ठी कार्तिक एकादशी और पूर्णिमा तक स्त्रियाँ बाती पूरने और दीये में घी भरकर नदी की जलधारा, तालाब या सरोवर में दहलाने का कार्य बिना किसी दबाव के करती हैं। घरों में भी दीपदान वे ही करती हैं। यानि कार्तिकभर विभिन्न देवों, देवियों के नाम

दीये प्रज्वलित कर पूर्णिमा के दिन देव-दीपावली के रूप में उसको पूर्णता प्रदान करती है। एक आलोक जो व्यष्टि से समष्टि की ओर यात्रा करता है अविराम और इस यात्रा के आदि में होता है कोई कोमल चित्त प्रकाश के लिए उत्कंठित और आकुल। पं. विद्यानिवास मिश्र जी कहते थे- 'रचना तो हमेशा स्त्री-चित्त से होती है। पुरुष-चित्त रचना नहीं कर सकता। शुष्क दर्शन-ज्ञान भले दे दे।'

मिट्टी सानकर दीये का आकार देने से लेकर बाती पूरने, उसमें घी भरकर प्रज्वलित करने और उसे तुलसी चौरे, देवस्थान पर रखने या नदी, सरोवर में दहलाने तक का कार्य एक भावपूर्ण रचना है जो स्त्री द्वारा संपादित होती है। जिन दुर्लभ स्त्रियों के हाथों ने कभी कोई बाती नहीं पूरी, दीप प्रज्वलित नहीं किया, बाती उकसाने में लौ से छू गयी उँगलियों का ताप नहीं महसूस किया, मेरी दृष्टि में वे साक्षात् अमा-विग्रह हैं। भीतर के आलोक से वंचित नारी। उनसे किसी प्रकार की बातें करें, किस अंधकार को चुनौती देने के लिये उम्मीद करें। कृत्रिम प्रकाश के चाकचिक्य में रैम्प पर कैट-वाक करती अत्याधुनिकाओं के लिए दीये गढ़ने या बाती पूरने वाले हाथ परम्परा पोषक लगते हैं, उनका विकास अवरुद्ध हो गया है। अपनी देहयष्टि के प्रदर्शनों से विज्ञापन बनती ऐसी नारी की दृष्टि में अंधकार को चुनौती देने वाले दीप प्रज्वलित करते हाथ रूढ़िवादिता और पाखंड के नाम समर्पित हैं। उनका शोषण हो रहा है। उनके शोषण के विरुद्ध मुक्ति आंदोलन चलाया जा रहा है। साहित्य रचा जा रहा है।

हमारे यहाँ सौन्दर्य का अपना अलग मानक था। गजगामिनी स्त्रियों के सौन्दर्य-वर्णन से प्राचीन से लेकर छायावाद काल तक का हमारा साहित्य भरा पड़ा है, लेकिन सौन्दर्य-प्रतियोगिताओं में पश्चिम की देखादेखी भारतीय कामिनियाँ भी कैट-वाक कर रही हैं। कैट-वाक यानी बिल्ली चाल। अब आज का सौन्दर्य शब्द-कोश कैट-वाक का जो भी सारगर्भित रूप और अर्थ-निष्पत्ति करे, सामान्य जन के लिए तो कैट-वाक बिल्ली-चाल ही अर्थ रखेगा। खैर, उपमान बदलते रहते हैं, प्रतीक बदलते रहते हैं, बिंब और लक्षण भी बदलते रहते हैं। परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता। गज से कैट तक का सफर हमारी दृष्टि में ऊँचाई से नीचे की तरफ खिसकने का व्यापार हो सकता है तो किसी के लिए स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना। कोई हिन्दू देवी-देवता के वाहन थोड़े ही हैं कि एक बार बूढ़े बैल पर सवार हुए तो उस पर ही सवार रहेंगे युग दर युग, कल्प दर कल्प। चूहा या उल्लू वाहन बन गया तो फिर कोई परिवर्तन नहीं। भले ही नित नयी से नयी गाड़ियाँ लांच होती रहें। परिवर्तन तो मनुष्य के भाग्य में बदा होता है। शिशु से वृद्ध तक, गाँव से नगर तक देश से विदेश तक। पूरी धरती पर हो रहे परिवर्तनों का उपभोक्ता मानव। इसीलिए तो राम, कृष्ण, बुद्ध सहित अनेक देवी-देवताओं को अपनी लीला दिखाने और इन परिवर्तनों का सुख उठाने के लिए मानव रूप धारण कर पृथ्वी पर आना पड़ा। इसी क्रम में जुड़ने की लालसा ने कई स्वयंभू भगवानों को भी इस आधुनिक युग में मानव रूप दे दिया है। वे अपने नाम के आगे भगवान लगाते हैं, अपने प्रायोजित शिष्यों को से अपना जयकारा करवाते हैं और ईश्वर उपासना को ढकोसला बता अपनी पूजा करवाते हैं, कदमों में नेमतें और नेवैद्य चढ़वाते हैं।

ब्रह्माण्ड में चेतन से स्थूल प्रकृति में अभिव्यक्ति एवं पुनः आत्मसाक्षात्कार हो जाने पर चेतन का स्वरूप में तटस्थ होना और प्रकृति की साम्यावस्था का क्रम चलता रहता है। स्थूल रूप में इसे भी हम परिवर्तन की संज्ञा दे लेते हैं। दूसरा स्थूल परिवर्तन वह भी है जिसमें हम किसी प्राचीन मूल्य, ज्ञान या संस्कृति को मिटाकर पूर्णतः नयी स्थापना करने का मूर्खतापूर्ण संकल्प लेते हैं, यथा परम्पराएँ विकास में बेड़ियाँ हैं, मातृत्व, दया, प्रेम, समर्पण और त्याग जैसे स्त्री-गुण स्त्रियों के लिए बंधन हैं, आदि-आदि। तमाम तरह के आंदोलन चलाए जा रहे हैं इन

बंधनों से मुक्ति के लिए। साड़ी के लम्बे बंधन में बँधी नारी मुक्ति के लिए छटपटा उठी। रैम्प से होते विद्यालयों, मुहल्लों तक फैशन डिजाइनर्स का बोलबोला हो गया। कम से कमतर वस्त्रों में अपनी लज्जा ढ़ँकने का प्रयास फैशन कहलाने लगा। पुरुष सबसे बड़ी बाधा के रूप में नारों और मुक्ति व्याख्यानों में वर्णित किया जाने लगा। नारी अब जाग गयी। पुरुषों का हथकंडा पहचान गयी है। उसे भार्या और गृहलक्ष्मी की उपाधि देकर घर में बाँधने वाले षड़यंत्र का पर्दाफाश कर लिया है। समानता के अधिकार के लिए वह हाथों में नारे लिखी तख्तियाँ लिये मुट्ठियाँ भींचे खड़ी हो गयी है। जो शोषित हैं, दमित हैं, घरों में कैद हैं उन्हें भी निकाल लाना है, मुक्त करा देना है पुरुषों के चंगुल से। परम्पराओं की बेड़ी तोड़ देनी है।

कैटवाक करती ऐसी स्त्रियों को देखकर सहमी हुई है परम्परावादी नारियाँ। तमाशा देख रहे पुरुष की मुस्कराहटों का निहितार्थ समझ आँखें झुक रही हैं। परम्पराओं को सिर पर उठाये चलने वाली ये नारियाँ नहीं समझ पा रही हैं कि बंधन से मुक्ति का इन नारा देने वालियों में अपनी दैहिक सौन्दर्य के आकर्षण के पीछे आखिर किसे बाँध रखने की लालसा है? यदि पुरुष को अपने रूपजाल में बाँध रखने की लालसा नहीं मिटी, उसे उन्मत्त बना देने के लिए विभिन्न सौन्दर्य उपकरणों की खोज समाप्त नहीं हुई तो फिर लज्जा, समर्पण, प्रेम, त्याग या मातृत्व जैसे गरिमापूर्ण गुणों की ही उपेक्षा क्यों की जाय? ये गुण तो प्रकृति-प्रदत्त हैं और नारीत्व की गरिमा को बढ़ाते ही हैं।

उत्तरप्रदेश की राजधानी से निकलने वाली एक कथा पत्रिका का अप्रैल 1999 का पुराना अंक एक दिन सामने पड़ गया। आवरण चित्र देखकर क्षोभ भी हुआ और किंचित् विस्मय भी। चित्रकार की सोच पर सोचने के लिए विवश भी। आवरण पृष्ठ पर एक स्त्री-आकृति, माथे पर लगी लाल रंग की बिंदी, ओठों की लाली और वक्ष पर नागिन की तरह बल खायी-सी एक लम्बी मोटी चोटी जो क्रमशः नीचे की ओर पतली होती चली गयी थी और पृष्ठ के कोने तक पहुँचकर उसी चोटी की एक लट से चित्रकार का नाम कलात्मक ढ़ंग से लिखा हुआ, लेकिन इतने सुंदर चेहरे से दोनों आँखें गायब थीं। आँखों का स्थान बिल्कुल सपाट और शून्य। बहुत देर तक उसका कोई सकारात्मक अर्थ तलाशने का प्रयास करती रही, लेकिन कोई सार्थक हल न मिलकर एक अनर्थक रहस्योद्घाटन ही हो पा रहा था- आँखें नहीं, यानी दृष्टि नहीं, यानी देखने की शक्ति नहीं, दृष्टिकोण नहीं। नेत्रहीन यानी किसी के सहारे चलने की आदी अथवा जानबूझकर गांधारी बनी नारी। गांधारी ने पति-व्रत धर्म-निर्वाह के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी। मात्र धर्म-निर्वाह की शुष्कता न थी वहाँ। पति के लिए अगाध प्रेम और त्याग का भाव भी सन्निहित था उसमें। इसीलिए आजीवन निर्बाध निर्वाह हो सका।

प्रेम का पाथेय दुर्गम रास्तों पर चलने की ऊर्जा प्रदान करता है। नारी उसी का आश्रय ले न जाने कितने दुर्धर्ष योद्धाओं और राष्ट्र-विजेताओं को भी सदियों से अपने सामने झुकाती चली आ रही है। युद्ध-भूमि में अपनी तलवारों से न जाने कितने शीशों को काटकर धरती पर गिरा देने वाले हिंस्र मानव को अपने सामने नतमस्तक कर लिया नारी ने अपने इसी नैसर्गिक अस्त्र प्रेम से। वास्तव में घर और समाज पुरुष द्वारा निर्मित नहीं हैं। इनके निर्माण में नारी के कोमल चित्त और उसमें रहने वाले नैसर्गिक गुणों दया, प्रेम, ममता, करुणा, समर्पण की ही मुख्य भूमिका रही है। पराक्रम और शौर्य प्रदार्शन से थका-हरा पुरुष विश्रांति के लिए एक प्रेमभरी छाँह तलाशता नारी के सम्मुख आता है। वह नारी किसी भी रूप में होती है- माँ, बहन, प्रेयसी या भार्या। उसी ने विश्रांति और धूप, वर्षा, ठंड तथा जंगली पशुओं आदि से सुरक्षा के लिए पुरुष से घर बनाने का निवेदन किया। स्त्री का यह प्रस्ताव उसे भी प्रीतिकर लगा। जंगल से घासफूस, लकड़ियाँ लाकर पुरुष ने अपनी छाँव दी नारी को और स्वयं भी उसमें सुस्ताने की चाहत ने घर को जन्म दिया। अकेलेपन से ऊबकर समूहों मे रहने की योजना भी नारी के नैसर्गिक गुणों का ही परिणाम है, अन्यथा बलपूर्वक एक-दूसरे पर वर्चस्व स्थापित करने की पुरुष मानसिकता में आज तक कोई परिवर्तन मुश्किल से दिखायी पड़ता है।

नारी की इस सृजनात्मक क्षमता के सम्मुख बार-बार नतमस्तक होते पुरुष के मन ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया। अपनी शारीरिक शक्ति से दूसरों पर विजय प्राप्त करके भी निहत्थी नारी के सम्मुख क्यों आकर वह हार जाता है, जैसे कारणों पर उसने विचार करना प्रारंभ किया। सभ्यता के लाखों वर्ष के इस विकास क्रम में नारी के पास वह कौन-सा अमोघ अस्त्र था जिसे प्राचीनकाल से लेकर आज तक वह अपनाती आयी और समर्पण के बाद भी जीत उसी की हुई। उसी अस्त्र को यदि वह नारी से फेंकवा सके तो फिर धरती पर उसके समान कोई न रहे जिसके सामने उसे घुटने टेकने पड़े। उसने षड़यंत्र रचा, प्रेम और समर्पण को नारी की दुर्बलता बताया, मातृत्व और विवाह जैसे बंधन को विकास में बाधक बताकर इन बेड़ियों को तोड़ डालने का आह्वान किया। सदियों पुराने प्रेम, मातृत्व, करुणा और समर्पण जैसे अपने दिव्य अस्त्रों को छोड़ने के लिए सहमत हो गयी नारी। किसी की कुटिल चाल के झाँसे में आ गयी सीधी-सादी नारी। शकुनि के पास वह स्वयं दाँव लग गयी नारी।

अपनी बौद्धिक क्षमता की धार से अपने उन नैसर्गिक गुणों को और अधिक कारगर बनाने के स्थान पर उसने उन्हें उतार फेंका और बराबरी के भोंडे हठ के फेर में स्वयं को दैहिक आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बनाने में जुट गयी नारी। अपनी कामयाबी पर मंद-मंद मुस्कराता रहा आदमी और सिर धुनती रहीं तथाकथित पिछड़ी नारियाँ अपनी इस अगली हराई चलने वाली बहनों पर, क्योंकि वे अस्त्र अब भी उनके पास हैं, सृजन उनके हाथ हैं। दीये की आँधी, बरसात में बुझने से रोकने के लिए आँचल उनके पास है, एक नन्हें-से आलोक को नदी की धारा में दहलाते हुए जीवन की धारा से जोड़ने का उल्लास उनके पास है। अँधकार से जूझने का सामान उनके हाथ है, बड़े से बड़े हिंस्र को अपने सम्मुख नतमस्तक कर लेने वाला अस्त्र प्रेम अब भी उनके पास है। दीये की लौ में अस्तित्व को पहचानने का आह्वान आज भी कर रही है वह। अँधकार में खो जाने से पूर्व दीप बन जाने का आह्वान। आलोकमयी संस्कृति में धुलमिलकर अजस्र प्रवाह बन जाने का निमंत्रण। घने अँधेरे के लिए जब भी चुनौती बना है तो नन्हा दीप ही। उस दीप के अस्तित्व के आगे अँधेरे को मिटना ही पड़ा है। स

नीरजा माधव की दो कविताएँ

बस इतना सा

नहीं अमरता माँगती मैं
ना सुख का अक्षय भण्डार,
मेरे इस लघु जीवन को बस
मिल जाए इतना वरदान!
वे अनन्त अनुरागमय हों
मैं अखण्ड सुहागिनी।

दर्प के मद से भरी मैं
व्योम से जब चू पड़ूँ,
कर क्षमा सस्नेह निज में
लय करें मेरा निजत्व,
वे अनगिनत सिकताकण से,
मैं जल-कण अभिमानिनी।

तिमिरमय संसार में इस
यह जीवन लघु दीप-सा
जलते-जलते हो मद्धिम,
फूँक से उनकी बुझूँ मैं,
वे बने मधुरिम पवन, मैं
धूम-सी अनुगामिनी।

क्षणभंगुरता में मिल जाए
चिर जीवन का सुख असीम,
उनका अन्तस् मेरा घर,
हँसकर छिप जाऊँ उनमें
वे जलद गम्भीर, श्यामल,
मैं तपक द्युति दामिनी।

वसन्त

ओ धरती के प्यारे पाहुन,
देख तुझे अम्बर डोला है
अरुण उषा ने आहट सुनकर
कुमकुम घट का मुँह खोला है।

मंजरियों से बूँदा-बाँदी
हर बिरवा कदम्ब होता है,
नैनों की यमुना के तीरे
सुर में वंशीधर होता है।
कण-कण बोल उठे संग तेरे
कैसे कहूँ तू अनबोला है।

पीर भरी सुधियों का रसिया
जाने क्यों बरबस होता है,
तीर किसी के, हाथ तुम्हारे,
सबका मन तरकश होता है।
केसरिया तन हुआ गगन-सा
कैसा तूने रंग घोला है।

राधा-राधा तन वासन्ती
कान्हा-कान्हा मन होता है,
ढाई आखर की लीला में
हर आँगन मधुवन होता है।
पल में पुलक, पलक में लुकछिप
तू छलिया भी, तू भोला है।

कथाकार नीरजा माधव

बी.एम. मिश्र

अब तक डॉ.नीरजा माधव के आठ कहानी संग्रह, दस उपन्यास, चार कविता संग्रह, चार ललित निबंध संग्रह, तीन वैचारिक निबंध संग्रह और दस अन्य विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'भारत राष्ट्र और उसकी शिक्षा पद्धति', 'रेडियो का कलापक्ष', 'भारत रत्न लालबहादुर शास्त्री', 'उचटती नीदों के बीच स्त्री', 'तत्वबोध विवेचनी', 'शंकराचार्यः पीठ और परम्परा', 'हिन्दू धर्म स्वरूप' आदि अनेक इसी विविध श्रेणी की कृतियाँ हैं। कहना न होगा कि डॉ.नीरजा माधव के लेखन का कैनवास बहुत बड़ा है और उसमें विविध रंग हैं, परन्तु सबसे उभरा हुआ रंग कथा का है, जो उनकी व्यापक सोच की कहानी कहता है। काशी की इस कथा क्वीन की व्यापकता और लोकप्रियता राष्ट्रीय और अब अन्तर्राष्ट्रीय हो चली है। काशी ने अनेक साहित्य रत्नों को देश को दिया। उन सबमें नीरजा जी एक देदीप्यमान रत्न हैं। डॉ.नीरजा माधव के कई उपन्यास कहानियाँ एवं कविताएँ विभिन्न राज्यों के बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ायी जाती हैं। इनकी कृतियों का कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। कई राष्ट्रीय और प्रान्तीय पुरस्कारों से सम्मानित डॉ.नीरजा माधव निरन्तर साहित्य सेवा में लगी हुई है। एक बार प्रख्यात समीक्षक डॉ.शुकदेव सिंह ने कहा था कि स्त्री विहीन काशी में अपने लेखन के माध्यम से नीरजा जी उस शून्यता को भर रही हैं। प्रख्यात आलोचक डॉ.नामवरसिंह ने बहुत पहले उस शून्यता की ओर इशारा करते हुए कहा था कि काशी में कोई महादेवी वर्मा नहीं हुई। आज काशी के साहित्य प्रेमी गर्व से कहते हैं कि हमारे पास नीरजा माधव जैसी सशक्त लेखिका हैं, काशी की कथा क्वीन हैं। हम सबको उनकी लेखकीय ऊर्जा पर गर्व है। वाराणसी के सारनाथ में रहते हुए वे आज भी सृजन में रत हैं।

बालपुर, लखनऊ रोड, (उ.प्र.) गोण्डा

साक्षात्कार

'दूसरे वर्गों में भी सामन्ती प्रवृत्ति के लोगों का वर्चस्व बढ़ रहा है... नीरजा माधव

(कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो.षण्मुखन से संवाद)

आप कथा साहित्य की एक सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। आज सर्जनकारों की सर्जनात्मकता के विकास के आधार पर समकालीन हिन्दी व मलयालम कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन को ध्यान में रखते हुए मैं पूछता हूँ। यह सर्वविदितबात है कि किसी भी रचना के पीछे अनुभव और अनुभूति अंतर्निहित हैं। हर एक सर्जनकार इन पड़ावों से गुजर कर ही रचना का आविष्कार करता है। फिर भी सभी, उत्तुंग रचनाकार बनते नहीं हैं। शायद इसकी वजह सर्जनात्मकता का ऊँच-नीच अन्तर कहना किस हद तक समीचीन हैं?

सर्जनात्मकता कभी ऊँच-नीच नहीं होती। वह तो सर्वदा अभिनन्दनीय है। सृजन के पीछे के मूलभूत कारक परिस्थितियों, आवेगों, संवेगों का घनत्व कम या अधिक होने से रचना की सम्प्रेषणीयता और ग्राह्यता पर प्रभाव पड़ता है। किसी भी अनुभूति के पीछे संवेदना की सघनता जितनी ही गहन होगी, रचना उतनी ही सम्प्रेष्य और स्वीकार्य होगी। यही स्वीकार्यता और सम्प्रेषणीयता किसी रचनाकार को ऊँचे या नीचे स्थापित करता है। उदाहरण के लिए पीड़ा की अनुभूति सभी में समान है, लेकिन एक दार्शनिक और सामान्यजन की पीड़ा के अनुभव की अभिव्यक्ति अलग-अलग स्तरों पर होगी।

क्या सर्जनात्मकता और प्रतिभा अलग-अलग फिनोमिना हैं? क्या हम इसे अलग कर सकते हैं? सचमुच सर्जनात्मकता के वैरीऐशन के आधारभूत तथ्य क्या हैं?

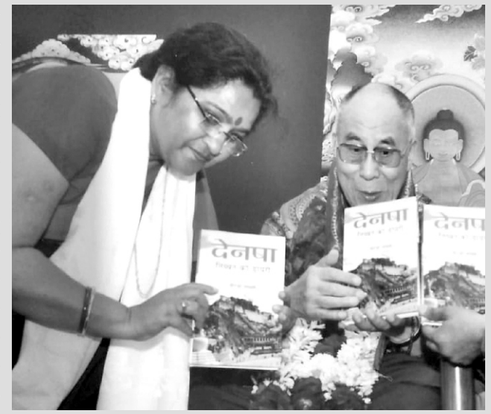

मेरी दृष्टि में सृजनशीलता और प्रतिभा दो अलग-अलग तत्त्व हैं। प्रतिभा बुद्धि और कौशल से अर्जित भी की जा सकती है, लेकिन सर्जनात्मक के लिए बुद्धि और कौशल उपादान मात्र हैं। सृजनशीलता को प्रकृति प्रदत्त दैवीय प्रतिभा मान सकते हैं। यही कारण है कि बादलों के पीछे सामान्य प्राकृतिक कारण एक सामान्य मनुष्य समझता है, लेकिन वही बादल सृजनात्मक आवेग के क्षणों में कालिदास, पन्त, निराला आदि कवियों के लिए विशिष्ट अर्थ और महत्त्व के हो जाते हैं। सृजनात्मकता की इस दैवीय प्रतिभा का आवेग जब जितना सघन होता है, रचनात्मकता के स्तर पर उसक प्रभाव भी परिलक्षित होता है। सृजनात्मक शून्य काल में जब इस प्रकार के आवेग संवेग शिथिल पड़ जाते हैं, उस काल में किये गये सायास लेखन में पाठक के हृदय को बाँध रखने की क्षमता का सर्वथा अभाव देखा जाता है। इसी सायास लेखन और प्रतिबद्ध लेखन के कारण आज साहित्य में पाठकीयता का संकट गहराता जा रहा है। संवेदनात्मक सघनता और करुणामयी अनुभूति जो स्व और पर के भेद से परे होती है, के स्थान पर वैचारिक बोझिलता ने साहित्य के रस को विरस कर दिया है। सायास लेखन करने वाले लेखकों की भीड़ बढ़ी है। यश लोलुपता और प्रचारप्रियता ने साहित्य के मूल तत्त्वों की अनदेखी की है, परन्तु समय सबसे बड़ा समीक्षक और पारखी है। वह इन वैरियेशन्स के बीच से सशक्त रचना को ढूँढ़ही लेता है। इसके सबसे बड़े उदाहरण गोस्वामी तुलसीदास जी हैं। अपने समय में उन्होंने कितना विरोध, कितना नकार झेला पर एक क्षेत्र विशेष की भाषा अवधी में लिखे गये उनके रामचरितमानस को विश्वकाव्य की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। ऐसा अनेक बड़े लेखकों के साथ हुआ। अनुभूति की तरलता, सघनता और एक प्रखर दृष्टि उस दैवीय सृजन प्रतिभा के उपादान बनते हैं तब कहीं कालजयी सर्जना आकार लेती हैं। इसी प्रतिभा में कुछ कमी या आधिक्य के कारण सर्जनात्मकता के अलग-अलग स्तर हमें दिखाई देते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि प्रतिभा कोई जड़ वस्तु है जिसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं। इस दैवीय प्रतिभा को चिन्तन, मनन और शास्त्र अध्ययन से परिमार्जित और विकसित किया जा सकता है। अब यह पृथक् बात है कि एक सृजनकर्त्ता का चित्त किस प्रकार के चिन्तन अथवा अध्ययन की ओर मुड़ जाता है-अधोमुखी या ऊर्ध्वमुखी।

क्या सर्जनात्मकता ऐसी 'फिनोमिना' है जिसका पल्लवन यानी विकास होता है? दरअसल उसकी बढ़ोतरी के निर्णायक तत्त्व क्या हैं? निरन्तर अध्ययन, अनुभव एवं परिवेश सर्जनात्मकता को किसी तरह किस हद तक प्रभावित करते हैं?

निःसन्देह सर्जनात्कता का विकास होता है। सृजनशीलता एक बीज है जो निरन्तर अध्ययन, अनुभव और परिवेश से पोषक तत्त्व ले अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होता है। संवेदना और मनोभावों के स्तर पर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर अग्रसर रचनात्मकता के विकास में भाषा और शिल्प में निखार तथा सुग्राह्यता कुछ स्थूल निर्णायक तत्त्व है जिससे ज्ञात होता है कि सर्जनात्मकता विकासोन्मुख है।

यदि सर्जनात्मकता का विकास होता है तो जरूर वह मंद पड़ती भी होगी। इसकी क्या वजह हो सकती है?

सृजनात्मकता के मंद पड़ने के कई कारण हो सकते हैं। कुछ बाह्य कारण होते हैं, जैसे परिवेश की एकरसता, आत्म-मुग्धता, एकनिष्ठता तथा जीवन के विभिन्न अनुभवों से विलगाव। नदी की धारा में उतरे बिना किनारे बैठकर उसकी धारा की शीतलता या उष्णता को नहीं अनुभव किया जा सकता। बन्द कमरे में बैठकर

चित्रों में नीरजा जी

उन्मुक्त बादलों का चित्रण सत्यांश भले हो पर स्वाभाविक नहीं होगा। रचनात्मकता के मंद पड़ने के कुछ आन्तरिक कारण भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक बदलाव या संवेगात्मक गति का थम जाना। परिस्थितिजन्य विरक्ति अथवा चुक जाने का भाव।

सदाबाहर सर्जनात्मकता किसकी माँग करती है? क्या जमाने के साथ चलना काफी है? मतलब सामाजिक परिवर्तन के साथ ख़ुद को परिवर्तित करते हुए समकालीन घटनाओं के प्रति क्रियान्वित होना जरूरी है?

जमाने के साथ तो चाहते और न चाहतेहुए भी चलना प्रत्येक व्यक्ति की विवशता है। लेखक भी उससे अछूता नहीं होता। हाँ अपने जमाने के अनुभव समय-समय पर उसकी रचनात्मकता को उद्वेलित अवश्य करते रहते हैं, लेकिन यह भी आवश्यक नहीं कि समकालीन घटनाएँ उसकी रचनात्मकता को उद्वेलित करें ही। कई बार बहुत बड़ी-बड़ी घटनाएँ रचना का विषय नहीं बन पाती। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि समकालीन घटनाओं के प्रति रचनाकार को प्रतिक्रियान्वित होना आवश्यक है। सदाबाहर सर्जनात्मकता एक प्रकृति प्रदत्त बीज है जिसमें परिवेश, घटनाएँ और अनुभव खाद, पानी का कार्य करते हैं। बीज न होने पर ये सारी उर्वरा, शक्तियाँ, रचनात्मकता के लिए निरर्थक होती हैं। बीज होने पर ही अंकुरण और फिर सदाबहार वृक्ष के रूप में पुष्पित, पल्लवित होना संभव है।

आपकी सर्जनात्मकता की खास विशिष्टता क्या है ?

लिखते समय मेरी कोशिश रहती है कि-

1. अछूते विषयों, जिन पर आज तक न लिखा गया हो अथवा उस कोण से उसे न देखा गया हो, को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाने का प्रयास।
2. स्त्री विमर्श को प्रचलित आयातित दृष्टिकोण से न देख, परख कर बल्कि अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक बुनावट को देखते हुए उसकी एक नई किन्तु शाश्वत धारा प्रवाहित करना।
3. कथ्य और शिल्प को वैचारिक बोझिलता या उलझाव से बचाते हुए एक स्पष्ट स्वरूप प्रदान करना ताकि वह पाठकों से सीधे सम्बोधित हो।
4. प्रचलित दलित विमर्श को एक विशेष चश्मे से न देखकर बल्कि आज की परिस्थितियों में परिवर्तित शोषक और शोषितों की तस्वीर को साफगोई के साथ पाठकों के सम्मुख रखना। आज दलितों में ब्राह्मण और ब्राह्मणों में दलित पैदा हो गये हैं। राजनीतिक परिवर्तन के साथ शोषण के तरीके बदल गये हैं। दूसरे वर्गों में भी सामन्ती प्रवृत्ति के लोगों का वर्चस्व बढ़रहा है। ऐसे में परम्परागत शोषकों की तस्वीर को उकेरने वाली अन्य लेखकों की कहानियाँ ऊब ही पैदा करती है। इस ऊब से बचाने का पूरा प्रयास करती हैं मेरी कहानियाँ।

४० गोयनका वर्ष

चित्रों में कमल किशोर गोयनका

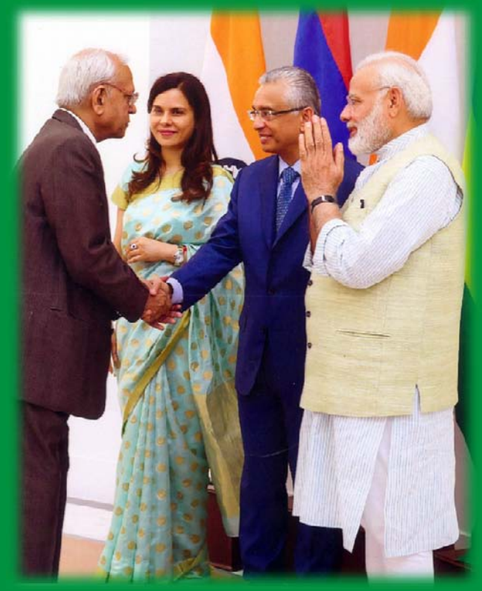

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી

ઈન્ડસ્ટ્રીઅલ એક્ષટેન્શન કોટેજ
(ગુજરાત સરકારની સંસ્થા)

iNDEXT-c

રજી. ઓફીસ :
બ્લોક નં. ૭/૧, ઉદ્યોગ ભવન, સેકટર - ૧૧, ગાંધીનગર.
ફોન. : ૦૭૯ - ૨૩૨૫૪૨૬૧ - ફેકસ:૦૭૯ - ૨૩૨૫૬૦૦૭
E-mail : exdire-indext-c@gujarat.gov.in
Website : www.craftofgujarat.gujarat.gov.in

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી - કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવામા માહિતી અને માર્ગદર્શન પૂરું પાડતી ગુજરાત સરકારશ્રીની સંસ્થા

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સીની રચના કોઈપણ નફાકારક પ્રવૃત્તિ સિવાયના નીચેના ઉદેશો માટે થયેલા છે.

૧. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક સાહસિકોને ઉદ્યોગોની પસંદગી, સ્થળ પસંદગી તથા જે તે ઉદ્યોગ માટે સરકારશ્રીના પ્રવર્તમાન પ્રોત્સાહનો / લાભો વિગેરેની જાણકારી આપવી.

૨. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રની વિવિધ સહાયની યોજનાઓને એકત્રિત કરી તે વિશે ભાવિ ઉદ્યોગ સાહસિકોને માહિતી આપવી અને આવી માહિતીનું સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવું.

૩. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રના વિવિધ ઉદ્યોગની માહિતી અને ઉદ્યોગ માટેની રૂપરેખા (પ્રોજેકટ પ્રોફાઈલ)એકત્રિત કરી તે વિશે ઉદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક વ્યકિતઓને તેની જાણકારી આપવી.

૪. કુટિર ઉદ્યોગ ખાતાની તથા કુટિર ઉદ્યોગ સંલગ્ન બોર્ડ / કોર્પોરેશનની વિવિધ યોજનાઓના ફોર્મ / અરજીપત્રક પૂરા પાડવા.

૫. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે જાહેરાત મારફત પ્રચાર ઝૂંબેશ ચલાવવી.

૬. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે સેમિનાર, વર્કશોપ તથા પ્રદર્શનનું આયોજન કરવું અને આવા આયોજન માટે સહાય પૂરી પાડવી.

૭. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસમાં ઉપયોગી હોય તેવી અન્ય પ્રવૃતિઓ હાથ ધરવી.

૮. કુટિર ઉદ્યોગ ક્ષેત્રની આર્થિક સમસ્યાઓના નિવારણ માટે બેન્કો તથા અન્ય નાણાંકીય સંસ્થાઓ જોડે ચર્ચા-વિચારણા હાથ ધરવી.

शेखर सेन

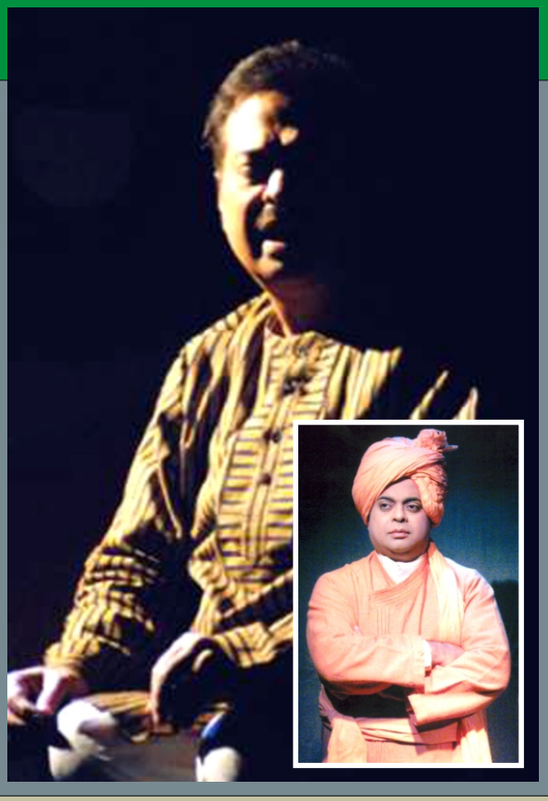

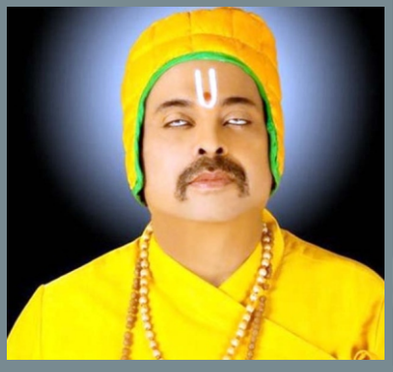

नाट्यराग-5

समावर्तन के अधबीच नाट्यकर्म केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ

विशेष सम्पादक : **भारतरत्न भार्गव**
सहयोग : **श्रीराम दवे**

शेखर सेन और शास्त्रीय नाट्य परम्परा

भारतरत्न भार्गव

इस बार शेखर सेन की नाट्य साधना पर विशेष आलेख

विलक्षण कला प्रतिभा श्री शेखर सेन

भारतरत्न भार्गव

यह कहना कि हम एक दुर्दान्त समय में जीने के लिए अभिशप्त हैं, एक तरह से अपनी दुर्बलताओं, कुटिलताओं और धूर्तताओं को छिपाकर आकर्षक, आहार्य में प्रस्तुत करने जैसा लगता है। वैभव-लोलुपता, सत्ता के प्रति चाटुकारिता एवं चारणी-वृत्ति ने हमारी संस्कृति, साहित्य और कलाओं के ज्योति-पुंज को तिमिराच्छादित कर दिया है। ऐसी स्थिति में प्रखर सत्य की गवेशणा करना भी दुश्कर हो गया है। राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों अथवा संचार संसाधनों के शीश पर सभी दुष्कर्मों का भार डालकर स्वयं को निर्लिप्त और सद्पुरुष उद्घोषित करना बहुत सरल है। मानव इतिहास में ऐसे दुर्भेद्य समय में शुद्ध विचारकों, साहित्यकारों और कलाकारों ने ही विघटित होते मूल्यों से समाज की रक्षा की है। किन्तु वही वर्ग आज आत्मकेंद्रीत और अर्थ, यश और भौतिक उपलब्धियों के लिये विशुद्ध चारण वर्ग बन गया है। इन वंश-विरूद्वावलियों के गायकों की भीड़ में निरक्षेप, आत्मचेता, साधना में लीन कोई आवाज अनसुनी रह जाये तो आश्चर्य नहीं। आश्चर्य इस बात का है कि किसी तेजोमय स्वरूप को भी इस आत्मघाती कुचेष्टा का अंग मान लिया जाये और उसकी पहचान कठिन नहीं, लगभग असंभव हो जाये।

मेरी पहली भेंट जब श्री शेखर सेन से हुई तो मैं उनकी विनम्रता, विचारशीलता और सहज स्वरूप को देखकर असमंजस में पड़ गया था। संगीत नाटक अकादेमी जैसी राष्ट्रीय कला संस्थान का अध्यक्ष और विनयशील! अपने ही अनुभवों पर विश्वास नहीं हुआ। इससे पूर्व उनके एकल अभिनय के संबंध में सुना अवश्य था, किन्तु हमारे देश के कला समीक्षकों और संचार माध्यमों की महति कृपा (?) से उनकी विलक्षण प्रतिभा से पूरी तरह परिचित नहीं था। सबसे बड़ी बात तो यह कि उन्हें जिस संस्था का अध्यक्ष मनोनीत किया था, उस राष्ट्रीय संस्था ने उन्हें अब तक सामान्य पुरस्कार के योग्य भी नहीं माना था। यह भी सत्य है कि केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी के वे पहले ऐसे अध्यक्ष हैं, जिन्हें रत्न सदस्यता तो दूर की बात है, पुरस्कार तक प्राप्त नहीं हुआ। इस संबंध में उनसे बात करने पर वे बोले, ''छोड़िए भी! विगत साढ़े तीन वर्षों के अध्यक्ष पद के अवसर ने मुझे पुरस्कारों की व्यर्थता का बोध करा दिया है। इस तरह की आपा-धापि और छीना-छपटी होती है कि उस प्रक्रिया से वितृष्णा सी हो गई है।''

उनके मुख से यही बात सुनकर हमारे कला जगत के संबंध में मेरे अपने अनुभवों पर मुहर लग गई। इसके बाद की हर भेंट में मुझे कुछ ओर-ओर नया मिलता रहा, जो मेरे अनुभव संसार के लिये अत्यंत शुभदायक था। उनकी प्रतिभा के संदर्भ में बहुत सी जानकारियाँ प्राप्त करने पर मुझे लगा कि उनका व्यक्तित्व इतना साधारण और सामान्य नहीं है, जैसा कि हमारे देश के अधिकांश रंगकर्मी घोषित करते रहे हैं। वस्तुतः उनका रंगकर्म इतना विशिष्ट और असाधारण है कि उस पर विस्तार से विवेचन करने की आवश्यकता है।

इस बार का नाट्यराग इसीलिये हम श्री शेखर सेन की विलक्षण कला प्रतिभा पर केंद्रीत कर रहे हैं। अस्तु।

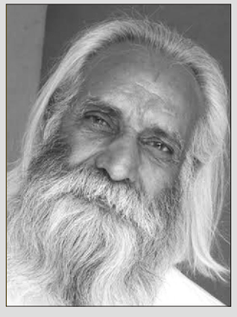

28 डी-पॉकेट-1 मयूर विहार,
फेज-1 दिल्ली- 11001
मो.नं.8107863913, 8209634802

शेखर सेन और शास्त्रीय नाट्य-परम्परा

भारतरत्न भार्गव

हमारे देश की शास्त्रीय नाट्य-परम्परा विविध ही नहीं, विचित्र भी रही है। स्वतंत्रता से पूर्व उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के आरम्भ में केवल दो परम विशिष्ट रंगकर्मी ऐसे रहे, जिन्होंने नाट्यशास्त्र का विधिवत अध्ययन किया और समकालीन संदर्भों में उसकी विलक्षणता को अपने रंगकर्म का आधार बनाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टेगौर इस संदर्भ में अपवाद स्वरूप समझे जा सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद शंभुमित्र, हबीब तनवीर, बी.वी.कारन्त, कावलम नारायण पणिक्कर से लेकर रतन थियाम तक के शीर्षस्थ रंगकर्मियों ने मूलतः अपनी जातीय परम्परा, सांस्कृतिक परिवेश, स्थापित लोक मान्यताएं तथा प्रभावित देशज नाट्य-शैलियों का परिष्कार किया। अपने नवाचार के द्वारा वे भरतमुनि के नाट्यशास्त्र अथवा शास्त्रीय नाट्य-परम्परा की ओर उन्मुख हुए और प्रकारान्तर से हमारी शास्त्रीय नाट्य-परम्परा को पुनर्प्रतिष्ठित किया। शेखर सेन के रंगकर्म को भी इसी परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करना समीचीन होगा।

नाट्यशास्त्र के बीसवें अध्याय में भरतमुनि नाट्य-प्रस्तुतियों अथवा रूपकों के दस भेदों का उल्लेख करते हैं। नाटक, प्रकरण, अंक, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम तथा ईहामृग। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते सभी रूपकों की विशेषताएँ अथवा विभेद एक-दूसरे में समाविष्ट हो गए हैं, किन्तु भाण ने समूचे विश्व में अपनी अलग पहचान बनाए रखने में सिद्धि प्राप्त की है।

भाण मूलतः एकपात्रीय नाट्य है, जिसमें एक ही पात्र अन्य पात्रों का अभिनय भी स्वयं करता है। अपने आंगिक और वाचिक के द्वारा वह विभिन्न चरित्रों के मनोभावों, और उसकी अन्तर्दशाओं की अभिव्यक्ति करता है। चरित्रों की अन्तर्वेदना अथवा आन्तरिक अनुभूतियों को विभिन्न भाव-भंगिमाओं और क्रियाओं के द्वारा अपनी विलक्षण प्रतिभा से अभिनेता अपने दर्शकों तक विभिन्न रसोंको सम्प्रेषित करता है। एक ही अभिनेता अपने पात्रों के प्रेम, हास्य, करूणा, भय, छल, कपट, धूर्तता आदि भावों का कलात्मक प्रदर्शन करता है। यह कलात्मक अभिव्यक्ति भाव, राग और ताल से समाविष्ट होती है और इस सिद्धि का आधार बनती है।

समकालीन रंग परिदृश्य में एक पात्रीय नाट्य ने अपना स्वरूप तेजी से बदला है। विशेष रूप से उत्तर-आधुनिकता के वैचारिक दंश ने हमारे देश में भी एकपात्रीय नाटकों का प्रचलन तो प्रचुर मात्रा में किया है, किन्तु वे पाश्चात्य प्रभाव और वैचारिक मान्यताओं के कारण भारतीय नाट्य परम्परा से दूर छिटक गए हैं। ऐसी स्थिति में शेखर सेन की एक पात्रीय नाट्य-प्रस्तुतियों का विवेचन-विश्लेषण अपरिहार्य है।

अपनी एकल प्रस्तुतियों में शेखर सेन संगीत को मेरूदंड की तरह स्थापित करते हैं; किन्तु उनका संगीत भारतीय संगीत के शीर्षस्थ कलाकारों से बहुत अलग है। यहाँ हम केवल गायन पद्धति की बात ही नहीं कर रहे, प्रत्युत उसके भाव पक्ष और शब्दों के अन्तर्निहित अर्थों की अनन्त छवियों तथा उनके विस्तार की बात कर रहे हैं। उनके संगीत का यह पक्ष उन्हें भावाभिव्यक्ति के जिस उत्कर्ष तक ले जाता है, वह उनके अभिनय का अविभाज्य अंग बन गया है। स्वर और ताल का स्वाभाविक संगम उनकी मुद्राओं, भंगिमाओं और गति संचालन में जिस सहजता का संदर्शन कराता है, वह उनके प्रदर्शन को परम विशिष्टता प्रदान करता है। अब इसका अगला चरण। वे अपनी एकल प्रस्तुतियों के केवल गायक और अभिनेता ही नहीं हैं। अपने संगीत की स्वर-रचना भी वे स्वयं करते हैं। अर्थात वे एक संगीत वाद्य है और उसके वादक भी स्वयं हैं। यहाँ मुझे शंभु मित्र की एक उक्ति याद आती है। एक अन्तरंग बातचीत के दौरान उन्होंने कहा था कि अभिनेता भावों को सम्प्रेषित करने वाला एक नैसर्गिक वाद्य है, किन्तु इससे भी बड़ी समस्या यह है कि अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों को पूरी तरह साध लेने के बाद इस वाद्य को बजाने वाला भी वह स्वयं ही होता है। वाद्य के सभी तत्वों का पूर्ण मिलान या एकात्मता, स्वर की शुद्धता, माधुर्य और झंकार के लिए नितान्त आवश्यक है। वहीं उसकी गूंज और अनुगूंज का वाहक बनता है। किन्तु यदि यह अत्यन्त परिनिष्ठित वाद्य किसी सामान्य से वादक के हाथ में हो तो उसका संभावित अलौकिक आनन्द श्रोताओं को उस आनन्द से सम्प्रेषित नहीं कर सकेगा, जो अपेक्षित है।

इस दृष्टि से शेखर सेन अपने शरीर की वाद्य निर्मिति और उसके वादक कलाकार दोनों ही रूपों में अप्रतिम हैं। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा में एक विशिष्ट आयाम और जुड़ गया है। वह है, शब्द की शक्ति के प्रति उनका उत्सर्ग। नाटक में भाषा का प्रवाह और चरित्रानुकूल संवादों का होना तो महत्त्वपूर्ण है ही, इसके अतिरिक्त शब्दों की व्यंजना - शक्ति उन्हें अनेकार्थक तथा काव्यात्मक बना देती है। शेखर सेन के नाटकों की भाषा अधिकांश स्थलों पर अभिधा से परे, लक्षणा और व्यंजना के माध्यम से उसे साहित्यिक विशिष्टता का कलेवर प्रदान करती है। इसका विवेचन भी किया जाना चाहिए।

अब तक उनके पाँच एक पात्रीय नाटक प्रचलन में हैं। 'तुलसीदास', 'सूरदास', और 'कबीर' भक्ति सम्प्रदाय के कहाकवि हैं। 'विवेकानन्द', भारतीय संस्कृति, दर्शन और मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक पुनरूत्थान के अन्यतम उन्नायक है। उनका पाँचवाँ नाटक 'साहब' विशुद्ध-ता सामाजिक और समकालीन है जिसमें पिता-पुत्र के सम्बन्धों के बदलते संदर्भों को गहरे और आर्थिक रूप से विश्लेषित किया गया है। सतही तौर पर तुलसी, सूर और कबीर के जीवन चरित्र को समान सी शब्दावली में निरूपित किया जा सकता है; किन्तु शेखर सेन ऐसा नहीं करते।

इनकी रचना प्रक्रिया की चर्चा से पूर्व हम इन तीनों नाटकों की शाब्दिक महत्ता पर प्रकाश डालना चाहेंगे।

सबसे पहले तीन भक्त कवि महाकवियों के कृतित्व और व्यक्तित्व पर आधारित नाटक। इन तीनों की भक्ति भाव-धारा भी एकरूपा नहीं है। तुलसीदास की भक्ति-भाव का मुख्य रूप हास्य भाव का है।

''मो सम दीन, न दीन हित, तुम समान रघुबीर,
अस विचारि रघुबंस मणि हरहु विषम भव भीर।''
''स्वामी मोहि न बिसारियो, लाख लोग मिलि जाहिं,
हमसे तुमको बहुत है, तुमसे हमको नाहिं।''

तुलसीदास की वन्दना का यह भाव उन्हें अन्यतम भक्त कवि के पद पर प्रतिष्ठित करता है। वाल्मीकि के 'मर्यादा पुरूषोत्तम' की वे 'भगवान राम' की तरह आराधना करते हैं। *'तुलसी मस्तक तव नवे, धनुष बाण लेहु हाथ'* कहने वाले तुलसी की भाषा में विनय और हास्य भाव का अनूठा संगम उनके व्यक्तित्व का स्वरूप निर्धारित करता है। अतः 'तुलसी' नाटक की शब्दावली में जो सौन्दर्य मूलक तत्व है। वे महाकवि तुलसी के काव्य और व्यक्तित्व को सहज और सरलतम रूप में सम्प्रेषित करने में सहायक होते हैं। उनके नाटक की शब्दावली उन्हें 'शेखर सेन' के व्यक्तित्व से परे 'तुलसी' के व्यक्तित्व, उनकी भाव प्रवणता और अपने आराध्य के प्रति उनकी अनन्य साधना से एकात्म कर देती है। उन्हें

तुलसी के 'चरित्र में प्रवेश' करने की पद्धति या 'संवेगात्मक स्मृति' का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं होती। वे तुलसी के शब्दों के सहारे ऐसे लोक में प्रवेश कर जाते हैं जिसका कण-कण तुलसीमय है। फिर उन्हें 'सायास अभिनय' करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वे स्वयं 'तुलसीमय' हो जाते हैं।

सूरदास की भक्ति भाव धारा तुलसी के 'हास्य भाव' से एकदम परे है। उनकी भक्ति मूलतः साख्य भाव की है। श्याम उनके आराध्य तो हैं, किन्तु सखा रूप में। यद्यपि सूरदास ने कूटपदों की भी रचना की है; तथापि उनके कवि रूप की यही मान्यता और विशिष्टता सर्व स्वीकृत है। स्पष्ट है कि सूरदास का यह व्यक्तित्व उनके कृतित्व को ऐसी भंगिमा प्रदान करता है जो भक्ति काव्य साहित्य में अन्यतम और अद्वितीय है।

इसके साथ ही एक बात और भी है। यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि वे जन्मान्ध थे। एक जन्मान्ध कवि की तन्मयता का बोध कराने वाली शब्दावली उनके काव्य के अन्तर्निहित भावों से कितने प्रामाणित रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम है, यही निकष है। शेखर सेन अपने इस नाटक में सूरदास की रचनावली को जिन शब्द सूत्रों में पिरोते हैं, वह अद्भुत है। एक नेत्रवान अभिनेता मंच पर लगभग दो घंटे तक जन्मान्ध कवि की भूमिका में उतरता है और पल-प्रतिपल उसके जन्मान्ध होने का बोध और अपने आराध्य के प्रति सखा भाव के मिश्रित रूप से दर्शकों के सन्मुख प्रस्तुत करता है। यह अत्यन्त दुसाध्य है। सूरदास के काव्य की मृदु, वात्सल्य पूर्ण और मनोहारी भाव-भूमि पर सम्पूर्ण प्रस्तुति का दिव्य भवन अनिर्वचनीय सौन्दर्य की छटा बिखेरता है।

और अब कबीर! वे निगुर्ण भावधारा के शीर्षस्थ कवि हैं। साकार भक्ति-भाव से परे ही नहीं, उस पर दुर्दान्त प्रहारों के साथ निराकार भक्ति की सर्वोभ्यता और निर्गुण साधना का सम्पोषण करने वाले! विशुद्ध मानवतावादी विचारों और धार्मिक रूढ़ियों तथा पाखंड का प्रबलतम विरोध करने वाले ऐसे कवि जो भारतीय दर्शन के अनुपम पृष्ठ को पुनर्व्याख्यायित करते हुए मानवीय संवेदनाओं की अत्यन्त प्रखर अभिव्यक्ति के काव्य स्तम्भ हैं! *'पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़'* जैसी मादक, सहज और दो टूक उक्तियों के द्वारा वे समाज के कट्टरतावादी, रूढ़िवादी और धार्मिक पाखंड के पोषक तत्वों का घोर विरोध करते हैं। फक्कड़ और घुमक्कड़ व्यक्ति उनके कवि रूप का जो चित्र उपस्थित करता है, उसे सर्वग्राह्य रीति से सम्प्रेषित करने की शब्दावली का चयन करना साधारण बात नहीं। कबीर का विद्रोही तेवर और सामाजिक उत्सर्ग उन्हें जिस रूप में प्रतिष्ठित करता है, वह समकालीन सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों में अत्यन्त मूल्यवान है। विश्व बंधुत्व और वैश्विक चेतना के उन्नायक के रूप में ही नहीं, वरन सामाजिक साम्य के पक्षधर होने के नाते वे सामयिक स्थितियों में सर्वाधिक प्रासंगिक संत कवि हैं। सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के स्वरों में उनके मन में निरन्तर जलती नैतिकता की अखंड ज्योति है। वे सूक्ष्मतम शब्दों में भारतीय दर्शन और जीवन की वास्तविकता, दोनों के मर्म तक पहुँचने में समर्थ हैं। उनका रचना-कौशल देशज भाषा के अक्खड़पन को ईश्वरीय सत्ता के दिग्दर्शन कराने की अद्भुत शक्ति रखता है।

कबीर का ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व और उनके काव्य की भाषा के अवगुंठित सौन्दर्य को सामान्य दर्शक तक सम्प्रेषित करने के लिए शेखर सेन जिन शब्दों का सहारा लेते हैं, वह अत्यन्त दुसाध्य और चुनौती भरा है। संत की वाणी और विद्रोह का स्वर एक साथ साधते हुए वे कबीर के काव्य की अन्तश्चेतना और सामाजिक नव-निर्माण के अनन्त से दिखने वाले दो छोरों को पाटने में पूरी तरह सफल हैं। यह तीन भक्त और संत कवियों के अन्तर्विरोध सी दिखने वाली वह काव्य-यात्रा है, जिनका गोमुख एक ही है। किन्तु विवेकानन्द इन तीनों से एकदम अलग हैं। उनका माध्यम काव्यानुभूति के द्वारा रसोद्रेक नहीं। वे विचार के माध्यम से सामाजिक सुषुप्त-चेतना को झकझोरने के लिए प्रतिबद्ध हैं। अनेक शताब्दियों तक दासता के बंधनों को भाग्य की विडम्बना समझ कर निरीहता का जीवन जीने वाले समाज में आत्म-विश्वास और नव-चेतना के स्वरों को झंकृत करना लगभग असंभव सा था। विवेकानन्द की शब्दावली में व्यंजना और बिम्ब योजना की सौन्दर्यानुभूति का कोई अवकाश नहीं था। अभिधा शक्ति को दुधारी तलवार की तरह प्रयोग करते हुए उन्होंने अंधकार की चादर को छिन्न-भिन्न करने का सामर्थ्य जुटाया। साथ ही साथ भारतीय दर्शन, संस्कृति और मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करने के लिए ज्ञान के अमरत्व की अनन्त ज्योति के अवरोधक लौह-कपाटों को खंड-खंड कर डाला। वे संत विचारक और कर्मयोगी थे। 'चरैवेति-चरैवेति' का शंख फूंकने वाले विवेकानन्द वह महापुरूष नरेन्द्र से विवेकानन्द कैसे और क्यों बना, यह आज के समाज के लिए अत्यन्त प्रेरक गाथा है। यह इतिहास-कथा मात्र 'उपदेश वचन' न रह जाए, वरन जन-सामान्य के लिए नव-उद्बोधनकारी सिद्ध हो और इस योगी के विचारों को मंच पर साकार रूप दे सके, यह विस्मयकारी कार्य शेखर सेन ने कर दिखाया। इसके लिए उन्होंने अपने आलेख में जिन शब्दों का चयन किया वे अत्यन्त ओज पूर्ण और तेजोमय है। भारतीय संस्कृति की यह गौरव-गाथा मनोरंजक होते हुए भी उससे कहीं अधिक विचारोत्तेजक है। विशेष रूप से शिकागो में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्बोधन ही अप्रतिम है। लगता है, शेखर सेन ने विवेकानन्द के विचारों और चिन्तन को मानव देह प्रदान की है। यह विशेषता जितनी अधिक उनके अभिनय की है, इससे कहीं अधिक उनके नाटककार की शब्द शक्ति की है। यह शब्द शक्ति ही उनके वाचिक अभिनय को तेजस्विता प्रदान करती है, जो विवेकानन्द

मध्यप्रदेश नाटक लोककला अकादमी, उज्जैन के माईम फेस्टिवल (2016) में विशेष अतिथि श्री शेखर सेन के साथ अकादमी के संस्थापक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य एवं अकादमी के कलाकार

जैसे महान व्यक्तित्व को दर्शकों के अनुभव-जन्य, चिर परिचित और अत्यन्त आत्मीय चरित्र के रूप में प्रस्तुत करती है।

उपरोक्त चारों चरित्र भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक जगत के इतिहास-पुरूष हैं। इनके जीवन वृत्त और महत्त्वपूर्ण प्रसंग प्रामाणिक रूप से उपलब्ध भी है। नाटकीय कथा को आधार प्रदान करने के लिए ये प्रसंग भाव-भूमि तैयार कर देते हैं। इसके कारण नाट्यालेख तैयार करने में एक ओर तो यह सुविधा होती है कि लेखक को कथा प्रसंग और घटनाचक्र के लिए काल्पनिक स्थितियों को सहारा लेना नहीं पड़ता; किन्तु दूसरी ओर यही सुविधा चुनौती भी बन जाती है। कल्पनाशीलता उन्हीं यथार्थ पूर्ण और प्रामाणिक घटनाओं को नाटकीय बना कर प्रस्तुत करने की चुनौती बन जाती है। लगभग दो घंटे के नाटक में विविध घटनाओं के संयोजन से विभिन्न भावों तथा उससे उत्पन्न विभिन्न रसों का निष्पादन न होने पर एकरसता की संभावना प्रबल हो जाती है। शेखर सेन नाटककार के रूप में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो जाते हैं। उनका शब्द संयोजन पूर्णतः साहित्यिक और रंगमंचीय हो जाता है।

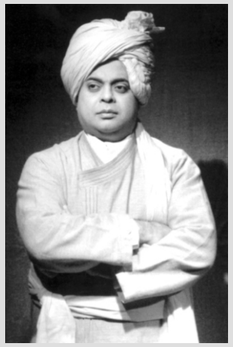

लेकिन नाटककारों के रूप में यह चुनौती उस समय और बड़ी हो जाती है, जब कथा नायक कोई ऐतिहासिक नहीं, सामाजिक पुरूष हो। यह चुनौती वे 'साहब' शीर्षक नाटक में स्वीकारते हैं। 'साहब' की कथावस्तु अत्यन्त सामाजिक और वर्तमान सामाजिक परिवेश से सम्बन्धित है। एक मध्यमवर्गीय परिवार में पिता और पुत्र के बीच संवाद हीनता और परस्पर सौहार्द के विखंडन की व्यथा-कथा हमारे सामयिक समाज के लिए नई नहीं है। पारिवारिक विघटन और टूटते सम्बन्ध की मंत्रणा से मध्यमवर्गीय परिवार ग्रस्त होते जा रहे हैं। हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर सबसे घातक और दुर्दान्त प्रहार पारिवारिक सम्बन्धों के बीच आई दरार ने किया है। संभवतः सबसे बड़ा कारण पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच मूल्यों की टकराहट है; किन्तु इसके पक्ष अत्यन्त साधारण और आदरभाव की हीनता से ग्रस्त है और बिना बीज अति सामान्य धरती में भी यत्किंचित वर्षा के कारण कुकुरमुत्ते की तरह अनायास उग आते हैं।

शेखर सेन का नाटक 'साहब' इसी कथावस्तु की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इस कथा के समस्त प्रसंग हमारे अनुभवों के अंग रहे हैं। कहीं कोई अप्रत्याशित या 'नाटकीय' घटना या औत्सुक्य जनित मोड़ नहीं है। किन्तु शेखर सेन इस नितान्त परिचित और जन-जन की अनुभूत सत्यता को ऐसे संवादों से प्रभाव पूर्ण बना देते हैं कि दर्शकों को लगता है, वे अपने ही जीवन की घटनाओं या प्रसंगों को मंच पर अभिनीत होते देख रहे हैं। सच कहा जाए तो उनका रचना रचना कौशल इस नाटक की कथा-वस्तु के कारण नहीं, बल्कि उनके शब्द संयोजन के माध्यम से मुखरित होता यह उनके नाटककार की क्षमता का निकष है। दिलचस्प बात तो यह है कि प्रौढ़अवस्था के दर्शक को उनके नाटक 'तुलसी', 'सूर', 'कबीर' या 'विवेकानन्द' जितना प्रभावित नहीं करते है, उससे कहीं अधिक 'साहब' को नई पीढ़ी के दर्शकों ने सम्मान, समर्थन और प्रशंसा और ख्याति प्राप्त की है। शेखर सेन वस्तुतः इन दोनों रूढ़ियों के साक्ष्य रहे हैं, अतः इनके टकराव को वे बहुत संतुलित एवं तटस्थ भाव से सम्प्रेषित करते हैं।

स्वर, छंद और शब्द के परिनिष्ठित तत्व ने शेखर सेन को स्वाभाविक रूप से एक सफल गीतकार के रूप में भी प्रतिष्ठित किया। यह कहा जा चुका है कि उनके सभी नाटकों में गीत और संगीत प्राण-तत्व के रूप में अवस्थित होते हैं। 'सूर', 'तुलसी' और 'कबीर' के काव्य से ही उन्हें इतनी समृद्ध सामग्री मिल गई थी कि स्वयं गीत रचना की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु 'विवेकानन्द' और विशेष रूप से 'साहब' की घटनाओं तथा परिस्थितियों के प्रभावशाली सम्प्रेषण के लिए स्वयं गीत लिखे। ये गीत कथानक में विभिन्न घटनाओं अथवा प्रसंगों के सेतुबन्ध के रूप में नहीं, वरन अधिकांशतः उन मनोभावों की तीव्रता प्रतिपादित करने वाले हैं जो नाटकीय परिप्रेक्ष्य के भावोद्रेक में सहायक होते हैं। एक सफल गीतकार की पहचान इसी भावोद्रेक की क्षमता से होती है। संस्कृत नाटकों से लेकर भारतेन्दु, टेगौर, प्रसाद, शंभुमित्र, हबीब तनवीर, कावलम नारायण पणिक्कर और रतन थियाम आदि के नाटकों तक यह तथ्य स्पष्ट रूप से रेखांकित होता है। शेखर सेन के नाटक इसी परम्परा के नाटककार के रूप में उपस्थित होते हैं, जो आजकल लिखे जा रहे पाश्चात्य प्रभाव के गद्यात्मक नाटकों से एकदम परे है। भारतीय नाट्य-परम्परा को उन्होंने गीत और संगीत से परिपुष्ट किया है। यह कहा जा चुका है कि भारतीय पारम्परिक नाट्य, भाव, राग और ताल का संगम है। शेखर सेन के नाटकों का यह स्वरूप नाटककार के रूप में भी उन्हें शीर्षस्थ स्थान पर प्रतिष्ठित करता है। अब एक सबसे आकि दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण बात और थी। अपने नाटकों का आलेख, गीत, संगीत आदि की रचना तो वे करते ही हैं, किन्तु उनके अभिनटन में तो वे सचमुच अत्यन्त कुशल हैं। स्वर और ताल से युक्त उनकी संवाद शैली के साथ उनकी मुख मुद्राएं और भंगिमाएं भी उन्हें उच्च कोटि के अभिनेता के रूप में स्थापित करते हैं। उनका नेत्राभिनय, हास्याभिनय और चारी में हमारे शास्त्रीय नृत्य की कलात्मकता के संदर्शन होते हैं। यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि उन्होंने गायन-वादन के विधिवत प्रशिक्षण के अतिरिक्त पं. कार्तिराम जी (रायगढ़) से एवं कथक के अन्य कला गुरूओं से चार वर्ष कथक नृत्य का भी विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इसीलिए उनके अभिनय में 'भाव कहने' की अद्भुत योग्यता है।

नृत्यात्मक गतियों द्वारा वे मंच के सम्पूर्ण भाग का समुचित प्रयोग करते हैं। दर्शकों को एहसास ही नहीं होता कि वे मंच पर अकेले हैं। एक ही अभिनेता जब अनेक और अनेकानेक चरित्रों का अभिनय करता है तो चरित्रानुरूप अभिनय के खंडित होने की संभावना हो जाती है, किन्तु शेखर सेन एक चरित्र से दूसरे चरित्र को इस तरह अंगीकार करते हैं जैसे मछली जल में तैरते हुए एक दिशा से अनायास दूसरी दिशा में मुड़ कर आनन्द से तैरने लगती है। अभिनय में यह सहजता और स्वाभाविकता उनकी बहुत बड़ी विशेषता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हमारे शास्त्रीय नाट्य के समस्त अंगों का समावेश उनकी नाट्य-प्रस्तुतियों को विशिष्टता प्रदान करता है।

शेखर की शिखर-यात्रा : कुछ अन्तरंग सूत्र

मेरा सौभाग्य कि मुझे उनके रचनाकर्म के सम्बन्ध में बातचीत करने के अनेक अवसर मिले हैं। उनके आधार पर मैं उनके रंगकर्म के विशिष्ट अध्यायों के थोड़े से पृष्ठों को पढ़ने का प्रयत्न कर सका हूँ। इससे उनकी बहुमुखी प्रतिभा की अनेक छवियों का आकलन करना यत्किंचित संभव हो सका है। ये अनुभव भी कम दिलचस्प नहीं।

आइये, शेखर सेन के जीवन के विविध प्रसंगों पर नजर डालें। रायपुर, मध्यप्रदेश (अब छत्तीसगढ़) में जन्मे शेखर सेन को सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा विरासत में मिली। इसके साथ ही भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठा का भाव भी इतने की प्रखर रूप से प्राप्त हुआ। उनके पिता स्व. डॉ. अरूण कुमार सेन खैरागढ़स्थित इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के उप-कुलपति थे। मूलतः बांग्लाभाषी होने के बावजूद हिन्दी के प्रति उनका अनन्य प्रेम था। उन्होंने तेलुगू भाषी विदुषी स्नेहलता जनसामी से प्रेम विवाह किया, जो उस समय जातीय विद्रोह का सूचक समझा जाता था। डॉ.

अरूण कुमार सेन के काका प्रख्यात विद्वान क्षिति मोहन सेन थे, जो गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टेगौर के अत्यन्त प्रिय मित्रों में से एक थे। आचार्य क्षिति मोहन सेन ने तेलुगू भाषी कुमारी स्नेहलता को धाराप्रवाह बाँग्ला बोलते सुना। भारतीय संस्कृति, दर्शन, कलाओं के प्रति उनके विचार जान कर वे इस प्रेम विवाह के प्रबल पक्षधर हो गए, और यह विवाह बाँग्ला पारम्परिक रीति-नीति के अनुसार सम्पन्न हुआ। शेखर सेन के पिता श्री अरूण कुमार सेन और माता श्रीमती स्नेहलता जी का प्रेम विवाह हुआ था। उनकी माता तेलुगू भाषी थीं और विवाह के बाद श्रीमती अनीता सेन के नाम से संगीत जगत में प्रसिद्ध हुईं। उन दोनों के गहरे भावनात्मक सम्बन्धों के दो पक्ष अत्यन्त प्रबल थे। प्रथमतः वे दोनों भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अगाध श्रद्धावान थे और दूसरा, दोनों के मन-प्राण में संगीत के प्रति अनन्य प्रेम था। स्वाभाविक था कि शैषव अवस्था से ही शेखर सेन को ये दोनों तत्व विरासत में प्राप्त हुए। इसे आप नैसर्गिक प्रतिभा कहें या जन्म-जात गुण कि मात्र तीन वर्ष की अबोध आयु में ही आपने मंच पर पहली संगीत प्रस्तुति दी। अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि यह पहली प्रस्तुति संभवतः माता-पिता के गायन से परिपुष्ट रही हो, फिर भी स्वर-ताल का ज्ञान इनकी अन्त चेतना की सिद्धि का परिचायक तो निश्चयतः है। यही वह कारण रहा कि शिशु शेखर की पहली मंचीय सफलता से उत्साहित होकर माता-पिता ने उन्हें छोटी सी उम्र में ही संगीत शिक्षा की ओर प्रवृत्त कर दिया। स्वर-सप्तक की पकड़ और त्रिताल, कहरवा और दादरा जैसी बुनियादी तालों की अच्छी समझ और ज्ञान के बाद उनका औपचारिक गायन प्रशिक्षण श्रीमती कमल केलकर और श्रीमती छवि राय के निर्देशन में आरम्भ हुआ। सामान्यतः होता यह है कि कला के किसी एक क्षेत्र-विशेष में बालक की रूचि और सफलता देखकर माता-पिता उसे उसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। किन्तु बालक शेखर सामान्य नहीं थे, अतः उन्होंने गायन के साथ-साथ वादन में भी अपनी गहरी रूचि प्रदर्शित की। लगभग सात-आठ वर्ष की आयु से ही उन्होंने गायन के साथ सितार-वादन का प्रशिक्षण भी प्रारम्भ कर दिया। पं.श्याम द्विवेदी जी से उन्होंने चार वर्ष तक सितार-वादन का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसके बाद पाँच वर्ष तक पं. तुलसीराम जी देवांगन और दादाजी देशपांडे से पाँच वर्ष तक वायलिन-वादन सीखा। किशोर वय में ही संगीत के विविध अंगों में निष्णात होने के बाद वे शास्त्रीय नृत्य की ओर प्रवृत्त हुए। विख्यात कथक गुरू पं. कार्तिक राम जी रायगढ़वाले, आशीवार्दम जी और पं. बालकृष्ण जी से युवावस्था में शेखर कथक नृत्य के लास्य अंग और मुद्राओं तथा भाव-भंगिमाओं की भाषा सीखने लगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ समय बाद उनकी एकल अभिनय की प्रस्तुतियों में कथक नृत्य का पद संचालन, नेत्राभिनय, हस्ताभिनय और मुखाभिनय ने कितना बड़ा कलात्मक योगदान दिया। शास्त्रीय रूप अत्याधिक कलात्मक और प्रभाव-पूर्ण बन गया। शब्दों के अर्थ को सम्पूर्णता से प्रेषित करने की क्षमता ने उनके वाचिक अभिनय को विशिष्टता प्रदान की है। इस बीच उन्होंने कमला देवी संगीत महाविद्यालय से बी. म्यूज और संगीत विद की उपाधि भी प्राप्त की।

यह तरूण शेखर के जीवन का प्रथम चरण था। संगीत एवं नृत्य प्रशिक्षण के साथ भारतीय संस्कृति, साहित्य और सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति उनका गहरा लगाव तथा गंभीर अध्ययन निरन्तर चलता रहा। कुमारी श्वेता बसु से विवाह के बाद उनके पारिवारिक जीवन में नया मोड़ आया। कला एवं साहित्य साधना के साथ जीवन-यापन का दायित्व स्वीकारने के उद्देश्य से वे अपने बड़े भाई कल्याण सेन के साथ बम्बई (अब मुम्बई) चले आए। यह सन् 1979 की बात है। वे गीतकार, संगीतकार और गायक के रूप में रायपुर में अपनी पहचान बना चुके थे। बम्बई की कला नगरी में उन्होंने संगीतकार के रूप में शेखर कल्याण के नाम से प्रवेश किया। इसके लौह कपाट अत्यन्त दुर्भेद्य लगे किन्तु उन्हें एक लघु प्रवेश द्वार मिल गया। उस समय की जानी-मानी संगीत-जगत की सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रामोफोन रिकॉर्ड और एलबम बनाने वाली कम्पनी एच.एम.वी. ने उन्हें गजल गायक के रूप में अनुबन्धित कर लिया। किन्तु शीघ्र ही वे जान गए कि गजल गायकी से कहीं अधिक आत्मतोष और आत्मिक आनन्द उन्हें भजन गायकी से प्राप्त होता है। भजनों के संगीतकार और गायक के रूप में उन्हें पर्याप्त ख्याति, आत्म-तुष्टि और सृजनात्मक सुख का बोध हुआ। इस अवधि में उनके दो सौ से अधिक भजनों के एलबम प्रकाश में आए। अब वे गीतकार, संगीतकार और गायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

इसके बावजूद हिन्दी साहित्य के प्रति उनके लगाव को अवकाश प्राप्त नहीं हो रहा था। सन् 1984 में अर्थात् मात्र 23 वर्ष की आयु में वे उस समय के अत्यन्त प्रतिष्ठित कवि और गजलगो दुष्यंत कुमार के साहित्य की ओर उन्मुख हुए। कुछ शब्द स्व. दुष्यंत कुमार के सम्बन्ध में भी! उनका पूरा नाम दुष्यंत कुमार त्यागी था। उनका पहला कविता संग्रह 'सूर्य का स्वागत' सत्तर के दशक में प्रकाशित हुआ। उस समय के शीर्षस्थ समीक्षकों ने ही नहीं, वरन कवियों, कहानीकारों ने भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इनमें धर्मवीर भारती प्रमुख थे जो उस समय की महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'निकश' का सम्पादन भी कर रहे थे। अन्य कवियों में नरेन्द्र शर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुबीर सहाय, अजित कुमार, कन्हैयालाल नन्दन, नरेश मेहता आदि उनके अनन्य प्रशंसक थे। 'सूर्य का स्वागत' की अधिकांश कविताएं मुक्त छंद में थी, किन्तु दुष्यंत का छंद और लय के प्रति विद्विष्ट आकर्षण था। संभवतः इसी कारण वे गीत से गजल की ओर उन्मुख हुए। उनकी गजल के कुछ शोर तो आज भी साहित्यिक अभिरूचि वाले बुद्धिजीवियों की जुबान पर हैं। *''हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए, इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।''* इसी गजल के कुछ और अशआर हैं :

'मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।'

एक और शेर है :

'सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।'

दुष्यंत की कविताओं के बारे में इतना सब कुछ लिखे जाने का अभिप्राय केवल इतना सा है कि उनके शब्दों की अन्तर्छवि इतनी गहरी, सार्थक और विचारोत्तेजक है कि यदि उसे सही स्वर, उचित बलाघात और शब्दों के अन्तर्निहित अर्थों की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का आश्रय मिले तो उसका प्रभाव अक्षुण्ण हो सकता है।

दुष्यंत की कविताओं की इस अदम्य शक्ति से परिचित शेखर सेन ने उनकी अनेक कविताओं की स्वर रचना की और सन् 1984 में एक कार्यक्रम आयोजित किया- **'दुष्यंत ने कहा था।'** इस कार्यक्रम का संचालन प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर ने किया था। कार्यक्रम की अमिट स्मृति को समावर्तन के जनवरी 2014 के अंक में डॉ. पुष्पा भारती ने इन शब्दों में व्यक्त किया : *'उस दिन शेखर दुष्यंत को गा रहे थे। एक के बाद एक भाव-लहरी मन को भिगोती जा रही थी और धीरे-धीरे दुष्यंत की कविता बड़ी से बड़ी होती जा रही थी। दुष्यंत की कविता को एक विराट पहचान दे रहे शेखर सेन के सधे हुए मीठे सुर . . . . . और लो, जब शेखर ने गाया :*

'तू किसी रेल सी गुजरती है,
मैं किसी पुल सा थरथराता हूँ।'

तब तो मैं अचानक ही किसी अतीन्द्रिय लोक में पहुँच गई। शेखर के स्वर पुल से थरथरारहे थे और दुष्यंत के शब्द जिन्दा जुबान बन कर बोल रहे थे और मेरी हृदय की धड़कनें उसी ताल में धड़क रही थी कि मन में कौंध गई भारती जी की कनुप्रिया की पंक्तियाँ:

'मंत्र पढ़े बाण से छूट गए तुम तो कनु,
शेष रही मैं केवल, काँपती प्रत्यंचा सी।'

और अनजाने ही मैं प्रत्यंचा सी थरथराती रही... और तो सब कुछ शून्य में विलीन हो गया... शेखर शेखर नहीं रह गए थे, स्वयं संगीत बन गए थे, सभागार एक विशाल समंदर में बदल गया था और मैं स्वर-लहरियों पर आँखें मूंदे निश्चल पड़ी तैर रही थी...तैर रही थी... अनबूढ़े बूढ़े, तिरे जे बूढ़े सब अंग।' पुष्पा जी का मात्र एक उद्धरण ही यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि स्वर की सार्थक भंगिमा और शब्दों के अर्थ की तेजस्विता का कलात्मक समन्वय दर्शकों या श्रोताओं के मन-प्राण और आत्मा को कैसे उस रसास्वादन तक ले जाता है, जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जाता है।

नाद और शब्द ब्रह्म स्वरूप के द्वैत का साक्षात्कार ***'दुष्यंत ने कहा था'*** कार्यक्रम की विशिष्ट उपलब्धि माना जा सकता है। इसका बहुत बड़ा लाभ तो यह हुआ कि शेखर सेन के संगीत माधुर्य से अभिभूत श्रोताओं में साहित्यिक जगत के विशिष्ट जन भी शामिल हो गए और शेखर सेन को भी शीर्षस्थ साहित्यकारों का वरदहस्त प्राप्त हुआ। श्रेष्ठ साहित्य को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से एक नई संस्था का गठन हुआ। भारतीय संस्कृति, दर्शन, साहित्य और संगीत की विशिष्टताओं को संयोजित करके नियमित रूप से सार्वजनिक प्रदर्शन करना इस संस्था का संकल्प था, अतः संस्था का नाम भी ***संकल्प*** रखा गया। लब्ध प्रतिष्ठ गीतकार पं. नरेन्द्र शर्मा इसके अध्यक्ष बने और शेखर सचिव। हिन्दी के शोधपूर्ण कार्यक्रमों का सिलसिला आरम्भ हुआ। अगले ही वर्ष हिन्दी दिवस पर मध्यकालीन कवियों की रचनाओं पर आधारित ***'मध्ययुगीन काव्य'*** शीर्षक से कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसका संचालन रेडियो और टेलीविजन के प्रसिद्ध एंकर पं. विनोद शर्मा ने किया। इस कार्यक्रम में शेखर सेन ने रसखान, रहीम, ललित किशोरी, सूरदास, तुलसीदास, कबीर जैसे कवियों की भक्ति और दर्शन से पूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त भूषण और बिहारी जैसे कवियों की ओजस्वी तथा रीति-नीति के काव्य से सम्पुष्ट रचनाओं का संगीतमय प्रस्तुतिकरण किया और श्रोताओं को मध्य युग के कवियों की विशिष्टता तथा विलक्षणता का आस्वादन कराया।

इसकी आशातीत सफलता ने संकल्प संस्था के साहित्यिक ***संकल्प*** को नई ऊर्जा एवं गति प्रदान की। हिन्दी दिवस के अवसर पर एक नया साहित्यिक-सांगीतिक पृष्ठ जुड़ने लगा। इन कायक्रमों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि समकालीन हिन्दी साहित्य के उन प्रसंगों को रेखांकित किया गया, जो विशिष्टजनों के लिए अपरिचित तो नहीं थे, फिर भी उनसे प्रामाणिक साक्षात्कार नहीं हो सका था। सन् 1986 में ***'पाकिस्तान का हिन्दी काव्य'*** विषय पर केन्द्रित कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसका संचालन डॉ. पुष्पा भारती ने किया। इस कार्यक्रम से हिन्दी साहित्य के अनछुए किन्तु परिचित से प्रसंगों पर नूतन दृष्टि और नवाचार पूर्ण सृजनधर्मिता के लिए संकल्प संस्था ने अपना विशेष स्थान बना लिया। इसके बाद के वर्षों में ***'मीरा से महादेवी तक'*** और ***'कहत कबीर सुनो भाई साधो'*** जैसे कार्यक्रमों ने मुम्बई के एक बड़े कला और साहित्य प्रेमी वर्ग को बौद्धिक रंजन प्रदान किया वह अनेक अर्थों में विशिष्ट एवं गरिमापूर्ण बन गया। सन् 1989 में डॉ. धर्मवीर भारती की रचनाओं पर आधारित कार्यक्रम ***'मेरी वाणी गैरिक वसना'*** के द्वारा शेखर सेन ने भारती जी की दार्शनिक विचार-धारा, सांस्कृतिक चेतना और नूतन बिम्ब विधान को मधुर स्वर संधान के माध्यम से मुखरित किया वह सचमुच अविस्मरणीय था। काव्यात्मक शब्दों के गूढ़ार्थ और व्यंजनाओं को संगीत के माध्यम से अत्यन्त सहज और सरल रूप में सम्प्रेषित करने का कौशल शेखर सेन का पर्याय बन गया।

एक दिलचस्प बात और भी थी। पं. नरेन्द्र शर्मा और धर्मवीर भारती जैसे गुरूजनों का प्रोत्साहन और नई पीढ़ी के विशाल वर्ग की प्रशंसा तो भरपूर मिली, किन्तु आर्थिक दृष्टि से बहुत समृद्ध और सम्पन्न नहीं बन सके। इसलिए वे एक बार फिर अपने गायन, के कैसेट और सी.डी. के द्वारा अर्थार्जन करने की ओर प्रवृत्त हुए। टी.वी. सीरियल्स और फिल्मों में भी संगीत रचना की और दो सौ से अधिक सी.डी. तथा कैसेट प्रकाश में आए।

इसके बाद उनके गुरूजनों और घनिष्ट मित्रों ने उनके वाचिक अभिनय-क्षमता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। इसमें संभवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका मुम्बई की बहुचर्चित रंग संगोष्ठी 'चौपाल' की रही, जहाँ उन्होंने रंग-प्रस्तुतियों की जटिलताओं और सृजनात्मक संभावनाओं का गहन अध्ययन किया। एन.एस.डी. के वरिष्ठ स्नातक, सुप्रसिद्ध अभिनेता राजेन्द्र गुप्त के निवास स्थान पर प्रति माह अनेक कलाकार, साहित्यकार एवं रसिकजन एकत्र होते हैं और रंगमंच के सभी पक्षों के अतिरिक्त समकालीन साहित्य और टी.वी., फिल्मों पर भी गंभीर किन्तु सहज और अनौपचारिक रूप से चर्चा करते हैं। शेखर सेन चौपाल के नियमित सदस्य ही नहीं, वरन एक महत्त्वपूर्ण आधार स्तम्भ भी थे। चौपाल गोष्ठी का समापन उनके गायन से ही होता था। ***'चौपाल'*** के द्वारा ही अनेक विशिष्ट रंगकर्मी उनके गहरे मित्र बने, जिन्होंने उन्हें अभिनय के क्षेत्र में उतरने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित किया। वरिष्ठ रंगकर्मी अतुल तिवारी भी उनमें से एक हैं, जिन्होंने मुझे उनकी रंग-यात्रा के संदर्भ में अनेक दिलचस्प जानकारियां दी। प्रस्तुत लेख में उन प्रसंगों का भरपूर उपयोग किया गया है। यह कहा जा चुका है कि डॉ. अरूण कुमार सेन और डॉ. अनीता सेन को भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति अगाध श्रद्धा थी। सेन दम्पत्ति श्रेष्ठ संगीतज्ञ और गायक के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित कर चुके थे। सन् 1977 में उन्हें अमेरिका में संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत करने का निमंत्रण मिला। वे सपरिवार लगभग दो माह तक अमेरिका में रहे। उन दिनों बोस्टन भारतीय संस्कृति, साहित्य और कलाओं के कार्यक्रमों का बड़ा केन्द्र था। वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण मेला चल रहा था, जिसमें अनेक देशों से आए हुए विद्वानों ने तुलसीदास जी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर गंभीर चर्चाएं कीं। नव युवक शेखर सेन के मन पर महाकवि तुलसीदास के जीवन चरित्र और विशेष रूप से रामायण का गहरा प्रभाव पड़ा। अपने देश लौटकर आने पर वे रामायण की कथा और तुलसी के काव्य-माधुर्य के आस्वाद के लिए उसका मनन करते रहे थे।

डॉ. धर्मवीर भारती, पं. नरेन्द्र शर्मा और कमलेश्वर जैसे शीर्षस्थ साहित्यकारों के प्रोत्साहन और चौपाल के रंगकर्मी मित्रों के सहयोग ने उन्हें तुलसी के जीवन पर नाटक लिखने के लिए प्रेरित किया। नाटक के प्रथम वाचन में ही संगीत के माधुर्य और जीवन के विविध प्रसंगों के भाव पूर्ण सम्प्रेषण से प्रभावित होकर डॉ. धर्मवीर भारती ने उन्हें सुझाव दिया कि इस नाटक को एकल नाट्य के रूप में वे ही प्रस्तुत करें।

लगभग दो वर्षों के परिश्रम और निरन्तर संशोधनों, परिवर्धनों के बाद नाटक मंच प्रस्तुति के लिए तैयार हुआ। शेखर सेन नहीं जानते थे कि विविध प्रतिभाओं के साथ ईश्वर ने उन्हें अद्‌भुत अभिनय क्षमता भी प्रदान की है। अतः आरम्भ में उनके मन में यत्किंचित संकोच था। वह दूर हुआ तो आर्थिक एवं अन्य संसाधन जुटाने की कठिनाई थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी पृथ्वी थियेटर प्राप्त नहीं हो सका जो इस तरह के नवाचार पूर्ण नाट्य-प्रस्तुति के लिए आदर्श सभागृह हो सकता था। मुम्बई के अन्य सभागृह बहुत महंगे हैं। भाईदास सभागृह को बुक कराने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। ऐसी स्थिति में अपनी कलात्मक जिद पूरी करने के लिए उन्होंने अपनी पत्नी के आभूशण बंधक रखे और ***'तुलसी'*** एकल-

नाट्य का प्रथम मंचन सन् 1999 में संभव हुआ।

(यह बात मुझे अतुल तिवारी ने बताई थी। जब मैंने शेखर जी से इसकी पुष्टि करनी चाही तो उन्होंने इस सत्य घटना को महत्त्व देना उचित नहीं समझा। हमारी दृष्टि से यह घटना आज की नई पीढ़ी के लिए प्रेरक होनी चाहिए। किसी भी प्रकार के संकट से उबरने के लिए हर परिस्थिति का सामना करना ही श्रेयस्कर है। वही सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है।)

अस्तु! 'तुलसी' एकल-नाट्य से उन्हें यश और प्रशंसा तो मिली ही, इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उन्हें अपनी अभिनय क्षमता के प्रति आत्मविश्वास प्राप्त हुआ, जिसने अन्ततः उन्हें भारतीय नाट्य-परम्परा की उस लुप्त प्रायः नाट्यशैली को पुनर्प्रतिष्ठित करने का अवसर प्रदान किया, जिसे संस्कृत नाट्य-शास्त्र में 'भाण' के नाम से व्याख्यायित किया गया है।

'तुलसी' की मूल रचना साकार उपासना और दास्य भाव की है। उसमें विनय और समर्पण के स्वर प्रमुख हैं। भक्ति की निष्ठा और भक्त की तल्लीनता का चरमोत्कर्ष है। काव्य की दृष्टि से भी वह अतुलनीय है। किन्तु यह भारतीय दर्शन का एक अंग ही है। दूसरा अंग निराकार उपासना का है। आध्यात्मिक साधना का यह मार्ग दुरूह और आत्मनिष्ठ है। कबीर इसी दार्शनिक पक्ष के प्रखर कवि और सगुण उपासना के घोर विरोधी हैं। मध्ययुग में निराश्रित और दिग्भ्रमित जन-मानस में धर्म के नाम पर व्याप्त अंधविश्वास और पाखंड के विरूद्ध वैचारिक चेतना का शंखनाद करने वाले संत कबीर की भाषा सहज और लोक से उपजी है। कतिपय विद्वानों और चिन्तकों का कहना था कि तुलसी एकल-नाट्य में भाव और भाषा की विनयशीलता शेखर सेन के व्यक्तितव और स्वभाव के अनुकूल थी, इसलिए उनके अभिनय की सहजता और स्वाभाविक प्रवाह ने दर्शकों को मुग्ध कर लिया था। किन्तु कबीर का भाषिक अक्खड़पन और संत का फक्कड़पन जिस अभिनय-क्षमता की मांग करता है, वह दूसरे छोर का है। ***'कबीर'*** की एकल नाट्य-प्रस्तुति ने यह सिद्ध कर दिया कि वे अभिनय के समस्त अंगों और विविध भावों के कलात्मक सम्प्रेशण के माध्यम से रस निष्पत्ति में निष्णात हैं। ***'कबीर'*** की प्रस्तुति ने संगीत और साहित्य के कला साधक शेखर सेन को अभिनेता की दृष्टि से भी प्रथम पंक्ति में ला खड़ा किया। इसके बाद ***'विवेकानन्द'*** ने भारतीय दर्शन, संस्कृति और मानव-मूल्यों के महाभाष्यकार स्वामी विवेकानन्द के विचारों को जीवन के विविध प्रसंगों को एक सूत्र में पिरोकर संगीत और अभिनय से तेजोमय बनाया, वह उनकी अभिनय प्रतिभा का नया मानदंड सिद्ध हुआ। ***'सूरदास'*** की मंच प्रस्तुति से पूर्व वे लम्बे अर्से तक आत्मसंघर्ष करते रहे कि एक जन्मान्ध महाकवि की भूमिका में निरन्तर दो घंटे तक अभिनय को प्रामाणिक और प्रभावी कैसे बना पाएंगे।

ये सभी बातें उनकी रंगमंचीय निष्ठा और रंगकर्म के प्रति उनके उत्सर्ग को शीर्षस्थ स्थान पर प्रतिष्ठित करता है; किन्तु उनकी मंचीय प्रस्तुतियों में परिष्कृति का रहस्य क्या है ? कुछ उदाहरण उसके भी।

वे यह नहीं सोचते कि प्रबुद्ध दर्शकों, समीक्षकों या आलाचकों के प्रति उनकी जवाबदेही क्या है। वे वस्तुतः अपने प्रति या अपने अन्तर्मन के प्रति जवाबदेह बने रहना चाहते हैं। इसलिए वे छोटी-छोटी चीजों में भी कोई कलात्मक समझौता नहीं करते। उनकी प्रस्तुतियों में संगीत रिकॉर्डेड होता है, लेकिन उनमें 'इलैक्ट्रॉनिक इफैक्ट' का प्रयोग नहीं किया जाता। 'विवेकानन्द' की प्रस्तुति में उन्हें एक खास किस्म की ध्वनि की आवश्यकता थी, जिसके लिए बड़े मुहँ वाले तबले का ख्याल आया। उसकी आवाज अलग होती है, लेकिन अब वो प्रचलन में नहीं है। लगभग डेढ़महीने की तलाश के बाद वे प्राप्त हुए और उस नाटक में अपेक्षित प्रभाव आ गया। 'कबीर' नाटक में अजान खुद अपनी ही आवाज में रिकॉर्ड की। अपनी पुरानी प्रस्तुतियों में भी निरन्तर परिष्कार करते रहना वे नितान्त आव यक समझते हैं। नियमित अभ्यास के सम्बन्ध में उन्होंने एक दिलचस्प उदाहरण दिया। लता मंगेशकर को 24 कैरेट सोना बताते हुए सवयं को उनके सन्मुख तांबा जैसा बताते हैं। उनका कहना है कि अगर तांबे को साफ नहीं किया जाए तो वह चार दिन में ही काला पड़ जाता है; किन्तु उसकी निरन्तर सफाई से उसमें अद्भुत चमक आ जाती है।

वे कहते हैं कि 'कबीर' की प्रस्तुति से पहले वे बहुत नर्वस होते हैं, उनके हाथ-पैर काँपते हैं। किन्तु मेरा अनुभव कुछ और ही था। जयपुर स्थित बिड़ला सभागार में उनकी 'कबीर' की प्रस्तुति देखने मैं अपने एक पुराने मित्र अशोक बांठिया के साथ पहुँचा था। बांठिया चाहते थे कि हम प्रस्तुति से पूर्व उनसे मिल कर उन्हें शुभकामनाएं दें। प्रस्तुति में लगभग आधे घंटे का समय था। वे ग्रीन रूम में अपना मेक-अप स्वयं ही कर रहे थे। यह मेरी उनसे दूसरी या तीसरी मुलाकात थी। वे मेकअप करते हुए भी अत्यन्त सहज तरीके से बातें कर रहे थे। मैंने चाहा कि प्रस्तुति से पूर्व चित्त को एकाग्र करने के लिए उन्हें अकेला छोड़ दिया जाए, किन्तु उन्होंने आग्रहपूर्वक हमें रोका और बातें करते रहे। मैं चकित था। प्रस्तुति से पूर्व तनिक भी तनाव नहीं। अत्यन्त सहज और पूरी तरह आश्वस्त। मैं वे क्षण कभी नहीं भूल सकता। अन्त में एक बात और! इस लेख के आरम्भ में कहा गया है कि उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र में वर्णित भाण को पुर्नप्रतिष्ठित किया है। उन्होंने बताया कि तीन वर्ष पहले तक मैंने नाट्यशास्त्र पढ़ा तक नहीं था। उनके नाटकों के समस्त शास्त्रीय-तत्व लोक में प्रचलित विधाओं से लिए गए हैं। अर्थात् वे लोक से प्रयोग तक पहुँचे है; शास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष से मंच प्रयोग तक नहीं। इसलिए वे सही अर्थों में लोकधर्मी हैं। शंभुमित्र, हबीब तनवीर, कावलम नारायण पणिक्कर और रतन थियाम की तरह उन्होंने लोक प्रचलित मान्यताओं से श्रेष्ठत्व को अंगीकार किया और उनके परिष्कृत रूप को अपनी एकल प्रस्तुतियों का आधार बनाया। उनके ये प्रयोग पूरी तरह शास्त्र सम्मत हैं। भरतमुनि नाट्यशास्त्र के अन्तिम अध्याय के अन्तिम श्लोक में यह स्पष्ट करते हैं:-

एवं नाट्यप्रयोगे बहुविधिविहितं कर्मशास्त्र प्रणीतम्।
नौक्तम् यन्चान लोकादनुकृतिकरणात् संविभाव्यं विधिज्ञैः।।

''मैंने नाट्यशास्त्र में नाट्य प्रयोग की अनेकानेक रंग विधियों का वर्णन कर दिया है। इन निर्दिष्ट रंगकर्म के विविध अंगों से सम्बन्धित जो बातें कहने से छूट गई हों अथवा न कही जा सकी हों, उन्हें नाट्याचार्य अथवा विद्वज्जन अपने लोक में विद्यमान विषय तथा व्यवहार को देख कर समय के अनुसार अपने रंगकर्म में उनका समावेश कर लें।''

वर्तमान समय में प्रचलित भारतीय कलाओं का सम्पुष्ट रूप हमें शेखर सेन के रंगकर्म में दिखाई देता है। वे शास्त्रीय सिद्धान्तों का यथा रूप अनुसरण नहीं कर रहे। उनकी प्रस्तुतियों के रंग-रूप में बहुत कुछ आधुनिक है जो उन्हें सर्वग्राह्य बनाता है; किन्तु उन प्रस्तुतियों की आत्मा विशुद्धतः शास्त्रीय है। प्रेक्षकों को स्वीकार्य नाट्य प्रयोग के सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र के सत्रहवें अध्याय के 121वें श्लोक में भरतमुनि कहते हैं:

मृदुललितपदार्थम् गूढशब्दार्थहीनम्
जनपदसुखभोग्यम् युक्तिमन्नृत्तयोज्यम्।
बहुकृतरसमार्गम् सन्धिसंधानयुक्तम्
भवतिजगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम।।

अर्थात् जिस नाट्य प्रस्तुति में कोमल और ललित अर्थों वाली पदावली हो, जटिल शब्द और अर्थों से रहित हो, प्रेक्षक वर्ग को नाट्य-प्रयोग देख कर सुख का अनुभव हो और पूरी तरह समझ कर उसका आनन्द ले सकें, जिसमें युक्तिसंगत और कलापूर्ण नृत्त की योजना की गई हो, नव चेतना उत्पन्न करने में समर्थ हो, वही नाट्य-प्रयोग समस्त संसार में प्रेक्षणीय होता है।'

शेखर सेन की सभी नाट्य-प्रस्तुतियाँ नाट्यशास्त्र के इन निर्देशों का पालन करके पूरी तरह शास्त्र-सम्मत हो गई हैं। ना

कहानी मेरी दृष्टि में

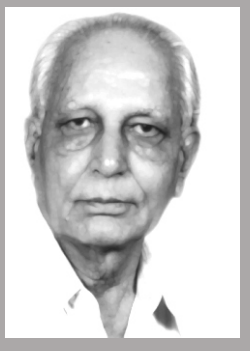

मेरे लिए कहानी विसंगत समाज की विरोधाभासी स्थितियों के खिलाफ उपजे आक्रोश और असंतोष की अभिव्यक्ति है। मेरी कहानियों में व्यक्ति, समाज और जीवन-मूल्यों का त्रिकोण है। मनुष्य-स्वभाव और उसके मनोविज्ञान को रेखांकित करने की कोशिश। बाहरी परिवेश के अतिरिक्त परिवेश के अंतर्जगत में झाँकने का एक प्रयास। सहज, सरल, भद्र, सच्चे और ईमानदार व्यक्ति के प्रति मन श्रद्धा से भी आता है, जबकि दोगले, दो मुँहे, स्वार्थी पाखंडी के प्रति घृणा का भाव। और मैं इस हुर्मान को उजागर करने का कोई अवसर नहीं छोड़ता। कोशिश सत्यान्वेषण की होती है। मेरी कहानियों में सादगी के साथ संवेदनात्मक गहराई है। उनमें शिल्प के स्तर पर बड़े प्रयोग चाहे न हों, पर एक छिपी आग है जिसकी आँच महसूस की जा सकती है। लपटें भले बहुत ऊँची न हों, पर अपने ताप का एहसास अवश्य कराती है। इसका यह अर्थ नहीं कि रचनात्मकता में कला का कोई महत्त्व नहीं है। कला, कल्पना और भाषा संवेदना के वाहक हैं। इनसे ही रचना को सौंदर्य-बोध होता है। यथार्थ कितना ही सशक्त हो, सत्ता तो कला की ही चलती है। मगर अनुभव और कला के बीच एक समावेशी भाव होना-चाहिए। बौद्धिकता, कलात्मकता और सामाजिक जागरुकता के बीच एक तार्किक संगति होनी चाहिए। अत्यधिक जटिलताओं और अमूर्त ताप सम्प्रेष्णीयता के बाधक हो सकती है। इस संदर्भ में मुझे डॉ.धनंजय वर्मा का यह कथन सटीक लगता है- 'जब-जब कहानी को अमूर्त दिशाओं में भटकाकर उसे अंधों की चीख बनाने की कोशिश की गई, तब-तब वह सौंदर्यशास्त्रियों के हाथों से फिसलकर जिंदगी की सच्चाइयों के बीच आ गई।''

प्रस्तुत कहानी में यह बताने का प्रयास है कि कथित सभ्य, शिक्षित, अभिजात वर्ग अधिक चालाक, शंकालु और अपनी चमड़ी बचाकर चलने वाला होता है। जबकि उसकी तुलना में एक साधारण सामान्य व्यक्ति सच्चा, ईमानदार और संवेदनशील होता है। स

- सूर्यकांत नागर

कहानी

तमाचा

सूर्यकांत नागर
चयन : मुकेश वर्मा

जब से फोन आया है, असमंजस में हूँ। परेशान भी। तय नहीं कर पा रहा कि फोन करने वाले के लिए 'उसने' जैसे आदर रहित शब्द का प्रयोग करूँ या 'उन्होंने' जैसे सम्मानजनक शब्द का। पचास के आसपास तो होंगे ही। यह मेरा अनुमान है। हो सकता है चार-पाँच बरस ऊपर-नीचे हों। कुछ लोग बदन-चोर होते हैं। होते साठ के हैं, लगते पचास के। अच्छी सेहत कुदरत की बड़ी नियामत है। कुछ वक्त से पहले बूढ़े हो जाते हैं। इनमें कुछ वक्त के मारे होते हैं, कुछ कुदरत के। वैसे भी मनुष्य होता क्या है, दीखता क्या है। कई बार जो दीखता है, होता नहीं। जो नहीं दीखता, वह होता है। मनुष्य को समझना सरल नहीं है। वापरने पर ही पता चलता है कि वह जितना बाहर है, उतना ही अंदर भी है या नहीं ?

जब से फोन आया है, अनुमानों, अटकलों और आशंकाओं के महासागर में गोते लगा रहा हूँ। तमाम संभावनाओं को टटोल रहा हूँ। लेकिन जैसे पानी में अनायास आई मछली हाथ में फिसल जाती है, विचार भी फिसलते रहे। दरअसल उनसे मेरा परिचय सतही ही रहा है, यदि उसे परिचय की संज्ञा दी जा सके। शुरू में तो मुझे उनका नाम भी ज्ञात न था। एक मित्र के माध्यम से मैंने उनका नाम जाना था। वह भी इसलिए कि जो शख्स इतनी आत्मीयता से हर बार नमस्कार करता है, कम-से-कम उसका नाम तो मालूम होना चाहिए। खुद उससे पूछना उसे आहत या अपमानित करने जैसे होता। कभी-कभार किसी समारोह में सामना हो जाता था। सहज मुस्कान के साथ वे नमस्कार करते थे, अक्सर दूर से ही। कभी संवाद की स्थिति बनी ही नहीं। मैं भी उनके नमस्कार का सहजता से प्रत्युत्तर देता ताकि वे मेरी साहित्यिक ईमानदारी और सामाजिक ईमानदारी में भेद न कर सकें। लेकिन उस दिन अचानक उनका फोन आया तो मैं चौंका। कहा, 'वे मुझसे मिलना चाहते हैं।' पूछा, 'कोई खास बात ?' उन्होंने इतना ही कहा, 'बस वैसे ही।' मैंने दारोगा की ऊँचाई से जानना चाहा कि मेरा नम्बर कहाँ से मिला तो कहा कि नम्बर और पता डायरेक्टरी से लिया है। सौजन्यतावश मुझे कहना पड़ा, 'आइए, स्वागत है।'

किसी दिन फोन करके आऊँगा, उन्होंने कहा था और धड़ाम से फोन रख दिया था।

परिचितों-अपरिचितों के ऐसे फोन आते रहते हैं। पूछने पर कारण भी बता देते हैं। लेकिन अव्वल तो इन अल्प-परिचित महाशय का यूँ फोन आना ही आश्चर्यजनक था, ऊपर से कारण न बताकर अपने आगमन को और भी रहस्यमय बना दिया था।

शिष्टाचार का तकाजा है कि पूछने पर अपने आने का मंतव्य बताएँ। लेकिन न धन्यवाद, न आभार। 'किसी दिन आऊँगा फोन करके' कहा और धमकी देते किसी आतंकवादी की तरह फोन रख दिया।

वह फोन निरंतर मेरा पीछा करता रहा। इस पीछे के पीछे शायद उनकी वह मोहक मुस्कान थी जो मुलाकात के समय वे चेहरे पर चिपका लेते थे। कुछ लोग बड़े शातिर होते हैं। मुस्कान के जरिए पहले सहानुभूति अर्जित करते हैं। दर्शाते हैं कि उनकी मुस्कान निस्वार्थ और निरपेक्ष है। पर वास्तव में उनके गहरे निहितार्थ होते हैं। वे सही समय के इंतजार में होते हैं। क्या उनके आने और उनकी मुस्कुराहट के बीच कोई अंतरसंबंध है ? दुआ-सलाम से बात कभी आगे बढ़ी नहीं, फिर अचानक ऐसा क्या हो गया ! शायद जानते हों कि छोटा-मोटा अफसर भी हूँ। कोई काम अटका हो दफ्तर में।

लायसेंस-परमिट का या बेटे के लिए नौकरी चाहते हों ! या बेटी के लिए वर की तलाश में हों। चिंतित और परेशान पिता कहाँ-कहाँ नहीं भटकता ! किस-किस के आगे माथा नहीं टेकता ! या फिर दलाली-वलाली करते हों। घास डालने आ रहे हों मेरे सामने। अथवा चंदा वसूली का मामला हो। चंदा-वीरों की कमी नहीं है इन दिनों। या फिर कोई दुखड़ा रोकर उधार माँगना चाहते हों।

मैं आशंकाओं से मुठभेड़ करता रहा। विचार-श्रृंखला थी कि पीछा नहीं छोड़ रही थी। जितनी कोशिश मुक्ति की करता, उतनी ही मजबूती से वह मुझे जकड़ लेती। समारोहों आदि के कारण उन्हें यह तो पता था कि मैं लिखने-पढ़ने वाला आदमी हूँ। हो सकता है उन्होंने स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति ले ली हो और उम्र के इस पड़ाव पर आकर लिखने का शौक चर्राया हो। इस धरती पर ऐसे अनेक बंदे हैं, जिन्होनें जीवन में पहले कभी कुछ नहीं लिखा, मगर रियटायरमेंट के बाद अपने अनुभवों से दुनिया को लाभान्वित करना चाहते हैं। कह सकते हैं, नौकरी में बहुत व्यस्त रहा। अब फुर्सत हुई है तो थोड़ी साहित्य-सेवा कर लूँ। अपनी कोई रचना या पाण्डुलिपि लेकर आ रहे हों, जँचवाने के लिए या भूमिका लिखवाने। ऐसा हुआ तो माफी माँग लूँगा। पहले ही समय कम है और मुझे अपना बहुत कुछ करना है। न ही मेरा मूड ठीक है इन दिनों। या हो सकता है रचना प्रकाशित करवाने के लिए संपादक से सिफारिश करवाने की याचना लेकर आ रहे हों ! नहीं जानते लोग कि एक आदर्श संपादक को केवल अच्छी रचना ही प्रभावित कर सकती है। उसके समक्ष रचना होती है, रचनाकार नहीं। पर उन्हें कौन समझाए। यह भी संभव है कि अपनी कोई किताब लेकर आ रहे हों, भेंट करने या लोकार्पण करवाने। ऐसे अद्‌भुत रचनाकार हैं इस धरा पर जो अपनी प्रथम पुस्तक के साथ ही सीधे साहित्य के दुर्गम दुर्ग में प्रवेश करना चाहते हैंः भले ही इसके पूर्व न कभी किसी ने उन्हें सुना हो, न पढ़ा हो। एक धूमकेतु की भाँति अवतरित होते हैं और अपने प्रकाशपुंज से सबको चमत्कृत कर देते हैं। हो सकता है, वे भी ऐसे ही किसी धूमकेतु की तरह आकर दरवाजे पर दस्तक दे दें।

सहज मिलने आ रहे हों ! पर फर्क गले नहीं उतरा। आजकल भला कौन किसी से यूँ ही मिलने आता है, बेमतलब। किसे फुरसत है इस भाग-दौड़ भरी जिंदगी में ! जो भी आता है, स्वार्थ के घोड़े पर सवार होकर आता है। मित्र को फोन करो तो वह यही पूछता है, आज कैसे याद किया ? क्या बिना काम के किसी को याद नहीं किया जा सकता ? परिचितों के फोन आने पर पहले वे बच्चों और भाभीजी के हाल-चाल पूछते हैं।

फिर धीमे से अपना कोई काम बता देते हैं। पड़ोस के शुक्लाजी, हमसे इसलिए मधुर संबंध बनाए हुए हैं ताकि हमारे फोन और वाहन का लाभ ले सकें। इसीलिए गाहे-बगाहे खीर, सैवयाँ और पकोड़े भेजते रहते हैं और कॉलोनीभर में डंका पीटते रहते हैं कि मेहता जी से हमारे चौके-चूल्हे के संबंध हैं।

इस पृष्ठभूमि के चलते मैं उत्सुक था जानने के लिए कि आखिर वे मुझसे मिलना क्यों चाहते हैं ? भय था कि कहीं कुछ ऐसा न कह या माँग बैठे कि मैं मुश्किल में पड़ जाऊँ। मुझे, अपनी कथित 'छवि' की चिंता थी। इससे तो बेहतर था मैं उस दिन उन्हें फोन पर ही टाल देता।

एक दिन वे सचमुच आ धमके, सीधी-साधी पोषाक में। बाल कुछ उलझे-से, पाँव में चप्पल। दाढ़ी बढ़ी हुई। परेशान-से। फोन करके आने को कहा था, पर बिना फोन किए ही आ गए। अच्छा नहीं लगा। मैं कुछ कहता, इससे पहले ही उन्होंने कहा ''क्षमा करें, फोन किए बगैर आ गया। दरअसल, मेरे यहाँ फोन की सुविधा नहीं है। उस दिन भी मैंने पब्लिक बूथ से फोन किया था। सोचा, चलता हूँ, मिल जाएँगे तो ठीक है, वर्ना अगले दिन कोशिश करूँगा।'' पोषाक और फोन न होने की जानकारी से मुझे उनकी आर्थिक स्थिति का आभास होने लगा। जरूर मामला पैसे-कौड़ी का होगा। मैं और सावधान हो गया। मन-ही-मन दो-एक बहाने गढ़ लिए। मैंने उन्हें बैठाया। वे कुछ देर इधर-उधर की बातें करते रहे। यह भी कि मेरा लिखा उन्हें बहुत पसंद है। उन्होंने मेरी तीन-चार कृतियों के नाम भी गिना दिए। लगाा, अब वह बिंदु/मोड़ आ गया है जहाँ प्रशंसा का पुल बाँधते हुए वे मूल मुद्दे पर आ जाएँगे। यह तो जानते ही होंगे कि तारीफ किसे बुरी लगती है। बल्कि कुछ लोगों की तो यह कमजोरी होती है, मस्का मार के आप उन्हें चने के झाड़ पर चढ़ा सकते हैं। हर क्षण मेरी उत्सुकता, आशंका और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। पर वे निस्पृह भाव से बोले चले जा रहे थे। कुछ देर के लिए रूक गए। फिर बड़ी विनम्रता से बोलेः ''मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ, यदि आप अन्यथा न लें।''

मेरे हृदय की धड़कन एकाएक तेज हो गई। वह क्षण आ गया, जिस का भय था। मैं कुछ कहता उसके पहले ही उन्होंने कहा, ''सर, मैंने सुना है, आपके बेटे की किडनी खराब हो गई है और ईलाज के लिए आपने उसे चैन्नई भेजा हुआ है।''

'अच्छा तो जनाब गुर्दे के सौदागर हैं ! जानते होंगे कि इस धंधे में अच्छी कमाई है। खुद देंगे या किसी से दिलवाकर दलाली वसूलेंगे ? मेरे अंदर से आवाज आई जिसे बाहर नहीं सुना गया। लेकिन इन्हें खबर कैसे हुई ? मैंने यह बात अभी तक लगभग गुप्त रखी हुई थी। दो-चार नजदीकी रिश्तेदारों के अतिरिक्त किसी को बताया नहीं था। शायद उन्हीं में से किसी ने बताया हो। दरअसल, गुर्दे में दोष का पता कुछ दिनों पहले ही चला था। डॉक्टरों को उम्मीद थी कि शायद उपचार से ठीक हो जाए, वर्ना गुर्दा प्रत्यारोपित करना पड़ेगा। इसीलिए बेटे को चैन्नई भेजा हुआ है। मुझे यूँ हतप्रभ और दुःखी देख वे बोले, ''ईश्वर करे आपका बेटा ठीक हो जाए। लेकिन यदि गुर्दे की जरूरत पड़े और मेरे गुर्दे से मैच कर जाए तो मैं हाजिर हूँ। मैं अभी पचास का भी नहीं हूँ। देख रहे हैं, हट्‌टा-कट्‌टा हूँ। सौ-फी-सदी फिट। पिछले बरस बेटे की मौत का सदमा न पहुँचा होता तो मेरी आयु का अनुमान नहीं लगा सकते थे। कुछ क्षणों के लिए खामोश हो गए। फिर लरजते शब्दों में कहा - मेरे बेटे को भी यही रोग था, मगर उसका पता देर से चला। गुर्दा देने के लिए मैं मुम्बई पहुँच पाता, उसके पहले ही उसने दम तोड़ दिया था। उसकी टीस अभी तक बनी हुई है। शूल की तरह चुभती है। मेरे अंदर रह गया गुर्दा मुझे चैन से जीने नहीं देता। असह्य पीड़ा और अपराध-बोध से भर देता है। चाहता हूँ, ऐसा हादसा आपके साथ न हो। यदि आपके बेटे को किडनी दे सका तो समझूँगा अपने बेटे को दे दी। बेटे को किडनी देने की अधूरी आस पूरी हो जाएगी। भारी बोझ से मुक्ति मिलेगी मुझे। जो सुख मिलेगा, उसकी कल्पना कोई दूसरा नहीं कर सकता। आशा है, आप मेरी प्रार्थना पर गौर करेंगे।'' कहते हुए वे द्रवित हो आए। लगा, दर्द का कोई गोला कंठ में आकर अटक गया है।

बेआवाज तमाचे ने सोच की पूरी श्रृंखला को छिन्न-भिन्न कर दिया। उनका व्यक्तित्व मेरी चेतना में फैलने लगा। लगा, मैं बुरी तरह सिकुड़ता जा रहा हूँ। देर तक बुत बना बैठा रहा। शब्द जैसे मुँह में जम गए थे। सन्नाटे की चीख को शायद उन्होंने सुन लिया। कहा, ''सर, कुछ गलत कह दिया हो तो माफ कर दें !''

मैं उन्हें कैसे बताता कि गलती कहाँ हुई है।

81, बैराठी कालोनी नं. 2, इन्दौर-452014 (म.प्र.)
मो.नं. 098938-10050

राजीव कुमार त्रिगर्ती की कविताएँ

तुम बचाए रखना

तुम बचाए रखना
एक दन्तुरित मुस्कान
कजरारी आँखों की कटारी नज़र
घनेरी लटों का रेशमी स्पर्श
तुम बचाए रखना
अपने गालों का कचनारी रंग
अपने ओठों का बिम्बफल
तुम बचाए रखना
मेरे लिए खुद को
तुम बचाए रखना अपने दिल में
मेरे लिए वे धड़कनें
जो नितान्त तुम्हारी हों
मुझे महसूस करना
उन धड़कनों के आस-पास
मैं बचा लूंगा
तमाम झंझावातों से भी
स्वयं को तुम्हारे लिए।

तुमसे लगाई उम्मीदों पर स्पष्टीकरण

तुमसे लगाई मेरी कोई उम्मीद
पूरी नहीं होती
फिर भी चाहता हूँ
लगाना तुमसे उम्मीद
मेरी उम्मीदों में ही सही
तुम मेरे पास तो होती हो
मेरे हंसने पर हंसती
मेरे बोलने पर सुनती
मेरे स्पर्श पर सिहरती
मेरे जी भर देखने पर निखरती
मेरी हस साँस के लिए
बन जाती सुगन्धित केसर,

उम्मीदों की कितनी जरूरत है
जीने के लिए
तुम बखूबी समझती हो
इसलिए जिन्दा हो उम्मीदों में
जिन्दा हैं मेरी उम्मीदें तुमसे
जैसे तुम मुझसे मैं तुमसे
मैं तुमसे तुम मुझसे।

अपने-अपने वक्त

यह वक्त तुम्हारा
यादों में डूबने का है
यह वक्त मेरा
तुम पर लिखने का है
यह वक्त तुम्हारा योग का है
मेरे लिए भटकने का है
जहरीले व हिंसक जन्तुओं वाले
कंटीले-पथरीले
तमाम जंगल, तमाम बीहड़
पार करने का है
ताकि पहुँच सकूं तुम तक
क्या करूं मेरी मजबूरी है
आदत है मेरी तुम पर लिखना
जिस तरह तुम्हारी आदत है
तुम पर लिखने के वक्त भी
मुझे याद न करना

सन्देश की मृत्यु पर वक्तव्य

नववर्ष पर
एक छोटा सा सन्देश भेज दूँ
सोचता हूँ
पर नहीं भेज पाता
नहीं जुगाड़ पाता हूँ इतना साहस
मैं अपने चक्रवाती समुद्र में
तुम्हारी कश्ती की कल्पना भी नहीं कर सकता
मैं दावानल के पास
नहीं चाहता तुम्हारी उड़ान
कौन कहता है मैं सोच नहीं सकता
मैं कल्पना नहीं कर सकता
सोच ही तो रहा हूँ
कल्पना ही तो कर रहा हूँ
तुम्हारे भले की
हाँ यह अलग बात है
मैं सोच भी नहीं सकता
कल्पना भी नहीं कर सकता
अपने भले की
मैं अपना सन्देश गाड़ लेता हूँ
अपने भीतर सदा-सदा के लिए।

और चाहिए भी क्या

तुम मेरी भेजी शुभकामनाओं को
स्वीकारो न स्वीकारो
तुम पलटकर कोई उत्तर दो
या न दो मेरी शुभकामनाओं का
कल को मैं उन संदेशों की
आवश्यकता न समझता हुआ
तुम्हें कोई संदेश भेजूं
या न भेजूं
मेरे भीतर बनी ही रहेगी
तुम्हारे शुभ की कामना
हर कीमत पर
तुम्हारे शुभ के अलावा
मुझे चाहिए भी क्या भला।

गांव लघू, डाकघर गांधीग्राम
वाया बैजनाथ जिला काँगड़ा (हि.प्र.) पिन-1761
मो.94181-93024

अशोक गीते के दो गीत

रिश्ते हुए सब

खिड़की पर आके,
सूरज ये झांके।।
चिड़ियों का गाना,
पेड़ों पर आना।।
किरणें बनातीं,
कितने बहाना।।
फूलों से लद गई,
पेड़ों की शाखें।।
बोझिल-सी पलकें,
बिखरी-सी अलकें।।
आँखों की कोरों,
मोती-से छलकें।।
रिश्ते हुए सब,
निंबू की फांकें।।
पीले उजाले,
डेरे हैं डाले।।
मन ने हमारे,
अँधेरे हैं पाले।।
गूंगे बने हम,
लगाते हैं हाँके।।

मेरे सिरहाने

लोभ द्वेष के काले नाग,
फन फैलाये सिरहाने सब।।
अर्थ रचित ये,
खेल हैं सारे।
जिनमें लाखों,
वारे-न्यारे।
धृतराष्ट्र से अन्धे बन,
रिश्तों से अनजाने सब।।
रचे चक्रव्यूह,
स्वारथ हेतु।
सिर्फ बालू के,
है सब सेतू।
मलहम लगाना दूर रहा।
देने लगते ताने सब।।
सद्गुण सबको,
रास न आये।
पैसा पाते,
मन बौराये।
थोड़े में ही रहना सीखो,
कहते आये सयाने सब।।

194 सांई सदन, रामनगर
खण्डवा - 450001

किशोर काबरा की दो ग़ज़लें

आदमी

जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी
दौड़ते ही दौड़ते दम तोड़ता है आदमी।

आँख गीली, होंठ ठण्डे और दिल में आँधियाँ,
तीन मौसम एक ही संग ओढ़ता है आदमी।

एक रोटी, दो लँगोटी, तीन गज़ कच्ची जमीन,
तीन चीजें जिन्दगी में जोड़ता है आदमी।

सुबह पलना, शाम अरथी और खटिया दोपहर,
तीन लकड़ी चार दिन में तोड़ता है आदमी।

है यहाँ विश्वास कितना आदमी का मौत पर,
मौत के हाथों सभी कुछ छोड़ता है आदमी।

चंदन हो गया हूँ

घिस गया इतना कि चंदन हो गया हूँ।
झुक गया इतना कि वंदन हो गया हूँ।

छू लिया मैंने तो पारस हो गए तुम,
छू लिया तुमने तो कुंदन हो गया हूँ।

अर्थ, लय, तुक, तान-सारे व्यर्थ हैं अब,
गीत गलकर मात्र गुंजन हो गया हूँ।

आदिकवि की पीर ने इतना रुलाया,
क्रौंच मिटकर करुण क्रंदन हो गया हूँ।

चार तिनकों से बने इस घोंसले में-
मुक्ति इतनी है कि बंधन हो गया हूँ।

आँख में अंजन लगा कुछ इस तरह से,
खामियों के बीच खंजन हो गया हूँ।

बाँसुरी में छंद को इतना पिरोया,
नंद था, अब नंदनंदन हो गया हूँ।

2, नवजीवन प्रेस कॉलोनी, गुजरात विद्यापीठ के पीछे
अहमदाबाद-380014 मो.9352025511

कहानी

!! राग विदाई !!

जीवनसिंह ठाकुर

> उस दिन से मेरे गर्व का एक बड़ा हिस्सा 'गर्व महल' के पहले ही ढह गया था। ओह, बड़ी बुरी बात है, उल्टी लटकी चमगादड़ों ने अफसोस से कहा। मैंने दो-तीन लम्बी सांसे ली... क्या बताऊँ बहना ! रोज कोई न कोई झंडा लिए लोग आते और यहाँ जड़े हुए चित्रों में से एक निकाल कर ले जाते। झूमर ले गये। तर्क यह था कि इसका उजास हमारे महापुरूषों पर पड़ा था।

मेरे साथ गर्व करने के कई कारण थे। गर्व के कई दृष्टांत मेरे साथ थे। पूरी परंपरा में मैं नहाया हुआ था और गर्व के समन्दर में ख्याति की हवाओं की दुनिया में तैरता रहता था। सभी मुझे मेरे अपने लगते थे। मैं इन्हीं की परंपरा का इन्हीं का वंशज मानता रहा। इन्हीं में जीता रहा हूँ, शायद इन्हीं में मर भी जाऊँ ?

गर्व का महल समय के थपेड़ों में धूप, ठण्ड में बारिश के मौसम में टूटने लगा था। तमाम मौसम अपनी छाप गर्व महल' पर छोड़ते जा रहे थे। गर्व महल की ईंटों से चूने और सिमेंट ने तलाक लेना शुरू कर दिया। ईंटें अकेली रह गई और चूना, सीमेंट, नीचे जमीन पर पड़े अपने किसी जमीन की खोज में थे। गर्व का महल जिस पर सभ्यता की पुताई थी, संस्कृति की चमक थी। महापुरूषों के झूमर झूल रहे थे। बड़ी-बड़ी शौर्य की स्वर्ण जड़ित तस्वीरें थी। बड़ी-बड़ी रचनाओं, ग्रंथों के रत्न जड़े थे। अवतारों के मोतियों की लड़ियाँ लटकी हुई थी। जो भी आता वह देख कर, झूम उठता था। वह 'गर्व महल' से गर्व का साफा बांधे इठलाता निकलता था। वाकई क्या बताऊँ, वे बड़े प्यारे - खूबसूरत दिन थे। सुकून भरी रातें थी। वो समय ही अलग था। 'गर्व महल' ने समय को देखा, समय की धार देखी, हमलावरों की करतूतें देखी, देशी-विदेशी सत्ता नायकों को देखा। तमाम अच्छे और बुरे दिन देखे थे। गर्वमहल के पास विषद अनुभवों का खजाना था। जो भी आता अनुभवों की जलराशी से अपने पात्र में अनुभवों का जल ले जाता। यह जल अहसास भरी तृप्ति सी देता। 'गर्व-महल' हर किसी का चहेता रहा है।'

मैं हमेशा यहाँ आता रहा हूँ। यहाँ आकर मेरे तमाम दुख-दर्द, तिरस्कार, अपमान, अभाव, तनाव तिरोहित हो जाते और मैं पुर सुकून से भरा बड़ी देर तक अहसासों की जीवनदायी हवाओं में बड़ी देर तक बैठा रहता। फिर आहिस्ते से उठता, वहाँ कुछ गहरी सांसे लेता और वहाँ से चल देता।

अचानक जैसे मौसम बदल गया। पता नहीं क्या हुआ जैसे भरपुर लहलहाती फसलें पक कर खुशियों की बहारों में तेज ओले गिरने लगे और पूरे खेत सफेद चादर में ढक जाये। बस ऐसा ही था कुछ-कुछ। अचानक 'गर्व महल' से तमाम गर्व, परम्पराएँ, अवतारों और महापुरूषों के अपहरण होने लगे। वे कहाँ गये। कैसे गये। कौन ले गया, पता ही नहीं चलता था। शिकायतें दर्ज कराई कि हमारे गर्व का हिस्सा कोई ले गया है। हमारे अवतारों में से कोई उठा ले गया है, हमें हमारा महापुरूष यहाँ दिखाई नहीं दे रहा। प्रारंभ में लोग परेशान हुए। दौड़ भाग से कोना-कोना, दालान, सड़के गूंज उठी। लेकिन खोज बीन का तूफान उठा था वह जैसे उठा था वैसे ही आहिस्ते-आहिस्ते बैठ गया।

'गर्वमहल' सूना था। सूना हो गया। वहाँ भरपूर सन्नाटा स्याह चादर ओढ़े आ बैठा था। सांय-सांय करती आवाजें वहाँ से आने लगी थी।

इसी सांय-सांय के बीच गर्व महल की ईंटें रोज कोई न कोई उठा ले जाता। दीवारों में से निकाल लेता। नींव से कभी ईंट, कोई पत्थर, कोई टुकड़ा लिये जाते। जब कोई रोकता तो कहते ये 'स्मृति' की निशानी है, गर्व महल की पवित्र मूरत है, यह हमारे घर के 'पूजा घर' में स्थापित होगी। निशानियां नींव से, दीवारों से लगातार जा रही थी। लोग पवित्र भाव से, गर्व से उफनते हुए ले जा रहे थे। गर्व कहीं भी थम नहीं रहा था।

'गर्व महल' से अब दरवाजे, खिड़कियाँ, रोशनदान ले जाने लगे थे। वे कहते कि ये परंपरा के प्रवेश द्वार है, खिड़कियाँ पवित्र पवन की इठलाती खुशियां है। हम इन्हें स्थापित करेंगे ईंटे लेजाई जा रही थी। दरवाजे-खिड़कियाँ जा रही थी। झूमर, चित्र, फूलदान, तश्तरियाँ, गलीचे, गाव-तकिये, सब जा रहे थे। लेजाने वाले उस वक्त गर्व-घमंड, जोश से भरे कुछ अजीब से जय कारे लगाते हुए जाते, कई-कई अनजानी ध्वजाएँ लहराते आते और कोई न कोई वस्तु लेकर ही जाते।

गर्व महल खाली हो गया। लेकिन उसकी ईटें रोज कम हो रही थी। नींव के पत्थर, दीवारों की ईंटे कम होती गई, कम होती संख्या और कमजोर नींव के कंधे छत और दीवार का बोझ कब तक उठाते एक रात एक दीवार धराशाई हो गई, उससे बने असंतुलन से छत झुकी छत झुकी तो शेष दीवारों ने दम तोड़ दिया, छत नीचे आकर बिखर गई - गर्व महल ढह गया था। हाँ कुछ खम्भे खड़े रह गये। कुल लोगों के जत्थों ने आकर जो मिला ले लिया, कुछ ने खंभों को प्लास्टर खरोंच लिया। जब तक वहाँ कुछ था ले जाते रहे, जब कुछ नहीं रहा तो क्या ले जाते ?

वहाँ अब खण्डहर रह गया था। क्योंकि उसे उठा कर ले जाया नहीं जा सकता था। अब 'गर्व महल' नहीं रहा, वह खण्डहर था। अब वहाँ कुछ पढ़े लिखे, सजे धजे हाथों में नोट बुक, गले में कैमरे लटकाये लोगों के जत्थे आने लगे थे। पूछा तो पता चला कि वे इतिहास संस्कृति और पुरातत्व के विद्वान और शोधकर्ता है। वे खण्डहरों के इतिहास तथा पुरातत्व सामग्री पर शोध-लेखन करते है। उनका कहना था ''हमें अपनी संस्कृति के बारे में जानना चाहिए, युवा पीढ़ी हमारी खोज को जानेगी, हमारी लिखी किताबों को पढ़ेगी। वह गर्व की परंपरा-संस्कृति-परंपरा को जान कर अपने में गर्व महसूस करेंगे। यहाँ के अवशेष विश्व विद्यालयों के संग्रहालयों तथा सरकार के पुरातत्व संग्रहालयों में रहेगें।'' खोज चलती रही। किताबें छपती रही। 'गर्व महल' पूरी तरह खण्डहर में बदल गया था।

खण्डहर-अब 'गर्वमहल' की विरासत है। खण्डहर में अब चमगादड़ें आने लगी। चमगादड़ों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे बतियाने लगी, बहना ! ऊपर वाला कितना मेहरबान है, नीचे वाले गर्व करने में लगे रहते है, वे हमारे लिए रहने की कितनी महान व्यवस्था करते है।

अब वहाँ चमगादड़ें है। जो उलटी लटकी हुई इस दुनिया को सीधा देखने की कोशिश करती है। मैं वहाँ अक्सर जाता हूँ। 'गर्व महल' के बचे कुछ खम्भों को देखता हूँ, सोचता हूँ, मैं भी उल्टा लटक कर देखूँ तो सही ये दुनिया आखिर दिखती कैसी है' मैं अंदर गया, अंदर तो क्या वहां अब न दरवाजा था न छत, न दीवारें थी। यूं कहें कि खण्डहर में आया। खण्डहर का हिस्सा बन गया। सैकड़ों चमगादड़े बची खुची छत की सलाखों, गर्डरों से लटकी हुई थी। वे चिचियाते हुए इधर-उधर उड़ने लगी। मेरे सर के ठीक ऊपर एक टूटे खंभे पर अटके छत के टुकड़े के सरिये से लटकी हुई चमगादड़ें हंसी-हंसती ही रही वहाँ पूरा का पूरा खण्डहर गूंज उठा था।

कई मिनिट वहाँ हंसी गूंजती रही और आवाजों का दौर चला। आहिस्ते-आहिस्ते हलचल थमी तो चमगादड़ों ने कहा - तुम इन्सान हो सीधे खड़े हो बुद्धि-ताकत से संपन्न हो, तुम सीधे खड़े और बैठकर दुनिया को उल्टी और अस्त-व्यस्त देखते हो, कभी सीधे देखते ही नहीं। तुम्हें चमगादड़ होने में काफी समय लगेगा, चमगादड़ होना आसान नहीं है, बेहद कठिन है। भाई ! तुम जानते हो, यदि दुनिया चमगादड़े हो जाए तो दुनिया सीधी हो जाएगी। तुम इन्सान हो 'गर्व महल' पर शोक में डूबे हो, यादों में टहल रहे हो, खण्डहरों में वो ही आता है जो

अपना सब कुछ खो कर आता है। क्या तुमने अपना कुछ खोया है? अचानक चमगादड़ों की भीड़ में से आवाजें आयी, इसने बहुत कुछ खोया है। चमगादड़ों ने कहा भाई। तुम कुछ बताओ - 'गर्व महल' आखिर था कैसा' क्या था 'लगता है तुम अब निपट अकेले हो। मैंने आश्चर्य से देखा और पूछा, तुम कैसे जानती हो कि मैं एक दम अकेला हूँ' चमगादड़ें बोली अरे हमसे क्यों पूछते हो, जो इस खण्डहर में आता है, यादों में टहलता है, किसी चमगादड़ को उड़ाता, डराता नहीं, आता है, धीमें - धीमें कदमों से चलता है, उसे क्या कहें ? वो तो निपट - निरीह अकेला ही तो है न! खैर छोड़ों,

तुम कहो न तुम्हारे साथ आखिर हुआ क्या है ?

हे चमगादड़ों ! सुनो . . . .

अब क्या कहूँ। कहने को कह सकता कि दीवारें मुझे जानती है ये झूमर, ये चित्र, यहाँ की हर चीजें मुझे जानती है, लेकिन अब गर्व महल में कुछ नहीं बचा, जो गया वो मेरी यादें, मेरे रिश्तों की गर्माहट... और न जाने क्या-क्या ले गया, गर्व महल में अब कुछ नही बचा। हां बहना! चमगादड़ आप हो, चलो यही सही कि कोई तो जीवित है। यहाँ, खैर ...

लेकिन तुम्हें कुछ तो बताना जरूरी है, बताना ही होगा कि ''गर्व महल'' से जो गया वह तुम्हारा भी सब कुछ ले गया। हां मैं वही बता रहा था, बातें ये है, मुझे पूरा ''गर्व महल'' अपना लगता था। अपना पन और रिश्तों से ओतप्रोत। लेकिन अचानक सब बदल गया। न धरती हिली, न तूफान आये न सुनामी आयी। न बम विस्फोट हुए न मिसाइलें गिरी। फिर भी सब नष्ट हो गया। बहनों ! इन सब के बिना भी कुछ बम और मिसाइलें ऐसी होती है जो दिखती नहीं, कहीं रखी हुई नहीं होती, लेकिन कब चल जाती है कब विस्फोट होता है पता ही नहीं चलता और सब कुछ खत्म कर देती है। सब कुछ नष्ट कर सकती है। बड़ी ताकत है बहन इनमें।

गर्व महल में लोग आने लगे, वे महापुरूषों के चित्रों में से एक चित्र ले गये। वे नारे लगा रहे थे। पसीने से तर थे। मैंने पूछा, ये चित्र आप क्यों ले जा रहे हैं' वे तमतमाए चेहरे, फड़फड़ाते होठों और आग्नेय नेत्रों से घूरते हुए बोले, ये चित्र हमारी जाति के महापुरूष का है। हमारा गौरव है, हम अपने गौरव का चित्र अपने जाति समाज की धर्मशाला में स्थापित करेगें, जयंती और बरसी मनाएगें। मैंने कहा, ये तो मेरे भी महापुरूष है, मेरे गौरव और आदरणीय है, वे सुन कर गला फाड़ स्वर में बोले ऐ ऽ ऽ ऽ तू कब से इनका हो गया, तू न हमारी जाती का है न बिरादरी का, जो जहां का है उसे ले जा रहे है। तुझे क्या तकलीफ है '

सच कहूँ . . . .

उस दिन से मेरे गर्व का एक बड़ा हिस्सा 'गर्व महल' के पहले ही ढह गया था। ओह, बड़ी बुरी बात है, उल्टी लटकी चमगादड़ों ने अफसोस से कहा। मैंने दो-तीन लम्बी सांसे ली... क्या बताऊँ बहना ! रोज कोई न कोई झंडा लिए लोग आते और यहाँ जड़े हुए चित्रों में से एक निकाल कर ले जाते। झूमर ले गये। तर्क यह था कि इसका उजास हमारे महापुरूषों पर पड़ा था। प्रकाश का संबंध महापुरूषों से है, इन कालीनों पर कभी वे चले थे कालीन पवित्र है। कालीन छिन्न-छिन्न हो गया। हर कोई, एक न एक टुकड़ा ले गया। यहां की हर चीज पर महापुरूषों, ग्रंथों की छाया था। हर ईंट पर उनकी जातियों का हक बन गया था। गर्वमहल में जो था वे सब उठा ले गये।

चमगादड़ें - खामोश थी। वहाँ उनकी और मेरी सांसों का कोहराम मचा था। हम सांसों की ध्वनियाँ सुन रहे थे। मैंने कहा हे चमगादड़ों ! मुझे सोते जागते अपने उन महापुरूषों के, उन ग्रंथों के, उस साहित्य की महान रचनाओं के सपने आते है। सपनों में वे महापुरूष भी उदास दिखते है। सहमें - सहमें से नज़र आते है। यहाँ कभी ग्रंथों के पृष्ठ, ज्ञान की हवाओं में फड़फड़ाते थे। वे अब लाल, पीले, हरे, गुलाबी, रंगों के रेशमी कपड़ों में लिपटे कांच की पेटियों में बंद है। उन पर हल्दी कुंकु और फूल पड़े रहते है।

शहनाइयाँ, संतूर, सारंगी, तबला, डी.जे. नामक हवेली में है वहाँ सख्त पहरा है। रात बिरात किसी बच्चे को, किसी सीधे सादे इंसान को इनकी हल्की सी ध्वनि सुनाई पड़ती है। सितार, वीणा के तारों पर संगीत की परत जमी है। जिनकी ध्वनियाँ लरजते हुए सुनाई पड़ जाती है। फिर कहीं गुम हो जाती है।

मैं व्यथित हूँ, क्या करें ' बहन, चमगादड़ें जमाना क्या से क्या हो गया। राम किसी के कृष्ण के है बुद्ध, महावीर बांट लिए। महाराणा सांगा, प्रताप को भी ले गये विवेकानंद, जयप्रकाश, राजेंद्र बाब को जाति वाले ले गये, महामना का भी अपहरण हो गया। लोहिया, को लोग ले गये। पृथ्वीराज, छत्रसाल को भी नये झंडे वाले बिदा कर ले गये, सब कहीं न कहीं है। 'गर्वमहल' खाली हो गया था। नानक तुकाराम, नामदेव को भी कहीं ले गये। शिवाजी को भी लोगों ने कहीं रख लिया। अम्बेडकर भी किसी के बना लिए गये।

सच कहूँ, मुझे रानी लक्ष्मीबाई, झलकारी चित्तूर की रानी के ख्याल आते हैं। दुर्गावती, रजिया, चांद बीबी के बारे में सोचता हूँ। उनका किस जाति, किस धर्म ने दावा किया होगा। शहीदों पर दावे है। वे भी सब जा रहे है। 'गर्व महल' सूना हो गया था। सच कहूँ या यूँ कहूँ कि मैं ही कहीं का न रहा। गर्व महल में मेरा कुछ नहीं था। मैंरे लिए कुछ बचा ही नहीं था। हाँ, कुछ लोग आये थे। कह रहे थे, तुम यहाँ क्या झक मार रहे हो, अपने काम की कोई चीज हो तो ले उडो। तुम्हारी बिरादरी का भी यहाँ कुछ तो होगा ही ; फिर जैसे उन्हें याद आया, अरे तुम्हारा यहाँ कुछ हो भी कैसे सकता है?

तुम तो जाति बिरादरी मानते नहीं, देश, संस्कृति, शहीद, वृहत्तर, खूबसूरत समाज की बात करते हो, तुम्हें कौन घांस डालेगा ' तुमने सभी से लड़ाई मोल ले ली है, अरे तुम मरे तो चार कंधे नसीब नहीं होगें। हे चमगादड़ बहनें कहने को बहुत कुछ है, कहना भी चाहता हूँ लेकिन कितना कहूँ ' अब क्या करोगे' चमगादड़ ने कहा, मैंने कहा, करना क्या है कल नगर निगम जाउँगा, वहां कुछ जान पहचान है, अभी से कह दूँ, देखो मेरे, जैसों को चार कंधे तो मिलेगें नहीं, यदि मेरा कुछ हो हुआ जाये तुम ठेले या किसी धक्का गाड़ी में डाल के लिये चलना, जहाँ सभी जाते है। अचानक चमगादड़ों में शोर मचा, शोर बढ़ता ही गया। मैं कुछ देर खड़ा रहा, उन्हें देखता रहा। फिर गर्व महल के खण्डर के बाहर आ गया और एक बड़े पत्थर पर बैठ गया।

यही बड़ा पत्थर है जिस पर अक्सर बैठ जाता हूँ। सूर्यास्त होने का था। शाम उतर रही थी। फिर आहिस्ते-आहिस्ते ढलने लगी। परिसर यानी 'गर्व महल' के आसपास हलचल सी हुई। सोचा अब कोई और किसी जाति-बिरादरी वाले होंगे, खण्हर से गर्व का कोई टुकड़ा ले जाएगें। लेकिन हलचल मामूली निकली, गौर से देखा, प्रेमी जोड़े थे। वे मुस्कुराते हुए खण्डर में दाखिल हो कर डूबते सूरज की फैली लाल और काली रंगत देख रहे थे। चमगादड़ें रात की तैयारी में जुटी थी। और प्रेमी जोड़े आ गये। उनका आना शुरू हो गया। वे यहाँ कितनी शांति, कितनी आजादी महसूस रहे थे। खण्डहर में चमगादड़ें और प्रेमी जोड़ों का आना, कहीं कोई शाश्वत रिश्ता तो नहीं ? शायद हो।

मैं पत्थर - शिला खण्ड से उतर कर अंधेरे में बदलती शाम और रात की शुरूआत में अंधेरे के क्षितिज की तरफ चल दिया। पीछे 'गर्व महल' के खण्डहर से चमगादड़ों की आवाजों में युवा हंसी और ठहाकों का मिश्रण किसी अजाने राग में कुछ कह रहा था या गा रहा था।

422, अलकापुरी, देवास (म.प्र.)-455001
मो. 94240-29724 , फोन- 07272-277171

साहित्य और और पत्रकारिता की संयुक्त उड़ान

'दस्तावेज' का तीसरा दशक

अभिषेक कुमार गौड़

दस्तावेज का तीसरा दशक परितवर्तनों का गवाह रहा है। सदी बदल रही थी, विमर्श बदल रहे थे, अभियक्ति के तरीके बदल रहे थे, अतः दस्तावेज ने भी अपने स्वरूप में कुछ परिवर्तन किए। भूमण्डलीकरण का प्रभाव तेजी से बढ़रहा था। अतः नये-नये विमर्शों का जन्म हुआ, जिससे साहित्य लेखन प्रभावित हो रहा था। इसी क्रम में बहुत से नये लेखकों का उदय हुआ, जिन्होंने अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज करवाई। चूँकि दस्तावेज ने अपनी एक अलग पहचान बना ली थी, अतः बदले हुए संदर्भो में उससे भी सीधे हस्तक्षेप की उम्मीद पाठकों की थी। इन सब बातों का ध्यान में रखकर दस्तावेज के तीसरे दशक को भली-भाँति समझ जा सकता है।

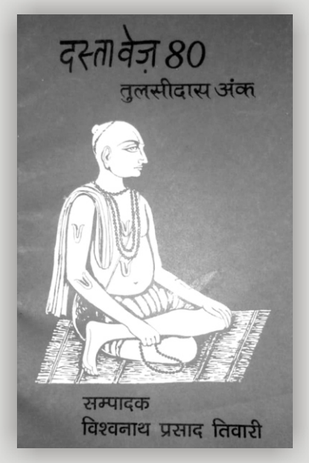

इस दशक की शुरूआत अंक 76 से होती है और इसकी समाप्ति अंक 120 तक मानी जा सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कुल 40 अंक इस दशक में प्रकाशित हुए। प्रथम और द्वितीय दशक की तुलना में इस दशक में संयुक्तांक कम प्रकाशित हुए हैं। अंक 76 की शुरूआत 'समकालीन भारतीय साहित्य' शीर्षक से हुई है। जिसके अंतर्गत 'प्रेम छोड़कर कहाँ शिल्प होता है'' शीर्षक से आनन्दाशंकर राय से हुई बातचीत तथा नवनीता देव सेन का लेख 'खाँटी भारतीय महिला लेखन' शामिल है। लक्ष्मीदन्त व्यास का एक आलेख जिसमें पत्रों के माध्यम से द्विवेदी युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी को समझा गया है।

आधुनिकता की एक महान विशेषता यह थी कि अब का समग्र चिंतन मनुष्य केन्द्रित है। अवतार की अवधारणा व्यक्तित्त्व में बदल गई। आज के समय में साहित्य भी मनुष्य को केन्द्रीयता देता है। दस्तावेज अंक 78 की संपादकीय में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने मुनष्य, साहित्य तथा मूल्यों पर विचार प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि हमारे ज्यादातर ग्रन्थों तथा विद्वानों का मानना है कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है और साहित्य का लक्ष्य मानव कल्याण है। साहित्य के द्वारा ही मूल्यों का जन्म होता है, अतः साहित्य का कर्तव्य है कि वह नैतिकता को बढ़ावा देने वाला हो। संपादक की टिप्पणी है कि -''जो साहित्य पाठक के भीतर करूणा पैदा कर सके, करूणा के सोये भाव को जगा सके, वह बेहतर है, उस साहित्य से जो पाठक में सिर्फ विचार पैदा करके रह जाये।''

इस अंक में 'के. सच्चिदानंदन' की कविताएँ प्रभावित करती हैं। प्रकाश मनु का देवेन्द्र सत्यार्थी पर लिखा संस्मरण इस अंक का उल्लेखनीय लेख है। अंक 79 की संपादकीय में आधुनिकता से उत्पन्न विसंगतियों पर चिंता प्रकट की गई है। साहित्य का काम है कि वह समाज को भविष्य के खतरों के प्रति आगाह करता है। दस्तावेज की कोशिश उदारीकरण के शोर में दबते जा रहे संबंधों, मूल्यों तथा मनुष्य के उपभोक्ता में बदलने की जबरिया कोशिश के प्रति आवाज उठाना है। मुनाफा की संस्कृति से तैयार हुए इस नये मॉडल ने हमारी सभ्यता, संस्कृति तथा संवेदना को लील लिया है। आने वाले समय में उदारीकरण के भयंकर दुष्परिणाम देखने को मिल सकते हैं। विभिन्न मोर्चों पर हमारा निर्वासन होता जा रहा है। संपादक का सुझाव है कि यद्यपि देर हो चुकी है, किन्तु इतनी भी नहीं कि हम अपने को बचा पाने में पूरी तरह से असमर्थ हो चुके हैं।

'देशान्तर' शीर्षक के अंतर्गत प्रगतिशील कवियों नागार्जुन तथा त्रिलोचन पर विचार किया गया है। प्रगतिशील कविता संघर्ष की कविता रही है, किन्तु संघर्ष के अलावा प्रकृति की मौजूदगी भी इन कवियों के यहाँ रही है। कवि ने प्रकृति के द्वारा मनुष्य को जोड़े रखा है। इसी अंक में कृष्णचन्द्रलाल ने गोपाल राय की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'हिन्दी भाषा का विकास' की समीक्षा प्रस्तुत की है। अच्छा लेखक वह है, जो विमर्श को जन्म दे। बहस जितनी होगी, उतना ही परिष्कृत साहित्य सामने आता है। तुलसीदास ऐसे ही लेखक हैं। जिनके लेखन ने बहस की तमाम संभावनाओं को जन्म दिया है। दस्तावेज स्वयं विमर्श केन्द्रित पत्रिका रही है, अतः अपने स्वभाव के अनुसार इसने समय-समय पर विभिन्न मुद्दों पर विशेषांक निकाले हैं। दस्तावेज का अंक 80 तुलसीदास पर केन्द्रित है। तुलसीदास मध्यकाल में भक्तिकाल के प्रमुख कवि हैं। मध्यकाल राजनीतिक-संघर्ष का काल रहा, ऐस समय में साहित्य का दायित्व जितना बड़ा था, उतने ही संकट भी थे। तुलसी के साहित्य में परंपरा और आधुनिकता दोनों तत्त्व है। जहाँ एक ओर समाज की चिंता है, परिवार, संबंध, मूल्य, धर्म, दर्शन आदि को बचाने की चुनौतियाँ तुलसी के सामने थीं, वहीं लोकतंत्र संबंधी तत्त्व भी छिटपुट रूप में तुलसी साहित्य में मौजूद हैं। तुलसीदास ने राम के चरित्र को घर-घर पहुँचा दिया है, आज 21वीं सदी में भी तुलसी और तुलसीदास के साहित्य पर बराबर बहस होती है। समकालीन समय उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है। ऐसे समय में तुलसी कहाँ तक प्रासंगिक हैं ? तुलसी के प्रति बुद्धिजीवी वर्ग की उपेक्षा, उनकी मेधा को खारिज करन के प्रयास आदि सवालों की तलाश प्रस्तुत अंक में हुई है। तुलसी लोक के सबसे बड़े कवि हैं, किन्तु उनकी कविताओं के कुपाठ भी बहुत हुए हैं। इस वजह से उन पर कई आरोप लगते रहे हैं। दस्तावेज का यह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना की परिपाटी को आगे बढ़ाता है। शुक्ल जी ने तुलसी पर बहस न शुरू की होती, तो वह महज धार्मिक कवि और उनका साहित्य धार्मिक चश्मे से ही पढ़ा जाता।

अगले अंक में निरन्तर....

प्रवक्ता (हिन्दी)
जनता इण्टर कॉलेज, झबीरन (सहारनपुर)
मो.नं.-9919973740
ई-मेल- gaur.abhishek2@Gmail.com

शील कौशिक की लघुकथाएँ

जब महिला लघुकथाकारों की बात होती है तो एक नाम सहज ही सामने आ जाता है डॉ.शील कौशिक का। कई कहानी संग्रह, कविता संग्रह सहित कुल १८ कृतियों को रचने के बाद भी उनकी लेखकीय दृष्टि कुछ नया तलाशती दिखाई देती है। यहाँ हम उनकी कुछ लघुकथाओं में मौजूद इसी नवेपन पर विचार करने की कोशिश करेंगे। ''अच्छे मम्मी-पापा'' नामक लघुकथा कुछ ऐसा ही दर्शाती है। मासूम बच्चे अपने दादा-दादी के प्रेम को किस तरह प्रकट करते हैं। वह मर्मस्पर्शी है। 'सही पात्र' नाम लघुकथा एक नवीन सोच को जन्म तो देती ही है, साथ ही पुरुष सत्ता का होना आवश्यक नहीं है, यह भी व्यक्त करती है। चारों बेटों के कंधे चढ़जाने के बाद भी माँ की अर्थी में छोटी बहन का मोह उसे श्मशान तक ले जाता है। जब अन्तिम संस्कार करने का वक्त आता है तब बड़ा भाई अपनी बहन के उस कर्तव्य को याद करता है जो माँ की बीमारी के समय चारों भाइयों को निर्वाह करने ये पर वे सब कार्य छोटी बहन ने पूरे किये। उस वक्त 'सही पात्र' शीर्षक अपनी सार्थकता सिद्ध करता प्रतीत होता है। बुजुर्ग जीवन पर केन्द्रीत लघुकथा 'अवतार' अपने अन्दर कई विषयों को समेटे दिखाई देती है। जहाँ एक ओर बुजुर्ग की उपेक्षा की बात की जा रही है वहीं बेटे-बहू का आर्थिक दृष्टिकोण भी प्रतीत होता है। वहीं इस लघुकथा का तीसरा किन्तु महत्त्वपूर्ण पक्ष भी है जो उस सकारात्मकता को उजागर करता है। जब चौथा बुजुर्ग सबकी बातें सुनने के बाद अपना अनुभव रखता हुआ यह कहता है कि जैसा हम अपने गिरेबान में झांक कर देखें, क्या हमारे माँ-बाप को हमसे कभी कोई शिकायत नहीं थी। 'प्रतिरूप' लघुकथा में बात जब कर्तव्य की होती है तो माता-पिता से श्रेष्ठ कुछ नहीं होता है। किन्तु पिता की अनुपस्थिति में बड़े भाई का होना दीक्षा को पिता की प्रतिरूप दिखाई देता है। जब आपने मायके से जाने का समय होता है और बड़ा भाई भी पिता की ही तरह किन्नू का कट्टा और न जाने क्या-क्या उसके सामान के साथ रखवा देते हो जैसे दीक्षा के पिताजी किया करते थे। 'चुभवन' नामक लघुकथा में आधुनिकता से प्रतिस्पर्धा करती व्यथित पत्नी का सुन्दर चित्रण देखने को मिलता है कि कैसे एक हाई प्रोफाइल स्त्री लोअर मिडिल क्लास दंपत्ति से खुद की तुलना करती हुई। अपने ही पति-प्रेम को तरसती दिखाई देती है। उस वक्त डायमंड के गहनों की चुभन मर्मस्पर्शी लगती है जब बात संवेदनाओं की होती है। तब 'पहचान' नामक लघुकथा सहसा ही अपनी और ध्यानाकर्षित कर लेती है। क्योंकि यह भी इस देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ कर्मयोगी तो बहुत हैं लेकिन उनकी पहचान या तो अर्थ के आधार पर की जाती है या फिर शारीरिक और अन्य विशेषताओं के आधार पर। खैर 'पहचान' में हरिशंकर जी एक ऐसे ही कर्मयोगी हैं। जिन्हें लोग रक्तदानी के नाम से जानते हैं लेकिन हरिशंकर जी का पता ढूंढने वाले व्यक्ति ने उन्हें नई पहचान दी 'ठुंडा' परन्तु हरिशंकर जी के परिचित का दो टूक जवाब बुद्धिजीवी मनुष्य होने का प्रमाण दे गया। जब वे कहते हैं कि वो अपाहिज है: हमने तो कभी ध्यान नहीं दिया कि उनका एक हाथ नहीं है। हमें बस इतना मालूम है कि सब उन्हें भगवान मानते हैं क्योंकि उन्होंने 101 बार रक्तदान करके कई लोगों को जीवन दिया है।

शीलजी की इन लघुकथाओं में उनके अनुभव लोक के वे कई दृश्य मौजूद है जिनमें उनका सृजन-चिन्तन नये भावबोध के साथ शब्दों में ढलता है तथा पाठक को नयी ऊष्मा से सराबोर कर देता है।

चयन : वाणी दवे शर्मा
17/1, नार्थ राजमोहल्ला, इन्दौर म.प्र.

अच्छे मम्मी-पापा

''सारा ! कल शाम को मैं अपने दादा जी के साथ पार्क में गई। वहां कई तरह के नये-नये झूले हैं। सचमुच बहुत मजा आया। ''छवि ने चहकते हुए स्कूल वैन में बैठते हुए उसे बताया।''''अच्छा'' कह कर सारा चुप हो गई।

''सारा तुम्हारे भी तो दादा- दादी हैं, तुम उनके साथ नहीं जाती हो क्या ? तुम उनके बारे में कभी कोई बात नहीं करती हो।'' छवि ने सहज ही पूछा।

''हाँ मेरे भी दादा-दादी हैं, वो मुझे भी पार्क ले जाते थे, बाजार से फल दिलाते थे, मुझे रोजाना वैन तक छोड़ने आते थे और मेरी दादी तो प्रोजेक्ट बनाने में बहुत मदद करती थीं। वो हमें अपने बचपन की बातें कहानी के रूप में सुनाया करती थी। कभी-कभी तो मैं उनकी गोद में ही कहानी सुनते- सुनते ही सो जाया करती थी। उनके हाथ की बनी खीर और आइसक्रीम का तो कोई जबाव ही नहीं। मेरे दादा- दादी तो दुनिया के सबसे अच्छे दादा-दादी हैं। सारा ने गर्व से बताया, पर अगले ही पल वह रूआंसी हो गई।

''क्या वो अब इस दुनिया में नहीं हैं, भगवान के पास चले गए हैं क्या?'' ''नहीं, ऐसा नहीं कहते।'' सारा चीखी। कुछ देर रूक कर वह रोते-रोते बोली, ''मेरे मम्मी-पापा ने उन्हें वृद्धाश्रम में भेज दिया है। मुझे याद है दादा-दादी जाते समय मुझसे गले लग कर बहुत रो रहे थे। छवि तुम बहुत किस्मत वाली हो।'' स्कूल की छुट्टी के बाद आते ही छवि अपने मम्मी-पापा से लिपट गई और कहा, ''मेरे अच्छे मम्मी- पापा।'' उसके मम्मी-पापा ने छवि के गाल पर चुटकी काटी और दोनों हैरानी से एक- दूसरे को देखने लगे।

सही पात्र

माँ स्वर्ग सिधार चुकी थी। चारों बेटे अर्थी को कंधा देकर श्मशान ले गए। उनकी छोटी बहन भी अत्यधिक मोह के कारण जिद करके यहाँ चली आई थी। विधि-विधान के अनुसार बड़े बेटे को माँ को मुखाग्नि देनी थी। वह हाथ में पुआल लेकर आगे बढ़ा। उसके मन में ख्याल आया कि वह स्वयं व उसके अन्य भाई माँ के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह कहाँ कर पाए? पत्नी के कहने पर वह बीमार माँ को असहाय घर में अकेला छोड़ चला गया था। उसने दूर पीछे खड़ी सुबकती अपनी बहन की ओर देखा जिसने माँ को ऐसे समय में सहारा दिया व उनकी सेवा की थी। बिना किसी की परवाह किये वह तेज-तेज कदमों से बहन की ओर बढ़ा और भीगी पलकों से मुखाग्नि के लिए पुआल उसे पकड़ा दी।

अवतार

तीनों बुजुर्ग सुबह अँधेरे ही पार्क में बनी सीमेंट की बैंच पर आ जमते थे, दुखी और बुसे से चेहरे लेकर। रोजाना वे अपने-अपने घरवालों की शिकायतों का पिटारा खोल कर बैठ जाते। आज बैठते ही पहले बुजुर्ग ने कहा, ''कल बहू-बेटे ने मेरी चारपाई गैराज वाले पोर्शन में डाल दी, '' आंसू उनकी आँखों में जम से गए थे। दूसरे बुजुर्ग ने दुःखी मन से बताया, ''मेरा बेटा कहता है-? बाबूजी, जब घर का सारा खर्चा मैं चला रहा हूँ तो अपनी पेंशन क्यों दबा कर बैठे हो?' आखिर कल उसने पेंशन के सारे रूपये छीन लिए।'' तीसरे बुजुर्ग ने अपनी व्यथा व्यक्त की, ''उन्हें भूख लगती है, तभी मुझे खाना मिलता है और जब उन्हें चाय की तलब होती है तब चाय। मैं तो भगवान से बस यही प्रार्थना करता हूँ कि इनकी भूख-प्यास बनी रहे, तभी मेरा गुजारा होगा।''आज पहली बार आया चौथा बुजुर्ग उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था वह बोला, ''हमारे बेटे ने बहू के साथ अमेरिका से यहाँ हमारे पास आना था, उसकी माँ ने बड़े चाव से उनके लिए कई तरह के व्यंजन बनाए, परन्तु वह अपने ससुराल होकर ही लौट गया। हमें बहुत बुरा लगा। बाद में पता चला कि उसके ससुर जी सीरीयस थे। आगे छुट्टी न बढ़ने के कारण उन्हें हमसे मिले बिना ही वापिस लौटना पड़ा अब बताओ इसमें उसकी क्या गलती थी? ''थोड़ा रूक कर वह फिर बोला,'' जरा हम अपने गिरेबान में झांक कर देखें, क्या हमारे माँ-बाप को हमसे कभी कोई शिकायत नहीं थी। दस मिनट तक वहां मौन छाया रहा। सभी अपने-अपने मन को टटोल रहे थे। अंततः चौथे बुजुर्ग के सकारात्मक नजरिये की ऊर्जा उनके चेहरे पर मुस्कान ले आई।

प्रतिरूप

दीक्षा के पिता को स्वर्गवास हुए एक साल हो चला था। उसकी माँ तो जब वह केवल दस वर्ष की थी तब चल बसी थी। जैसे- तैसे पिता ने लालन-पालन कर, अच्छा वर देख कर उसकी शादी की थी। अब वह पूरे साल बाद भाई- भाभी के घर आई थी। भाई- भाभी ने उसकी खूब आवभगत की, फिर भी उसकी सूनी निगाहें घर में लगातार कुछ तलाश रही थीं। उसे अपने पिताजी की जिन्हें वह बाऊजी कहती थी, की रह-रह कर याद आ रही थी। जब भी वह ससुराल वापिस लौटती तो उसे उदास देख कर वो भाई से कहते थे, ''मेरी बेटी के लिए खेत से एक बोरी सिंघाड़े और एक बोरी गोभी भर कर ले आओ ....ये अपने ससुराल ले जाएगी।'' ''क्या बाऊजी, मैंने नहीं ले जाने ये तुम्हारे सिंघाड़े.....गोभी और आलतू-फालतू का सामान, '' मैं तुनक पड़ती और झट से बाऊजी के गले लग जाती थी। भाई के यहाँ आये उसे दो दिन हो गए थे। वह वापिस जाने की तैयारी कर रही थी। भाभी उसकी पसंद की मठ्ठी और लड्डू बना रही थीं, तभी भाई यकायक भतीजे से कहने लगा, ''अरे बेटा ! अपनी बुआ जी के लिए बाग से आये किन्नू का एक कट्टा रख दे, कुछ दिन वो सब भी जूस पी लेंगे।'' एक पल के लिए दीक्षा को लगा कि उसका भाई नहीं जैसे सामने खड़े उसके बाउजी ये सब कह रहे हैं। वह एकाएक दौड़ कर उसी तरह भाई के गले लग गई। भाई ने भी उसे दोगुने वेग से गले लगा लिया।

चुभन

भूपेश के सगे चाचा का हृदयाघात से अचानक स्वर्गवास हो गया था। वे आसाम में रहते थे। दिल्ली से आसाम तक की फ्लाइट भी बुक न हो सकी और न ही तत्काल में वातानुकूलित ट्रेन में जगह मिली। ऐसे में इतनी दूर अपनी गाड़ी से जाना भी सम्भव न था। टिकट चैकर की मदद से बाईचांस जनरल स्लीपर क्लास में दो खाली बर्थ मिल पाई थी। पति- पत्नी दोनों ही यहाँ इस डिब्बे में अपने को असहज और कुंठित महसूस कर रहे थे। रात होने में अभी समय था। उस कम्पार्टमेंट के सभी यात्री नीचे वाली बर्थ पर आमने- सामने बैठे थे। इतनी दूर का लम्बा सफर इन लोगों के बीच कैसे पूरा होगा ? यह सोच-सोच कर वो दोनों परेशान हो रहे थे। कुछ देर बाद शीनम का ध्यान सामने बैठे दम्पति पर अनायास ही चला गया। पत्नी ने पांव में गिल्ट के बिछुए और पाजेब पहनी थी, नाखूनों पर लाल सुर्ख रंग की नेल पालिश, साधारण पर चमकदार साड़ी, गले में नकली मंगलसूत्र व हाथों में रंग- बिरंगी चूड़ियाँ, पीतल की चूड़ियों के साथ पहनी हुई थी। उसकी मांग में खूब सारा सिंदूर भरा था। कंधे पर पर्स थामे वह हाथ में पकड़े मोबाइल पर किसी से हँस- हँस कर बातें कर रही थी। आस- पास के माहौल से बेखबर कुछ देर बाद वह पति की गोद में सिर रख कर अधलेटी हो गई। पति भी थोड़ी देर में उसके कंधे पर झुक कर नींद के लटके लेने लगा। एक असीम संतुष्टि दोनों के चेहरे पर थिरक रही थी। शीनम की नजर उन पर से हटी तो वह भी अपनी ऊपर की बर्थ पर चादर बिछा कर सोने की तैयारी करने लगी। उसे एक बार फिर बड़ी कोफ्त हो रही थी कि आज उसे इन थर्ड क्लास लोगों के बीच सफर करना पड़ रहा है। पड़ी- पड़ी वह कुलबुला रही थी। नींद उसकी आँखों से कोसों दूर थी। उसने अपनी-दृष्टि स्वयं पर केन्द्रित की- कानों में डायमंड के टॉप्स, गले में डायमंड का मंगलसूत्र, हाथों में डायमंड की चूड़ियाँ, कीमती लिबास, ब्रांडेड पर्स

व मोबाइल ....कहाँ मैं और कहाँ वह स्त्री, वह गर्व से भर उठी। उसने एक नजर अपने पति पर डाली। वह अपनी ही दुनिया में लैपटॉप में व्यस्त, बीच- बीच में किसी से मोबाइल पर बिजैनस की बात करता हुआ ....इस समय वह पति का प्यार भरा स्पर्श चाह रही थी। एक पल के लिए उसने नीचे झांका-बर्थ पर सामने बैठे पति-पत्नी का असीम तृप्ति भरा चेहरा व एक दूसरे के कंधे से सटा कंधा बार-बार उसकी आँखों के सामने नाचने लगा। उसने एक बार फिर अपने पति की ओर देखा, उसे फिर से व्यस्त देख वह सोचने लगी- ''समृद्धि की दौड़ में उसके पति का कंधा कब छूट गया उसे पता भी न लगा।'' यकायक उसे अपनी देह पर सारी डायमंड ज्वैलरी चुभने लगी। उसने एक- एक करके अपनी सारी ज्वैलरी उतार कर पर्स में ठूंस दी। कुछ देर बाद ख्यालों में ही पति की गोद में सिर रखे वह गहरी नींद में सो गई।

पहचान

कर्ण सुबह आफिस जाने के लिए घर से बाहर निकला ही था कि एक व्यक्ति हाथ में पर्चा पकड़े बोला, ''भाईसाहब प्लीज ये बता देंगे कि ये महाशय कहाँ रहते हैं, पता तो यहीं का बताया था। ''कर्ण अभी पर्ची पर लिखा नाम- पता पढ़ही रहा था कि वो बोला, ''टुंडा है वो।'' ''टुंडा, क्या मतलब ?'' ''मतलब, अपाहिज है वो, उसका एक हाथ नहीं है। यह भी सुना है कि वो खून- वून देते फिरते हैं।'' ''ओह ! हरिशंकर, मकान नम्बर 320, इन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ, परन्तु तुम इनके बारे में क्या अनाप-शनाप बोल रहे थे कि वो अपाहिज हैं ? हमने तो कभी ध्यान नहीं दिया कि उनका एक हाथ नहीं है। हमें तो बस इतना मालूम है कि सब उन्हें भगवान मानते हैं, भगवान ! जानते हो क्यों ?'' ''नहीं।'' ''उन्होंने 101 बार रक्तदान करके न जाने कितने ही लोगों की जान बचाई है। मैं तो उन्हें रक्तदानी गुरूजी कहता हूँ और वो रक्तदानी गुरू के नाम से ही जाने जाते हैं। और सुनो जरा ! आईंदा उन्हें टुंडा कहने की जुर्रत भी मत करना। समझे ! उनका घर पिछली गली में पार्क के साथ वाला है।

डॉ.शील कौशिक

जन्मस्थान : फरीदाबाद, 19-11-1957 **शिक्षा :** एम.एससी, बी.एड, एल.एलबी, एम.एच.एम (होम्यो) प्रकाशित कृतियाँ- कुल 18 **मौलिक :** छह कविता-संग्रह, दो कहानी-संग्रह, दो लघुकथा-संग्रह, एक आलोचना-ग्रन्थ, एक पंजाबी बाल कहानी-संग्रह, एक हिंदी बाल कहानी-संग्रह **सम्पादित :** मधुकांत की कथायात्रा, सिरसा जनपद की काव्य-सम्पदा, भावुक मन की लघुकथाएं, रूप देवगुण की कहानियों में सामाजिक सन्दर्भ,सिरसा जनपद की लघुकथा सम्पदा। **सम्मान व पुरस्कार :** हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा 'श्रेष्ठ महिला रचनाकार' सम्मान-2014 30 से भी अधिक प्रतिष्ठित अखिल भारतीय, अंतर्राज्यीय व प्रादेशिक साहित्यिक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर सम्मानित। **उपाधि :** राष्ट्रीय राजभाषा संस्थान इलाहाबाद द्वारा हिंदी-दिवस पर सर्वोच्च सम्मानोपाधि 'भारती रत्न' व विक्रमशिला विद्यापीठ भागलपुर (बिहार) द्वारा 'विद्यासागर'। **सम्प्रति :** सेवानिवृत मलेरिया अधिकारी ,स्वास्थ्य विभाग ,हरियाणा अब स्वतंत्र लेखन

सम्पर्क : मेजर हाउस-17, सेक्टर-20,
सिरसा -125055 (हरियाणा)
ईमेल- sheelshakti80@gmail.com
मोबाइल नम्बर -09416847107

स्व.सतीश दुबे की दो लघुकथाएँ

सृजन स्मरण

डॉ.सतीश दुबे
जन्म : 12 नवम्बर 1940
निधन : 24 दिसम्बर 2016

चुनौती

हवा के शांतिपूर्ण क्रियाकलाप में अचानक आई आँधी ने उथलपुल मचा दी। धैर्य से किए गए मुकाबले के बाद हवा स्थिर होकर सुस्ताने लगी। अचानक उसे उम्रदराज दरख्त पर लगे उस पीले-पत्ते का ख्याल आया जिस अपने स्पंदन-स्पर्श से दुलारने में वह सुकून महसूस करती है। उसने सोचा इस निगोड़ी आँधी ने निश्चित ही उसे शाख से टूटने को मजबूर कर दिया होगा। वह सरसर कर दरख्त तक पहुंची। उसे यह जानकर खुशी हुई कि पत्ता शाख पर यथावत था। हवा ने हमेशा की तरह अपने कोमल-स्पंदन से दुलारते हुए कहा- ''मैं तो समझती थी, इस आँधी से तुम मुकाबला नहीं कर पाये होंगे।''

झुका हुआ पत्ता स्पंदन पाकर अपनी यथावत स्थिति में आकर मुस्कुराते हुए बोला-'दीदी, तुम्हारे दुलार से ऊर्जा प्राप्त करने वाला यह पीला पत्ता, वह नहीं है जो मुकाबले में हार जाय। तुम्हें आतंकित करने वाली यह आँधी बार-बार थपेड़ों से मुझ पर हमला करती रही और मैं...।''

''बस आगे कुछ मत कहो...'' थोड़ी देर के लिए स्थिर हवा की सरसराहट भरी आवाज में कम्पन था।

गुनाहगार

पद अवमानना के जुर्म की सजा क्या दी जाय इसलिए सव्यसपध पंच-पैनल की स्थापना की गई थी।

पैनल की पेशी में खड़ी गुनाहगार से पूछा गया-

''क्या तुमने गुनाह किया है?''

वह चुप रही। ''तुम्हारी चुप्पी का अर्थ है तुम गुनाहगार हो तथा तुम्हें गुनाह कबूल है...?'' ''उसने इस आरोप का भी जब कोई जवाब नहीं दिया तो उसके वकील ने झल्लाकर कहा-

''इस प्रकार आप चुप रही तो देश का प्रजातंत्र खतरे में पड़ जाएगा...बोलिए...जवाब दीजिए...।''

जब ज्यादह ही दबाव डाला जाने लगा तो आक्रामक स्वरों में वह बोली- ''क्या बोलूं क्या जवाब दूं...क्या स्पष्ट रूप से यह कहने पर कि सव्यसपध याने सत्ता, व्यवस्था, समाज, पत्रकारिता और धर्म के ये रसूखदार जो आज कपड़े पहनकर न्याय देने का नाटक करने के लिए बैठे हैं, इनकी नंगाई देखकर कल मैंने कह दिया था कि ये तो सब नंगे हैं...नंगे को नंगा कहना जब जुर्म करार दे दिया जाय तो कटघरे में खड़ा क्या तो बोले और क्या जवाब दे...।''

गुनाहगार का प्रत्युत्तर सुनकर हंगामा होने लगा, पैनल के सदस्य खड़े हो गए और न्याय बैठक मुल्तवी कर दी गई।

तितर-बितर हो रहे लोगों में से एक ने दूसरे से पूछा-

''ये गुनाहगार कौन थी...?''

दूसरे ने जवाब दिया - ''अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता...।''

बच्चन जी के गीत की स्वरबद्ध सीडी अमिताभ को भेंट

गत दिनों कवि-गायक तथा उज्जैन संभाग के संयुक्त आयुक्त श्री प्रतीक सोनवलकर ने सदी के महानायक श्री अभिताभ बच्चन को उनके मुम्बई स्थित निवास पर डॉ.हरिवंशराय बच्चन जी की रचना 'साथी अब अंत दिवस आया' की अपने स्वर में स्वरबद्ध सीडी भगवान महाकालेश्वर का चित्र आदि भेंट किये। ज्ञातव्य है कि श्री प्रतीक सोनवलकर के पिता वरिष्ठ कवि स्व.दिनकर सोनवलकर और स्व.हरिवंशराय बच्चन ने अतीत में कई स्थानों पर साथ-साथ काव्य-पाठ किया था। अपनी सहजता और सौम्यता के लिए ख्यात अमिताभ जी को स्व.दिनकर सोनवलकर और अपने बाबूजी की मित्रता का स्मरण हो आया और वह क्षण स्मरणीय हो गया। इस मुलाकात के दौरान श्री प्रतीक सोनवलकर के यशस्वी पुत्र सार्थक सोनवलकर भी साथ थे।

''वनमाली में पाठ प्रसंग''

गत दिनों अरेरा कॉलोनी स्थित वनमाली सृजनपीठ के पाठ प्रसंग आयोजन में कवि-शायर श्री मोहन सागोरिया का काव्यपाठ तथा कहानीकार रेखा कस्तवार की कहानी मुर्गी खाना का पाठ हुआ। प्रसंग की अध्यक्षता कथाकार सतीश जायसवाल ने की। इस अवसर पर टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति कथाकार संतोष चौबे, मुकेश वर्मा, बलराम गुमास्ता, महेन्द्र गगन, शरद जैन, गोविन्द शर्मा ने अपनी प्रतिक्रियाएँ तथा कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने कविता और कहानी का संदर्भ लेते हुए 'पाठ' की सार्थकता पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम में वनमाली सृजनपीठ की बिलासपुर और खंडवा इकाई के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।

- वनमाली सृजनपीठ द्वारा जारी

बस एक बार लोकार्पित

इंदौर। गत दिनों डॉ.रवीन्द्र पहलवान की काव्यकृति 'बस एक बार' का लोकार्पण श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति के शिवाजी भवन में मध्यप्रदेश लेखक संघ इकाई, इन्दौर के तत्वावधान में संपन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री सदाशिव कौतुक ने कहा- इन छोटी-छोटी कविताओं में रचनाकार ने बड़ी-बड़ी सामाजिक विद्रूपताओं को उजागर किया है। अध्यक्षता श्री सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी ने की तथा विशेष अतिथि के रूप में वीणा के संपादक राकेश शर्मा और प्रभु त्रिवेदी ने कविताओं पर सारगर्भित चर्चा की। संचालन

संस्था सचिव संतोष मोहंती ने एवं आभार श्री संदीप राशिनकर ने व्यक्त किया।

प्रस्तुति : प्रभु त्रिवेदी

आभार की एक शाम

पच्चीस अक्टूबर को मुम्बई के इंडियन मर्चेन्ट का भव्य सभागार कला, साहित्य और संस्कृति जगत से जुड़े लोगों से खचाखच भरा था। शैक्षणिक क्षेत्र के लोग भी कम नहीं थे। अवसर था वरिष्ठ लेखिका सूर्यबाला की बाइसवीं पुस्तक ''कौन देस को वासी : वेणु की डायरी'' का लोकार्पण तथा लेखिका की हीरक जयंति। मंच विद्वानों से सजा था। वक्ता थे डॉ.रामजी तिवारी, डॉ.दामोदर खड़से, मनमोहन सरल, विश्वनाथ सचदेव, अलका अग्रवाल, मालती जोशी, सुधा अरोड़ा, वंदना शर्मा तथा स्वयं सूर्यबाला। सूर्यबाला के लगभग छः दशक की लेखन यात्रा के गवाह रहे सभी वक्ताओं के पास बेहद दिलचस्प यादें थी, सूर्यबाला का विस्तृत लेखन था और नई नवेली पुस्तक भी और तमाम विषयों पर जम कर चर्चा हुयी। पुस्तक के अंश पढ़कर सुनाए-चर्चित अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता, नेहा शरद, चित्रा देसाई, सूर्यबाला के पुत्र अभिलाष तथा नातिन अदिती ने। कार्यक्रम का आगाज़ पुत्र अनुराग ने किया तथा आभार व्यक्त किया बेटी दिव्या ने। संचालन का दायित्व चित्रा देसाई के हाथ में रहा। सूर्यबाला ने अपने वक्तव्य में बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही कि उन्होंने अब तक कभी अपनी किसी पुस्तक का लोकार्पण नहीं करवाया। आज भी उनकी गैर जानकारी में उनके परिवार ने। ''आभार की एक शाम'' का आयोजन कर डाला। 'दरअसल' आभारी मैं स्वयं हूँ अपने पाठकों की, वे ही मेरे इष्ट हैं, कहते हुए वे कुछ भावुक हो गयी। विशेष बात यह भी रही कि स्वयं उन्होंने मुम्बई के गंभीर पाठक गंगाशरण सिंह को फूल देकर सम्मानित किया। नई टटकी पुस्तक ''कौन देस को वासी'' की आखिरी पंक्तियों में वे कहती हैं- 'इस पूरे विश्व में हम कहीं रहे, किसी जाति, धर्म, वर्ण के नाम से, क्या फर्क पड़ता है सिवा इसके कि आखिर हम कितने मनुष्य बने रह पाएं हैं। निरन्तर क्षरण होते सामाजिक मूल्यों के इस विषम समय में जीवन, मनुष्यत्व और मानवीय संबंधों के प्रति ऐसे आस्थावान लोगों को अपने बीच पाना हम सबका सौभाग्य है। लगभग तमाम आगंतुक यह कहते पाए गए कि ऐसा भव्य आत्मीय तथा ऊँचे स्तर का आयोजन बहुत कम होता है और जिस पर विशेष बात यह थी कि दूर-दूर से लोग आए थे, जो न केवल साहित्य के क्षेत्र के थे बल्कि वे एक समर्पित पाठक थे। लेखिका के प्रशंसक थे, और इस भव्य अवसर के साक्षी बनना चाहते थे। घर वालों की विनम्रता भी रेखांकित किये जाने योग्य रही। चाय नाश्ते से लेकर भोजन तक तथा समापन के बाद हर व्यक्ति के साथ में प्रतिकात्मक उपहार के बतौर एक सुंदर सी पौधे की सौगात तो मुग्ध कर देने वाली रही।

- निर्मला डोसी, मुम्बई

सिरसा में अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन का आयोजन संपन्न

14 अक्टूबर, 2018 को हरियाणा की साहित्यिक नगरी, सिरसा में हरियाणा प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा संचालित हरियाणा प्रादेशिक लघुकथा मंच के तत्वावधान में तृतीय अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन आयोजित किया गया। चार सत्रों के इस सम्मेलन में देशभर से 100 से भी अधिक प्रतिष्ठित लघुकथाकार, लघुकथा विद्वान, लघुकथा विशेषज्ञ व समीक्षक उपस्थित हुए।

उद्घाटन सत्र में बतौर मुख्य अतिथि विक्रमजीत सिंह एड्व्होकेट ने शिरकत की। इसकी अध्यक्षता प्राचार्य डॉ.प्रेम कम्बोज ने की तथा वरिष्ठ लघुकथाकार डॉ.सतीशराज पुष्करण व भगीरथ परिहार विशेष अतिथि के रूप में कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। लावण्या कौशिक ने सुमधुर सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। हरियाणा प्रादेशिक लघुकथा मंच के मुख्य संयोजक प्रो.रूप देवगुण ने मंच के गठन के उद्देश्य के बारे में विस्तार से बताते हुए सात राज्यों से पधारे अतिथियों का भावभीना स्वागत किया। ज्ञातव्य है कि

हरियाणा लघुकथा मंच, सिरसा की संयोजक डॉ.शील कौशिक ने लघुकथा मंच 2018 की विभिन्न शाखाओं की गतिविधियों का ब्यौरा प्रस्तुत किया। इस वर्ष मंच के तहत दिल्ली व हरियाणा की 15 शाखाओं में 25 गोष्ठियां, कार्यक्रम व प्रतियोगितायें आयोजित हुई। इस सत्र में लघुकथा को प्रतिष्ठित करती बारह पुस्तकों का लोकार्पण हुआ तथा 9 वरिष्ठ कथाकारों, 21 लघुकथाकारों को लघुकथासेवी सम्मान तथा 5 को लघुकथा संवर्द्धन सम्मान प्रदान किये गये। विभिन्न सत्रों में हुए लघुकथा विमर्श में सर्वश्री प्रतापसिंह सोढ़ी (इन्दौर), डॉ.शील कौशिक, जी.डी.चौधरी, रामकुमार आत्रेय, डॉ.रामकुमार घोटड़, डॉ.सतीशराज पुष्करण, भागीरथ परिहार, कमल कपूर, ज्ञानप्रकाश पीयूष, डॉ.नेबसिंह मडेर, डॉ.मुक्ता, श्यामसुंदर अग्रवाल, बलराम अग्रवाल, अमृतलाल मदान, डॉ.राजकुमार निजात, राधेश्याम भारतीय, सुदर्शन रत्नाकर आदि ने भाग लिया। इस अवसर पर लघुकथाकारों द्वारा लघुकथाओं का पाठ भी किया गया। सत्रों का संचालन क्रमशः हरीश सेठी 'झिलमिल', डॉ.शील कौशिक, डॉ.आरती बंसल तथा प्रो. रूप देवगुण ने किया। आभार माना हरियाणा लघुकथा मंच की संयोजिका डॉ.शील कौशिक ने।

लघुकथा विमर्श के दौरान सामने आये कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

लघुकथाकार को चाहिए कि वह लघुकथा को कुछ समय के लिये पकने दे तथा उठते-बैठते गहन चिंतन-मनन करते हुए लघुकथा को धैर्यता के साथ पूर्णता दें। रेशम का कीड़ा 10 दिनों तक शहतूत की पत्तियाँ खाता है तब जाकर वह रेशम का धागा बुनने के लिए तैयार होता है।

- प्रतापसिंह सोढ़ी

आलोचना किसी भी रचना को प्रतिष्ठत करने में अपनी भूमिका निभाती है इसलिए लघुकथाओं की भी समृद्ध और निष्पक्ष आलोचना का विकास होना जरूरी है।

- भागीरथ परिहार

क्या आप जानते हैं कि लघुकथा विधा को स्थापित होने में इतना समय क्यों लगा? इसके लिए हम लघुकथाकार ही जिम्मेदार हैं। लघुकथा लेखकों ने कोई उपकार नहीं किया। लघुकथा अपनी विशिष्टता के कारण स्थापित हुई।

- डॉ.सतीश राज पुष्करण

आज लघुकथा के क्षेत्र में बाढ़सी आयी हुई है। कई लघुकथाओं में तो संवेदना और कलात्मकता का नाम तक नहीं किन्तु चिंता नहीं क्योंकि बाढ़सब गंदगी बहाकर ले जाएगी। जो ठोस और स्तरीय होगा वही बचेगा।

- रामकुमार आत्रेय

लघुकथा बस लघुकथा ही है न तो यह कहानी का छोटा रूप है और न ही चुटकुला।

- कमल कपूर

लघुकथा को एक तरह से मानव जीवन की व्याख्या कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा।

- डॉ.शील कौशिक

मेरे विचार से लघुकथा पाठ लेखक की ओर से कारण बताओ नोटिस की तरह पेश न होकर लघुकथा क्यों सुदृढ़है और क्यों कमजोर, यह पूछने के लिए पढ़ी जाना चाहिए।

- डॉ.बलराम अग्रवाल

आने वाला युग लघुकथाओं का ही होगा बशर्ते कुछ जरूरी मानदण्डो का निष्ठापूर्वक पालन किया जाय।

प्रो.रूप देवगुण

श्रद्धांजलि

वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार श्री हिमांशु जोशी तथा
लोकप्रिय गीतकार श्री चन्द्रसेन 'विराट' के निधन पर विनम्र श्रद्धांजलि

समावर्तन परिवार - उज्जैन, भोपाल, सूरत, इन्दौर, मुम्बई, गुना, कोलकाता

ज्ञातव्य है कि समावर्तन ने श्री हिमांशु जोशी के कृतित्व पर 'मार्च-2018' में तथा चन्द्रसेन विराट के कृतित्व पर 'अगस्त-2016' में एकाग्र संयोजित किया था

यथार्थ की भूमि में संवेदनाओं से अभिसिंचित लघुकथाएँ

प्रतापसिंह सोढ़ी

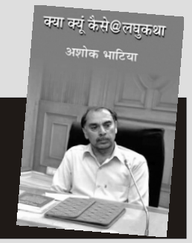

क्या क्यूं कैसे @ लघुकथा
लेखक : डॉ.अशोक भाटिया
प्रकाशक : साहित्य उपक्रम दिल्ली-32
मूल्य रू. 60/- रूपये

स्थूल का सूक्ष्म में रूपान्तरण प्रकृति का अवरोही नहीं आरोही नियम है। यही है वास्तविक उर्द्धगमिता। इसी से चेतना का लघुतम संक्षेपण होता है। यह नियम जिस काल या अंतराल में पूर्णता को प्राप्त होकर जिस किसी भी माध्यम से अभिव्यक्त होता है, वह काल या अन्तराल उन्नयक रचनाकाल बन जाता है, बशर्ते मानवीयता और मानव कल्याण से वह सम्बद्ध एवं उद्देश्यपूर्ण हो।

लघुकथा भी अपनी संकेन्द्रित संवेदना की सान्द्रकता के कारण कहानी अथवा उपन्यास से अलग एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित है। डॉ.अशोक भाटिया निश्चित ही लघुकथा विधा के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं एक गंभीर चिंतक और आलोचना के क्षेत्र में उन्होंने ठोस एवं शोध परक काम किया है और इसी परिप्रेक्ष्य में उनकी संपादित कृतियां - ''पैंसठ हिन्दी लघुकथाएँ'' 'निर्वासित लघुकथाएँ', 'नींव के नायक' एवं 'समकालीन हिन्दी लघुकथा' का साहित्य जगत में पुरजोर स्वागत हुआ है। क्या क्यूँ कैसे @ लघुकथा संग्रह उनका तीसरा लघुकथा संग्रह है। इसके पूर्व उनके दो लघुकथा संग्रह 'जंगल में आदमी, 'अंधेरे में आँख' प्रकाशित हो चुकी हैं। इस संकलन की अधिकांश लघुकथा प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, उनके लघुकथा विशेषांकों और विभिन्न लघुकथा संकलनों में पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं। एक सफल साहित्यकार वही है जो अपने समय के निर्मम यथार्थ को संवेदना के धरातल पर परखने की कसौटी स्वीकार कर लेता है। डॉ.अशोक भाटिया का लघुकथा लेखन विपुल जीवनानुभवों एवं रचनानुभवों का निचोड़ है। उनकी लघुकथाओं की सबसे बड़ी धरोहर है सम्बन्धों की आंतरिक पीड़ा और संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। ये लघुकथाएँ, परम्परा, रुढ़िवादिता एवं सामाजिक विद्रूपता को समाज के सामने ध्वस्त करती है। इन लघुकथाओं के पात्र स्वयं में बोलते हैं क्योंकि कथाकार का निजी अनुभव शब्द दर शब्द इनमें रूपायित हुआ है। ये लघुकथाएँ मात्र कल्पना प्रस्तुति नहीं है अपितु यथार्थ की भूमि में संवेदनाओं से अभिसिंचित है।

कस्बे के दंभी अधिकारी श्रीनिवास बेखौफ सायकल पर सवार हो होली के दिन बाज़ार निकल पड़ते हैं। उन्हें विश्वास था कि कोई उन पर रंग डालने की हिमाकत नहीं कर सकता। चारों तरफ होली का हुड़दंग, रंगो की बौछार, ढोल-ढमाकों का शोर उनके दिलों-दिमाग में पैबस्त हो जाता है। वे रंगहीन हो अपने घर लौट आते हैं। घर पहुँचते ही उनके जेहन में होली का उल्लास भरा वातावरण एवं रंगे-पुते चेहरे उभरने लगते हैं और वे द्वंद्वात्मक स्थिति में बैचेनी महसूस करते हुए स्वयं ही गुलाल से अपना मुँह रंग लेते हैं। समाज से कटकर जीने वालों का यही हश्र होता है 'रंग' कालजयी रचना है जिसका रंग किसी भी काल में फीका नहीं पड़ सकता। 'रिश्ते' लघुकथा एक निष्ठावान कर्तव्यपारायणता बस ड्रायवर स्वरूपसिंह के उज्जवल चरित्र की तर्ज़मानी करती है। स्वरूपसिंह एक ही रूट पर बीस वर्षों से यात्री बस चला रहा था। इतने वर्षों में उस सड़क के यात्रियों एवं परिवेश से उसका गहरा नाता स्थापित हो जाता है। रिटायरमेंट के आखिरी दिन वह विचारों में खोया धीमी गति से बस चला रहा था। यात्री क्षुब्ध थे। बड़े शांत भाव से उसने यात्रियों को बताया कि आज तक मेरी बस का कोई एक्सीडेंट नहीं हुआ है। बड़ी मार्मिक एवं मानव कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है यह लघुकथा। पति-पत्नी के संवादात्मक प्रवाह एवं प्रश्नोत्तर से यही निष्कर्ष निकलता है कि कन्या भ्रूण के लिए पुरुष भी उतना ही जिम्मेदार है जितनी नारी। केवल नारी को ही इस संबंध में दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसी सच को उद्घाटित करती है लघुकथा 'भीतर का सच।' एक मजदूर के सामने अपने परिवार एवं बच्चों के भरण पोषण की समस्या बड़ी अहम रहती है। मजदूरी न मिलने पर वह पोटली में बंधी रोटियां इसलिए घर वापस ले आता है ताकि उसके भूखे बच्चों की क्षुधा शांत हो। भूखे रहकर भी मजदूर का त्याग परिवार की खुशहाली के लिए कारगर सिद्ध होता है। इसी से सच्चा सुख मिलता है। अमीर और गरीब के मध्य बने फासले को दर्शात हुए सामने लघुकथा गरीब के त्याग के रंग बिखेरती है।

'नमस्ते की वापसी' लघुकथा दो पड़ोसियों के मध्य उपजी डाह एवं ईर्ष्या की दास्तान है। पहले दोनों में नमस्ते का आदान-प्रदान होता था लेकिन जब एक ने पुराने मकान को भव्य रूप क्या दे दिया तो नमस्ते बंद हो गई। दूसरे पड़ोसी ने भी एक प्रतिद्वंदी की तरह अपना आलीशान मकान बनाया और दोनों पड़ोसियों में नमस्ते की वापसी हो गई। दरअसल यह लघुकथा भौतिक सुखों के लिए मची होड़ एवं प्रतिद्वंदिता एवं ईर्ष्या के निर्मम सत्य को दर्शाती है।

लघुकथा ''पीढ़ी-दर पीढ़ी'' अभावों के चक्रव्यूह में फंसे भारतीय समाज के ऐसे वर्ग की त्रासदी है जो निर्धनता के कारण अशिक्षित रह जाते हैं। यही पीड़ा पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती है किन्तु अपनी संतान को पढ़ाने के ज़ज्बे का जुनून कम नहीं होता इसी उम्मीद एवं विश्वास को जगाती है यह लघुकथा।

'कपों की कहानी' लघुकथा के बारे में प्रसिद्ध समीक्षक श्री बी.एल.आच्छा ने लिखा है- कपों की कहानी अपने छोटे से कलेवर में हमारे सांस्कृतिक इतिहास के कुरूप को सामने लाती है जिससे मानवीयता के डिटर्जेंट से धोने के बाद भी वर्ण संस्कार का क्रेक जाता नहीं है। लघुकथा की अंतिम पंक्ति है- इधर चाय में उफान आया तो मैंने फौरन आँच धीमी कर दी। समानता का यह संवेदन उफानपरक है और व्यवहार की क्रियाशीलता की आँच उसे धीमा कर देती है।

'तीसरा चित्र' संग्रह की बेहतरीन लघुकथाओं में है जो समाज के तीन वर्गों (अमीर, मध्यम वर्ग एवं गरीब वर्ग) की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का बड़ा सजीव चित्रण करती है चित्रकार का पुत्र तीन चित्र बनाता है - पहला अमीर के बच्चों का है जो स्वस्थ एवं खुशहाल है, दूसरा चित्र मध्यम वर्ग के बच्चे का है जो पिता का हाथ पकड़े हुए सुन्दर वस्त्र पहने हुए है और तीसरा चित्र निर्धन बच्चे का है जो मिट्टी के ढेर पर बैठा बिखरे बालों से अपनी दीनता का आभास दे रहा है। दोनों चित्र पीले रंग से बनाये गये हैं जो समृद्धि के प्रतीक है और तीसरा चित्र काली पेंसिल से जो निर्धनता के कालिख भरे जीवन का प्रतीक है। संग्रह में ऐसी कई लघुकथाएँ हैं जो अपने कथ्य, भाषा एवं शिल्प के कारण जीवन के सत्य से हमें रूबरू कराती है साथ ही हमारे भीतर सोयी हुई चेतना को स्फूर्त एवं जाग्रत करती है। संग्रह की कतिपय लघुकथाओं का अध्ययन करने के बाद एक बात स्पष्ट हो जाती है कि लेखक ने जीवन की हलचल एवं वैविध्य कथानकों के माध्यम से अपने रचना संसार को सजाया है। उनका रचना कौशल विषय वस्तु के अनुकूल स्वयं ही अपना रूप ग्रहण कर लेता है, उसमें उनकी भाषा की कसावट एवं शिल्प के पैनेपन का विशेष योगदान रहता है। उनकी भाषा की सहजता कथा की विषय वस्तु में इस प्रकार घुल मिल जाती है कि पाठक उससे प्राप्त रस में बह जाता है और अंतिम वाक्य तक आकर ही ठहरता है जहाँ लघुकथा एक झटके के साथ झकझोर देती है कि वस्तुतः कथाकार पाठक से क्या कहना चाहता है। क्या, क्यूं कैसे की लघुकथाएँ पूर्ण सत्य को जीती हुई अर्न्तमन की गाथाएँ हैं। आप इनसे जुड़े एक गहरा रिश्ता कायम करें और पात्रों में जीयें, तभी इस संग्रह की सार्थकता है- शुभकामनाएँ।

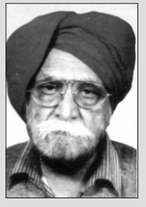

5, सुखशांति नगर, बिचौली हप्सी रोड, इन्दौर-452016
मो. 6263136487

वैश्विक पूंजी की चमक के साथ देसी सर पर फुगाटी का जूता

राजेश सक्सेना

विगत दिनो युवा कथाकार मनीष वैद्य के नवप्रकशित कहानी संग्रह की कहानियों में से गुजरते हुए यह महसूस हुआ कि इनकी कथावस्तु भारतीय ग्राम्य जीवन के हर उस आयाम की पड़ताल करती है जो आजादी के बाद भी मुख्यधारा के केन्द्र में नहीं लाए गए,बल्कि ग्रामीण लोक जीवन में वहाँ की नागरिक सभ्यता ने जो कुछ जीवन मूल्य अपने लिये विकसित किए उनमें निरन्तर एक क्षरण, विकास के आधुनिक तमाशे के जरिये सत्ताओं द्वारा किया जाता रहा जिसके प्रतिफलन में आज वह ग्राम्य संस्कृति हांफती नजर आ रही है ! निश्चय ही यह शुभ संकेत नहीं हैं,मनीष वैद्य इन संकेतों की पहचान करते हुए अपने समय और समाज की जिम्मदारी के प्रति अपनी रचनात्मकता को एक सार्थक आकार देने का प्रयत्न इन कहानियों में करते हुए नजर ही नहीं आते बल्कि सवाल भी करते हैं ! ग्राम्य जीवन से प्रायः हम सभी का वास्ता रहा,हर लेखक के भीतर अपने गाँव की छवियां हैं, मुझे लगता है इसे दो तरह के लेखको में रखा जा सकता है एक वे जिनमें से तो गाँव कभी जाता ही नहीं भले वह महानगर में रहने लगे, उनकी चेतना में गाँव सदैव सांस लेता है इसी कारण उसकी भाषा में,लोक आचरण में, वह बार बार प्रकट होता है उनका गँवईपन उनकी रचनाओ में कलात्मक शिल्प और संघर्ष के साथ विन्यस्त होता है,उनकी रचनाओं में गाँव सीधे सीधे खुलता है। एक दूसरे तरह के भी लेखक हैं जिनके पास भी गाँव की अनेक स्मृतियाँ हैं, वे हमें अपनी रचनाओ के साथ गाँव की यात्रा पर ले जाते हैं यह यात्रा हमारे लिये द्रष्टा भाव उत्पन्न करती है और ग्राम्य जीवन का दृश्यांकन सजीव करती है ! सीधे खुलने और यात्रा करने में अनायास और प्रयास का भेद है ! इस तरह दोनों ही हमें ग्राम्य लोक से जोड़ते हैं किन्तु प्रभाव अलग तरह से छोड़ते हैं,मुझे लगता है मनीष दूसरे तरह के कहानीकार है वे हमें अपनी रचनाओं के जरिये ग्रामीण जीवन की यात्रा पर ले जाते हैं और वर्तमान सन्दर्भो के साथ अतीत के चित्र दिखाते हैं ! यहाँ एक एक कर उनकी कहानियों के बारे में कुछ बातें रख रहा हूँ :-

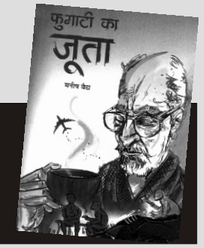

फुगाटी का जूता (कहानी संग्रह)
मनीष वैद्य
बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य : 160/-

(1) खोये हुए लोग :विस्मृति के बहाने वर्तमान और अतीत का लेखा जोखा

जैसे ही इस कहानी के शीर्षक पर नजर जाती है हर पाठक अपने भीतर उन खोए हुए लोगो के बारे में सोचने लगता है जिन्हें वह जानता है और यह नास्टेलिजिया उसे अपने अतीतलोक में ले जाता है,10या 12साल पहले मशहूर शायर निदा फाजली का एक नज्म और दोहा संग्रह आया था ''खोया हुआ सा कुछ'' मुझे लगता है लेखक या साहित्यकार सदा ही विरासत या अतीत की मूल्यवान चीजों के प्रति सजग रहता है और वर्तमान को उनकी याद दिलाते हुए व्यवस्था को आगाह करता रहता है !

आलोच्य कहानी में लेखक ने एक ऐसे पात्र की रचना की है जिसकी चेतना अतीत में ठहर गई है और यह ठहराव एक प्रकार से स्थायित्व ग्रहण कर चुका है नतीजतन उसकी चेतना वर्तमान से तादात्म्य स्थापित नहीं करती यह गति एक मनोरोग की भाँति समाज द्वारा लक्षित की जाती है ।

यह कहानी एक ऐसे उम्रदराज बुजुर्ग की है जिसकी स्मृति में मनुष्य के भीतर बह रहे प्रेम व मानवीय करूणा की अविरल धारा मे आबद्ध वह गाँव है जो उसका है जिसमें वह रहता आया है,किन्तु वही गाँव आधुनिकता की आँच में बुरी तरह झुलस गया है और उसका नहीं है और यह धारणा उसके अवचेतन में इस कदर चिपक गई है कि उसके सारे परिजन,गांववाले मिलकर चिकित्सा,तंत्र मंत्र के बावजूद भी समझा नहीं पाते कि जिस गाँव में वे रह रहे हैं वही उनका गाँव है । दरअसल गामोठ बा के रूप में अस्सी वर्ष का कथानायक है जो एक दिन कहने लगता है कि मुझे मेरे गाँव ले चलो जबकि वह जिस गाँव में रह रहा है वही उसका गाँव है,यह उसकी याददाश्त खोने जैसा लोगो को लगता है पर लेखक ने इसे याददाश्त में आबद्ध होने के भाव में प्रकट किया है जैसे ''विस्मृति में सन्निहित स्मर्घति ''मुझे लगता है सन्निपात शब्द भी इसी तरह लोक चलन में आया होगा खैर,,,, गाँव वाले गामोठ बा के सहारे ही कथाभागवत, मौसम,व्रत उपवास,तीज त्यौहार,शादीब्याह,यज्ञ-मोरत,सगाई आदि करते रहे गाँव के पोस्टमैन की भी सही पते पर चिट्ठीया पहुँचाने में मदद करते रहे पर आज वे स्वयं अपना पता भूल गये हैं यह विडम्बना ही कही जा सकती हैं !

दरअसल गाँव के बदलते स्वरूप जिसमें किसान जमीन को माँ नहीं मानता,गाँव में बढ़ती चमक,भाइयों में लड़ाई झगडे और खूनी संघर्ष जैसी बाते इस बुजुर्ग की आत्मा को बुरी तरह झकझोर देती है फलतः साँप के काटे का जहर उतारने वाले गामोठ बा के गाँव में फैलते जहर का कोई इलाज नहीं कर पाते और अपनी पुरानी स्मृति में बसे गाँव में लौट जाते हैं उनका इस तरह लौटना त्रासद है और समाज के सामने कड़वे प्रश्न खड़े करता है ।

(2) कागज ही कागज में बोलता है

इस कहानी की विषय वस्तु कुछ जानी हुई सी है जिसमें रिश्तों में छल कपट की पुरानी कथा है चाचा की जमीन भतीजे द्वारा हड़पने के लिये चाचा को मृत बताना और सरकारी कागज में असली रिश्ते का कागजी रिश्ते में तब्दील होना बड़ा ही पीड़ादायक किस्सा है ये घटनाएँ प्रायः हमें दिखाई देती हैं इसलिए कथावस्तु सामान्य लगती है। पर इस कहानी में भाषा अच्छी है इसलिए पठनीयता बनी रहती है,कुछ जगह भाषा कि दार्शनिक निर्मिति में वाक्य अपनी सम्वेदना का प्रभाव छोड़ते हैं जब कथा नायक रामबख्श अपने में पुराने समय की याद करते हैं तो अपनी पत्नि कुन्डा वाली के न रहने का जिक्र करते हुए कहता है-

''हर एक के जाने से हम कुछ न कुछ खाली होते हैं इस तरह हम एक दिन खालीपन से भर जाते हैं''

इसी तरह एक वाक्य और देखे

''मौत उन्हे भूल गई थी और जिंदगी से वे हारते जा रहे थे''

इसी तरह कुछ शब्दो का प्रयोग कहानीकार ने किया है जो अपनी गँवई चमक के साथ जुगनू की तरह प्रकट होते और एक सम्मोहक लगते हैं जैसे -- पसीने की बून्दें माथे पर छलकने को वे ''तिरप'' लिखते हैं,''कम्बलकीट,छतर,जबर,ये शब्द कहानी में अच्छे प्रयोग किए हैं !''

(3) घडीसाज : समय की खोज का अलार्म

यह कहानी अपने शीर्षक के प्रभाव में उस पाठक को खींच सकती है जिन्होने भीष्म साहनी का सुप्रसिद्ध नाटक ''हानूष'' पढ़ा है, मैं भी इस प्रभाव के साथ इसमें दाखिल हुआ हालांकि इसकी प्रष्ठभूमि भिन्न है !

यह कहानी एक घड़ीसाज की जिंदगी को बयाँ करने के बहाने उस समय की पड़ताल करती है जहाँ घड़ी में समाविष्ट घड़ीसाज की जिंदगी की खट खट उस टिक टिक की तरह पैबस्त है जिसे गति देने को घडीसाज की खोजी आँखे,सम्मले हुए हाथ और चौकन्ना दिमाग हर घड़ी काम करते हैं !

इस कहानी का घड़ीसाज अपने काम के साथ अपनी बातो को जोड़कर जीवन दर्शन की बात करता है, दरअसल वह घड़ीसुधार के लिये सही समय पर केंद्रित है या अगर कहें कि वह समय को ठीक करता है तो इसकी व्यंजक ध्वनि घड़ी से बाहर विस्तारित होकर एक दर्शन प्रस्तुत करती है ! इस कहानी में घडीसाज की दुकान का जो मार्मिक वर्णन लेखक ने किया है उसमें रखे दो टूटे मुडडे भी हैं और जिनका फोम निकल गया है इसी तरह उस घड़ी साज का अपनी पत्नी के साथ एक चित्र जो बरसों पहले ताजमहल पर खिंचवायी थी वह लटकी थी,अब यहाँ लेखक ने इन दो मुडडे के मार्फत दीवार पर टंगी तस्वीर में बैठे घडीसाज और उसकी पत्नी के उस समय और आज के समय के बिम्ब को रखने की कोशिश की है,इसी तरह उसकी जो वर्किंग टेबल है वह शीशम की है और बेहद चमकदार है, व इस पर अनेक चीजें हैं,पर वह अपने काम की चीज को उठाता है और घड़ी के समय को ठीक करता है,ठीक इसी तरह यह समाज एक चमकदार शीशम की टेबल की तरह है और अनेक वस्तुएँ यहाँ बिखरी हुई हैं,किन्तु समय को ठीक रखने की जरूरी चीज घडीसाज की खोजी आँखो,कुशल हाथ और चौकस दिमाग से ही सम्भव हो सकती है,शायद घडीसाज और उसकी दूकान के द्वारा यही संदेश निकलता है ! हानूश में घडीसाज दूसरी घड़ी न बना सके इसलिए राजसत्ता द्वारा हानूश की आँखे निकलवा दी जाती है और मनीष की कहानी में घड़ियो की मरम्मत का काम बंद हो रहा है क्योंकि नई बाजारवादी व्यवस्था में घड़ी सुधरवाने की जगह नई घड़ी खरीदने का प्रचलन आ गया है ''यूज एंड थ्रो ''!

इस तरह घडीसाज की जरूरत भी खत्म हो गई है !दोनों ही में घडीसाज व्यवस्था द्वारा अपनी त्रासद परिणति के शिकार होते हैं !

(4) फुगाटी का जूता

यदि हम यह कहें कि भारतीय कथा साहित्य में प्रेमचंद युग के यथार्थ से उनके फटे जूते से झांकती हुई वर्तमान समय की बाजारू चमक में वैश्विक पूंजी के खेल में परिश्रम और मूल्य के बीच की खाई को नापती हुई अपने समय से मुठभेड़ करती है ! इस कहानी की भाषा में भारतीय लोक की अनुगूंज के साथ अभावों के वे द्रश्य बड़ी संजीदा बुनावट के साथ संजोए गए हैं पात्रों के संवाद और उनके जीवन का फ्लेश बैक हर वक्त एक प्रवाह के साथ कहानी में बहता है ! कथनों के शिल्प में बिम्बों के कड़वे यथार्थ की समाविष्टी इसे अर्थवत्ता के साथ प्रकट करते हैं,देखें :- पत्थर पर जूते गाँठते हुए चमडे को हथोडी से ठोकता तो लगता कि वह चमडे को नहीं अपने समय को ठोक रहा हो,चमडे को गाँठते हुए लगता कि वह अपने अभावों को गाँठ रहा हो ! एक और जगह के कथन देखें : कालू अपने छोटे छोटे औजारों से बड़ी लड़ाई की तैयारी कर रहा है !

इस तरह के कथनों ने कहानी में श्रम और पूंजी के अन्तर्सम्बन्ध का द्वन्द और बहुराष्टीय कम्पनियों की खतरनाक लूट को उजागर किया है जहाँ एक कम्पनी का टैग लग जाने से उसकी कीमत आसमान छूने लगती है जिस भेद को जानकर नायक उस उत्पाद चमकदार जूते के आघात को अपने मुँह पर तो कभी सिर पर महसूस करता है बल्कि अंततोगत्वा वह पूरे समाज पर आघात करता हुआ लगता है ! इस संग्रह में एक अन्य कहानी ''डेमोकिरिसि है ''जो लोकतंत्र के उस असली रूप को उजागर करती है जहाँ एक आम निरीह इंसान की व्यग्रता और बैचेनी अपने तौर पर बहुत ही सहजता के साथ तंत्र की विद्रूप स्थितियों को सामने लाती है,इस कहानी में जिस तरह शब्दों को मनीष ने रखा है वह उन्हें ग्राम्य जीवन की उस चेतना से जोड़ता है जो कम दिखती है और इसीके परिणाम में ही शीर्षक भी उसी तर्ज पर रखा गया है कुछ शब्द देखें - घुन्ना,पोटली,जबर जँगार औरत,कंदौरा,धानी लुगडा,गिरस्ती,इस तरह के देशज शब्दों के प्रयोग से ही निर्मित डेमोकिरेसी भी सीधे ग्राम व्यवस्था के सबसे अन्तिम छोर पर खड़े व्यक्ति की समस्याओं से जुड़ते हुए अपनी सार्थक परिणति तक जाता है !

इस तरह इस संग्रह की अन्य कहानियाँ भी ग्रामीण जीवन और समाज की यात्रा पर ले जाती हैं !

48-हरिओम विहार उज्जैन
9425108734

समावर्तन की वार्षिक सदस्यता हेतु

- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु रूपये 600/- (व्यक्तिगत सदस्यता) तथा रूपये 1500/- (संस्थागत सदस्यता) हेतु नियत है जो मनिआर्डर से अथवा चेक से भेजे जा सकते हैं। चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखना होगा। चेक और मनिआर्डर डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य, माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 के पते पर भेजना होगा।
- समावर्तन की वार्षिक व्यक्तिगत अथवा संस्थागत सदस्यता का शुल्क डिजिटल माध्यम से भी भुगतान किया जा सकता है। जिसके लिए बैंक डिटेल्स निम्नानुसार है।
  बैंक का नाम - आयडीबीआय, ब्रांच का नाम - फ्रीगंज ब्रांच, उज्जैन, खाता क्रमांक - 0088102000031620, खातेदार का नाम- समावर्तन
  आयएफएससी नं.- आयबीकेएल 0000088
- डिजिटल एवं चेक/मनिआर्डर से भुगतान करने पर तदनुसार पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें।

संपादक, समावर्तन, उज्जैन - संपर्क - 94259-15010

‘अर्थात्’ का अर्थान्वेषण

अजय कुमार पटनायक

अर्थात् (आलोचना)
लेखक : छबिल कुमार मेहेर
प्रकाशक : अतुल्य पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
मूल्य : रू.250/-

युवा आलोचक-समीक्षक छबिल कुमार मेहेर की आठवीं आलोचनात्मक कृति है ‘अर्थात्’। इससे पूर्व उनकी सात आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित-प्रशंसित हो चुकी हैं। बकौल डॉ. खान ‘छबिल कुमार के लेखन की विशेषता है- अपने विषय के प्रति सजगता व यथार्थ की गहरी समझ, तथा उन्हें स्पष्टतया विश्लेषित करने की क्षमता।’ आलोच्य कृति में कुल 11 लेख संकलित हैं। निराला की कालजयी सृष्टि ‘राम की शक्ति-पूजा’ से लेकर ‘तुलनात्मक अध्ययन के परिप्रेक्ष्य’ तक को समेटने वाली यह पुस्तक एक तरह से उनके पूर्व प्रकाशित पुस्तक ‘आलोचना का स्वदेश’ का ही विस्तार है।

पुस्तक का पहला लेख है : ‘निराला और उनकी राम की शक्ति-पूजा’। और जैसा कि हम सब जानते हैं कि प्रत्येक कालजयी साहित्य में चूँकि मानव-जीवन की अनगिनत भावनाएँ भरी रहती हैं, आलोचक के लिए भी उसमें नये-नये अर्थ अन्वेषण की अनन्त सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। रचनाओं की गहराई में उतर कर एक निपुण गोताखोर की भाँति समीक्षक उनमें अमूल्य मणियों को पाठकों के जेहन में डाल देता है। फिर भी उसमें विराम नहीं लगता। द्वार सदा उन्मुक्त रहते हैं। बुद्धिजीवी उसे आगे अधिक खंगाल कर अनछुए असंख्य रत्न उपलब्ध कर सकते हैं। इस दृष्टि से ‘राम की शक्ति-पूजा’ की आत्मा की ओर झाँक कर देखें तो उसमें पौराणिकता या आध्यात्मिकता के चोले को चीर कर निराला की पीड़ा साफ नजर आयेगी। वरना आलोचकों की दृष्टि ‘देवी भागवत्’ या ‘कृतिवासी रामायण’ में ही उलझ कर रह जायगी। भले ही कथा का आधार कोई भी ग्रंथ रहा हो पर उसका कथ्य है- कवि की आत्माभिव्यक्ति। यह निराला की लगभग सभी लम्बी और कालजयी कविता में दृष्टिगत होता है कि किसी-न-किसी बहाने निराला नायक बनकर स्वयं ही अपनी व्यथा-कथा उजागर करते हैं चाहे वह ‘राम की शक्ति पूजा’ हो, ‘तुलसीदास’ अथवा ‘सरोज-स्मृति’; लेकिन हाँ, उनकी यह पीड़ा मात्र वैयक्तिक नहीं कही जायगी। बल्कि समकालीन समाज में हर स्वतन्त्रचेता सृजनशील प्रतिभा को इन प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ता है। नामवर सिंह, विजय बहादुर सिंह सरीखे सशक्त समीक्षकों ने पहले से ही इसे लक्ष्य किया है। रेखा खरे ने तो यहाँ तक कह दिया कि ‘‘राम के परम्परागत सर्वशक्तिमान रूप को जैसे मनोवैज्ञानिक संवेदना के आगे कवि ने ओझल कर दिया है। आधुनिक संवेदना के निकट आगे की जितनी सामर्थ्य इस करूण चित्र में है, उतनी भगवत स्वरूप, अज्ञेय परम्परागत राम के चित्र में नहीं (‘निराला की कविताओं की काव्य-भाषा’, पृ. 120) छबिल कुमार मेहेर जैसे बहुपाठी आलोचक ने इन तमाम उक्तियों को समेट कर निराला के गद्य-पद्य सभी में विद्रोह का बलिष्ठ स्वर सुना है। उसी के आलोक में आपने ‘राम की शक्ति-पूजा’ का पुनः विश्लेषण किया है। आधुनिक हिन्दी काव्य-परम्परा में लीक से हटकर एक और विप्लव के रूपाकार हैं गजानन माधव मुक्तिबोध। कबीर की काव्य परम्परा में निराला के बाद मुक्तिबोध ही ऐसे संघर्षशील, सत्यान्वेषी जुझारू कवि हैं जिन्होंने ‘‘न कहीं हथियार डाले, न घुटने टेके। निरन्तर सृजनशील रहकर जीवन-संघर्ष को आजीवन ठेंगा दिखाते रहे। आजीवन एक गहरे अन्तर्द्वन्द्व में जीते रहे।’’(अर्थात्, पृ.32)

मुक्तिबोध का सृजन-काल दीर्घ नहीं है। 47 वर्ष की आयु में ही उन्हें संसार छोड़ना पड़ा। फिर भी उस दौरान उन्होंने छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद को पचाकर एक स्वतन्त्र नैसर्गिक शैली अपनायी। उन्होंने ज्ञान और संवेदना दोनों को ही सृष्टि के लिए अनिवार्य माना। धर्म, दर्शन, विज्ञान, भूगोल इतिहास, पुराण, राजनीति, अर्थनीति आदि विषय-वैविध्य के कारण पाठक कभी-कभार उलझन में पड़ जाता है। पर गहन जीवन-संपृक्ति एवं आधुनिक विश्व-दृष्टि ने उन्हें पाठकों के निकट पहुँचा दिया। स्वयं आलोचक के शब्दों में ‘‘आधुनिक अभिशप्त युग की जटिलता, व्यक्तित्व का सन्धान और परम अभिव्यक्ति की खोज, चेतना को प्रदीप्त करने वाली अनुभूतियों का अन्तःसंघर्ष के मेल से मुक्तिबोध का काव्य-मानस संवेदित-उद्वेलित होता है।’’ (वही, पृ.38) निराला के गद्य लेखन की ही भाँति मुक्तिबोध की गद्य रचनाओं पर भी छबिल जी ने विचार किया है, जो प्रायः पाठक व आलोचकों के सामने उनके काव्य-वैभव की ओट में छिप जाती है। इनमें मुक्तिबोध ने मध्यम वर्ग और उनकी कुण्ठा, पीड़ा, संघर्ष, संकट का चित्र खींचा। छबिल जी ने अपनी आलोचना में मुक्तिबोध की सामग्रिक कृतियों का विवेचन किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए प्रज्ञा-पुरूष पण्डित विद्यानिवास मिश्र एक उज्ज्वल ज्योतिष्क की भाँति साहित्य-गगन में चमके। सचमुच पण्डित्य उनके जीवन का अंग बन गया था। द्विवेदी जी के बाद भारतीय संस्कृति के ज्ञाता के रूप में निःसंदेह विद्यानिवास जी का नाम लिया जा सकता है। वे न केवल वेद, उपनिषद्, पुराण शास्त्र आदि के ज्ञाता थे, बल्कि लोक-जीवन के अच्छे जानकार भी थे। प्रकृति उन्हें बेहद प्रिय थी। हिमालय के प्रति उनका असीम आकर्षण था। उनके ‘छितवन की छाँह’, ‘कदम्ब की फूली डाल’, ‘मेरे राम का मुकुट भींग रहा है’, ‘तुम चन्दन हम पानी’ जैसे बेजोड़ ग्रंथ उनकी बहुलता का प्रमाण उपस्थापित करते हैं। साहित्य अकादेमी द्वारा दिल्ली में आयोजित एक अनुवाद-कर्मशाला में सात दिन तक उनके ज्ञान-सागर से कई बूँदें चखने का मुझे अवसर मिला था। तभी से छबिल जी से मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि ‘‘उनका ज्ञान अगाध था और सृजन विस्तृत। वे सही अर्थों में संस्कृति पुरूष थे। भारतीय प्रज्ञा का प्रोज्ज्वल एवं प्रामाणिक शलाका पुरूष थे। हमारी आर्ष परम्परा के ज्वलन्त प्रतिमान, विदग्ध पण्डित थे, सांस्कृतिक मेधा के मानक-पुरूष थे, हमारी समृद्ध परम्परा, धरोहर के विरले आख्याता व सहजता के दुर्लभ पर्याय थे।’’ (वही, पृ. 50) सर्जक-आलोचक विजय बहादुर सिंह न किसी मतवाद के घेरे में रहना पसन्द करते हैं और न ही किसी विचार के दायरे में। उनकी सृजन-यात्रा विकासधर्मी रही है। उनके स्रष्टा और समीक्षक व्यक्तित्व को छबिल जी यूँ रेखांकित करते हैं- ‘‘जिजीविषा, संघर्ष और पुरूषार्थ जैसे मूल्यों के बल पर अपनी साहित्यक आलोचना की पर्णकुटी रचने वाले विजय बहादुर सिंह ने देशजता और समकालीनता, स्थानिकता और सार्वभौमिकता, भारतीयता और आधुनिकता, शास्त्र और लोक के जो अनूठे वैचारिक युग्म रचे हैं, उनमें आग्रहों की खूबसूरती के बावजूद दुराग्रहों के अन्धेरे कदापि नहीं।’’(वही, पृ. 60) कवि और आलोचक दोनों ही रूपों में विजय बहादुर जी को पर्याप्त पाठकीय आदृति और लोकप्रियता प्राप्त हुई। माटी-मनस्क कवि के रूप में वे वे जितने आदृत हैं, भारतीयता के प्रबल पक्षधर आलोचक के रूप में भी पहचाने जाते हैं। उनकी काव्य-कृतियों में अनुभव-सत्य साकार होता है तो समीक्षाओं में निष्पक्षता और निर्भीकता।

एक सृजनशील कवि, कथाकार में से उभर कर एक सशक्त आलोचक का सुदृढ़महल खड़ा कर देना रमेश दवे जी के ही वश की बात है। डॉ. छबिल उनके आलोचक को यूँ शब्दायित करते हैं- ‘‘कवि कथाकार रमेश दवे एक स्थितप्रज्ञ आलोचक हैं। वादों-विवादों, खेमेबाजी, नारेबाजी और विचारधारागत पूर्वाग्रहों, पुरस्कार-सम्मान की आकांक्षा से हमेशा दूर रहते आ रहे दवे जी की लेखनी पिछले चार दशकों से निरन्तर गतिमान् रही है।’’(वही, पृ. 65) वास्तव में आलोचक दवे जिस गम्भीरता से विश्व-साहित्य की छानबीन करते हैं, उतनी ही गहराई में पैठ कर हिन्दी के कृति और कृतिकारों का भी विश्लेषण करते हैं। आलोचनाओं में व्यापक अध्ययन, गहरा चिन्तन, सूक्ष्म विवेचन तथा आलोचना के दुर्गम गलियारों में रास्ता निर्माण कर दवे जी ने आने वाले शोधार्थी व समीक्षकों का मार्ग प्रशस्त किया है। दवे जी के इस निराले आलोचक व्यक्तित्व को पहचान कर छबिल जी ने उन्हें पूर्ववर्ती आलोचकों को अतिक्रमित कर देने वाला बताया है। वस्तुतः प्राच्य और पाश्चात्य विचारों में संतुलन बनाये रखना उनकी आलोचना का वैशिष्ट्य है। कवि, कथाकार एवं आलोचक राजेश जोशी धूमिल की जनवादी परंपरा के परवर्ती प्रमुख कवि हैं। जाहिर है कि वे सामाजिक विषमताएँ, विसंगतियाँ, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने में नहीं चूकते, क्योंकि वे समाज के प्रति प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं। उनकी रचनाओं को ‘निरर्थक समय के सार्थक मूल्यान्वेषी स्वर’ कहकर छबिल जी लिखते हैं - ‘‘उनका सारा लेखन सोद्देश्य है और सभी रचनाओं के पीछे एक सुलझी हुई सामाजिक राजनीतिक जीवन-दृष्टि साफ झलकती है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अनेक भयावह प्रतिकूलताओं से पंजा लड़ाते हुए वे कहीं भी निराशा या हताश नहीं दिखते। उनका विश्वास है कि सबसे कमजोर रोशनी भी सघन अंधेरे का दम्भ तोड़ देती है। (वही, पृ. 73) ‘गहरी संवेदना व अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति’ के मार्फत छबिल जी ने सुनीता जैन की सर्जनात्मक उपस्थिति को बेहतर ढंग दर्ज किया है। उनका मानना है कि ‘सतत एवं सार्थक सृजन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य की अप्रतिम उपलब्धि हैं सुनीता जैन।... संगति, सम्पर्क, संस्कार, संकल्प और संवेदन- इन पाँच तत्त्वों से सुनीता के सृजन सरोकार की निर्मिति होती है।’

‘अर्थात्’ की शेष तीन आलोचनाओं में डॉ. मेहेर ने तनिक हटकर राजभाषा हिन्दी, साहित्यानुवाद और तुलनात्मक साहित्य की चर्चा की। हिन्दी को देश के हित में मानकर महात्मा गाँधी ने जो हिन्दी की वकालत की, राजगोपालाचारी सुभाष बोस सरीखे बुद्धिजीवी जननायकों ने उसका पूर्ण-प्राण से समर्थन किया। इस जाति के पिता ने पहली बार इसे ‘राष्ट्रभाषा’ का नाम दिया तो समूचे देश ने इसे ग्रहण किया। अतः छबिल जी का यह कहना कि ‘राष्ट्र की भाषा के रूप में हिन्दी को आज सर्वसम्मति नहीं मिल पाई है’ मुझे ठीक नहीं लगता। बल्कि गणतान्त्रिक पद्धति से संविधान में ‘राजभाषा’ स्वीकृत होने पर भी हिन्दी को अपना हक न मिलने के पीछे राजनैतिक इच्छा शक्ति का अभाव परिलक्षित होता है। इधर यू.पी.ए. सरकार का मैथिली को हिन्दी से पृथक् करके हिन्दी को कमजोर बनाना गंदी राजनीति का ही एक हिस्सा प्रतीत होता है। फिर भी हिन्दी-विरोधी तमाम दलीलें आज निरर्थक साबित होकर बिखर गई हैं। लगभग सारा विश्व आज हिन्दी की ओर मुखातिब है। ऐसे में हिन्दी की दुर्दशा देखकर खेद प्रकट करते हुए भी छबिल जी अन्ततः हिन्दी को लेकर आशावादी नजर आते हैं। ‘साहित्यानुवाद : अनुकृति या अनुसृजन’ में अरस्तू के ‘अनुकरण सिद्धान्त’ का हवाला देकर छबिल जी ने सिद्ध किया है कि यथार्थ का अनुकरण करते हुए लेखक सृजनशील हो सकता है तो अनुवादक एक अन्य भाषा से अनुकरण कर अनुसृजक क्यों नहीं हो सकता ‘ आगे साहित्य की विभिन्न विधाओं में अनुवाद के संदर्भ में आई समस्याओं पर चर्चा करते हुए छबिल जी ने अनुवादकों का मार्गदर्शन किया है। ‘अर्थात्’ की अन्तिम आलोचना में ‘तुलनात्मक साहित्य’ का परिचय देकर उसकी प्रविधि, समस्याएँ और उद्देश्य का जैसा उल्लेख किया गया है, उससे विद्यार्थियों को काफी सहायता मिलेगी। अन्तिम दोनों ही आलोचनाएँ साहित्यिक से अधिक शैक्षिक प्रतीत होती हैं। इससे पुस्तक महत्ता की और बढ़ जाती है। स

तपोवनम्, प्लॉट नं. - 1032/2402
प्रगति नगर, यूनिट टप्प भुवनेश्वर(ओड़िशा)-751003

नई किताबें

‘समावर्तन’ के लिए प्रतिमाह श्रेष्ठ लेखकों की उत्कृष्ट नव-प्रकाशित पुस्तकें प्राप्त होती हैं। इस बार कुछ महत्त्वपूर्ण पुसतकें मिली हैं जो निम्नानुसार है

भाषा विज्ञान/ लेखक : डॉ.जयकुमार जलज / प्रकाशक : आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली / मूल्य रू.750/-

भाषा विज्ञान के गहन अध्येता, चिन्तक, कवि और पूर्व प्राध्यापक-प्राचार्य डॉ.जयकुमार जलज की यह पुस्तक सेक्यूर और ब्लूम फील्ड जैसे विश्वविख्यात भाषा-वैज्ञानिकों की स्मृति को समर्पित है। ब्लूम फील्ड तो वह भाषा वैज्ञानिक है जिसने भारतीय वैयाकरण पाणीनी को अपनी पुस्तक के स्मरण के साथ उनके प्रथम व्याकरण और भाषिक ज्ञान को सम्मान दिया है। जलज जी की यह पुस्तक भाषा विज्ञान के स्वरूप, अवधारणा और ध्वनि से होते हुए अर्थ (सिमेटिक्स), वाक्य और अनेक आयामों का गूढ़विवेचन देते हुए डिस्क्रिटिव भाषा-विज्ञान का महत्व प्रतिपादित करती है। चॉम्सकी, जॉन लायन जैसे भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के रूप और रूपांतर की जिस प्रकार से विवेचना की है, उसे समझने या पढ़ने के पूर्व जलज जी की इस पुस्तक का अध्ययन, अध्यापन और शोध आवश्यक है।

संस्कृत और हिन्दी नाटक-रचना एवं रंगकर्म /लेखक : जयकुमार जलज/ प्रकाशक : आर्यावर्त संस्कृति संस्थान /मूल्य रू.500/-

भरत का नाट्य शास्त्र और भर्तृहरि के लगभग सभी शतक, काव्यशास्त्र, अभिनव गुप्त का नाटककार होना कालिदास, भवभूति, भास, हर्ष, शूद्र आदि के अवदान आदि को लेकर अनेक पुस्तकें रची गई हैं। डॉ.राधावल्लभ त्रिपाठी ने संक्षिप्त नाट्यशास्त्र भी लिखा है। जलज जी की यह पुस्तक इन अर्थों में महत्त्वपूर्ण है कि वे समूची नाट्य परम्परा के साथ अधुनातन रंगकर्मी और नाटक-लेखक, एनएसडी आदि का भी सम्यक अध्ययन और विवेचन प्रस्तुत करते हैं। पुस्तक में बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, दिल्ली से लेकर हिन्दी के नाटक और नाटककारों की जो विस्तृत जानकारी है वह नाट्य कर्म के बदलते स्वरूप और नव नाट्य-लेखन, तकनीक आदि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसलिए यह पुस्तक नाटक के अध्याय को, छात्रों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी है।

साहित्यिक पत्रकारिता का परिदृश्य /संपादक : अरूण तिवारी प्रकाशक : प्रेरणा पब्लिकेशन, भोपाल /मूल्य रू.370/-

अरूण तिवारी वैसे तो इंजीनियर हैं, लेकिन वे साहित्यिक अभिरूचि से संपन्न हैं। ‘प्रेरणा’ नामक पत्रिका के संपादक-संस्थापक हैं। देश के सुप्रसिद्ध साहित्य-सर्जकों एवं साहित्यिक पत्रकारिता में विचार के हस्तक्षेप से पत्रकारिता में नवोन्मेष रचने वाले लगभग 39 साहित्यकारों एवं पत्रकारों का यह संग्रह महत्त्वपूर्ण है। कोलकाता के डॉ.कृष्ण बिहारी मिश्र ने जो काम किया है, उसके बाद सप्रे संग्रहालय, भोपाल का जो योगदान है, उसे देखते हुए भी अरुण तिवारी की यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है और देश के महत्त्वपूर्ण लेखकों के पत्रकारिता संबंधी लेखन को प्रस्तुत करती है जो शोध-संदर्भ में लिए उपयोगी है।

वह पत्रकार लड़की उपन्यास /लेखक : रमेश दवे प्रकाशक : भावना प्रकाशन, दिल्ली/ मूल्य रू.395/-

‘वह पत्रकार लड़की’ रमेश दवे का चौथा उपन्यास है। रमेश दवे अभी तक चार उपन्यास, चार कहानी संग्रह और सौ कहानियों का एक ‘संपूर्ण कहानी’ संग्रह रच चुके हैं। यह उपन्यास एक पत्रकार लड़की के चुनौती भरे साहस की ऐसी कथा है जो अपनी पत्रकारिता का ऐसा क्षेत्र चुनती हे जिसमें जीवन जीने की चुनौती के साथ मृत्यु की चुनौती और आतंक है। वैश्या बनती, बनाई जाती और मजबूर लड़कियाँ, स्त्रियाँ, नक्सलियों और वकीलों को लेकर यह उपन्यास तर्क और संवेदन का संयोजन है।

-संपादक

साहित्य सेवी अनुवादक डॉ रामशंकर द्विवेदी

डॉ रेशमी पांडा मुखर्जी

इतिहास साक्षी है कि अनेक राजा-महाराजाओं, बादशाहों और शाहजादों ने अमरता की अभिलाषा में इस जग को ऐसी इमारतें, मकबरे, प्रशासन और बाग-बगीचे दिए जिनके माध्यम से आज भी वे हमारी स्मृति में बसे हुए हैं। इस धरती पर मानव जाति को सभ्य, सुसंस्कृत और स्मृतियों का उज्जवल इतिहास देने का श्रेय निस्संदेह साहित्य को है। जहां क्षण-क्षण के जीवन को इतिहास की पोथियां तथ्यों और प्रमाण के आधार पर ग्रंथबद्ध करती हैं वहीं साहित्य के पन्नों में जीवन का प्रत्येक पल जीवंतता व आत्मीय सत्य के साथ मौजूद होता है।

भारत की साहित्यिक पूंजी विश्व के महानतम साहित्य के समक्ष अपनी श्रेष्ठता के पैमाने दर्ज कर चुकी है। भारतीय साहित्य की थाती को समृद्ध करने में इस देश की भूमि में पल्लवित व पुष्पित विभिन्न प्रादेषिक भाषाओं के साहित्य-निर्माताओं का अकथनीय योगदान है। प्रत्येक प्रांत में ऐसे रचनाकार, कवि, उपन्यासकार, गद्य-शिल्पियों ने जन्म लिया जिन्होंने अपनी रचनाधर्मिता से प्रस्फुटित कृतियों के माध्यम से भारतीय साहित्य में नए व सशक्त अध्याय जोड़े। बंग भूमि में विकसित बांग्ला साहित्य का देश के साहित्य को नई दिशा व दशा देने में अपना अलग महत्व है। बांग्ला साहित्य ने जहां नवजागरण की तेजस्वी शिखाओं को प्रसारित किया वहीं भाषा व शिल्प की दृष्टि से भी प्रयोगशीलता के नए आयाम जोड़े। बांग्ला साहित्य-शिल्पियों ने देश-विदेश के रचनाकारों पर अपने प्रभाव छोड़े। साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में चरितार्थ करने में बंगीय रचनाकारों की निस्संदेह अद्वितीय भूमिका रही। पाश्चात्य जगत से निरंतर आदान-प्रदान का सिलसिला बंगाल की भूमि को नवजागरण व नवचेतन के आलोक से उर्जस्वित करता रहा। बंगीय रचनाकारों ने स्वयं को समाज के अग्रदूत के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनका साहित्य पश्चिमी जगत का अंधानुकरण कदापि नहीं रहा परंतु पश्चिमी प्रगतिशीलता के परिणामस्वरूप समाज के अंधकूपों को आलोकित करने का बीड़ा उन्होंने अवश्य उठाया।

बंगीय साहित्यकारों ने देश के अन्य प्रांतीय लेखकों व विचारकों को प्रचुर मात्रा में अनुप्रेरित किया। इन रचनाकारों के लेखन-कौशल व विचार-शक्ति ने देश के कोने-कोने में कलमकारों को तर्कसंगत लेखन की राह पर अग्रसर किया। परंतु यह मान्य तथ्य है कि किसी एक प्रादेशिक भाषा की उर्जा व समृद्धि को जब देश के अन्य प्रदेशों तक पहुंचाया जाता है तब इस महत यात्रा को तय करने में एक कड़ी अपनी अहम भूमिका निभाती है। इस कड़ी को अनुवादक के नाम से अभिहीत किया जाता है।

अनुवादक वह जरिया है जो एक साहित्य जगत की थाती को दूसरी साहित्यिक दुनिया तक पहुंचाता है। साहित्यिक अनुवादक में लगन व रचनाशीलता जितनी अधिक होती है उसके कलम से निसृत अनूदित साहित्य उतना ही अधिक सम्प्रेषणीय होता है। साहित्यिक अनुवादक वास्तव में स्वयं भी एक साहित्यकार होता है। उसकी आत्मा में बसा साहित्यकार स्रोत भाषा के साहित्य से तारतम्य स्थापित कर लेता है। तदुपरांत वह उस साहित्य को उसके संपूर्ण गुणों व सौंदर्य के साथ लक्ष्य भाषा में अनूदित करता है। यह अनुवाद एक तपस्या समरूप है क्योंकि किसी भाषा में स्वयं को रमाते समय अनुवादक के व्यक्तित्व व सोच में बड़े परिवर्तन अपेक्षित हैं। वह उस साहित्य को, उस भाषा को, वहां के जीवन को जीने लगता है।

साहित्यिक अनुवादक के उपर्युक्त समस्त गुण बांग्ला साहित्य की विपुल मात्रा में हिंदी में अनुवाद करने वाले अनुवादक रचनाकार डॉ रामशंकर द्विवेदी में मिलते हैं। बांग्ला साहित्य, भाषा, संस्कृति व जीवन को अतुलनीय तन्मयता व एकनिष्ठा से जीया है रामशंकर द्विवेदी जी ने। द्विवेदी जी ने बांग्ला साहित्य का

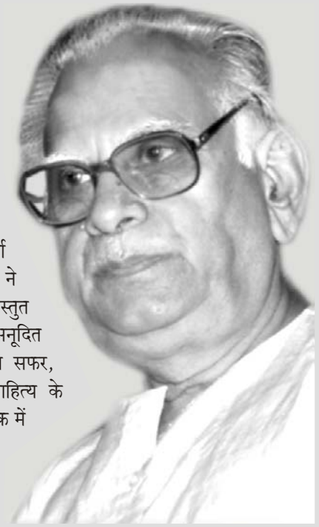

एक महत्वपूर्ण अंश हिंदी के पाठकों व आलोचकों के हाथों सुपुर्द किया। हिंदी जगत के लिए बांग्ला के महत्वपूर्ण रचनाकारों को आपकी कलम ने अपना-सा बना दिया। प्रस्तुत आलेख में द्विवेदी जी द्वारा अनूदित प्रेम बिना शिल्प कहां, अधूरा सफर, अरण्य गाथा तथा वर्तमान साहित्य के सितंबर-अक्तूबर 2000 के अंक में प्रकाशित बांग्ला साहित्यः शताब्दी विशेषांक का विश्लेषण करने का प्रयास किया जा रहा है।

वर्तमान साहित्य का बांग्ला साहित्य विशेषांक

शताब्दी विशेषांक के संयोजक-संपादक के गुरूदायित्व को संभालते हुए द्विवेदी जी ने इस साहित्य-संपदा की विविध विधाओं से हिंदी जगत को परिचित कराया। सिर्फ परिचित कराया कहना कदाचित उनके गहन अध्ययन व आग्रहपूर्वक अनुवाद जगत को सम्पन्न बनाने की जीजिविषा के साथ अन्याय करना होगा। पत्रिका के 'अथातो बांग्ला साहित्य शताब्दी जिज्ञासा...' नामक भूमिका में आपने इस उत्तरदायित्व को संभालने की यात्रा का जिक्र किया है। यह बयान प्रमाणित करता है कि बांग्ला साहित्य में आपकी गहन पैठ व अभिरूचि पर पत्रिका के कर्णधारों का अटूट विश्वास था। से.रा.यात्री जी का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है- 'इधर मैं आपसे मिल नहीं सका, कभी पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन आप मेरी स्मृति में सदा घूमते रहे अपने बांग्ला अनुवादों के कारण। आपने इधर ऐसे बांग्ला लेखकों और उनकी प्रायः ऐसी विधाओं का अनुवाद किया, जिनका अनुवाद प्रायः ढर्रे के अनुवादक करते नहीं हैं, दूसरे वे मेरे भी प्रिय लेखक हैं, विशेषकर विभूतिभूषण बंदोपाध्याय, उनकी डायरी। उनका भ्रमण वृतांत। उक्त पत्रिका में आपने चार निबंधों के द्वारा बांग्ला साहित्य के नाटक, कहानी, उपन्यास और कविता साहित्य के गत एक सौ वर्षों के विकास को रेखांकित किया है। दो निबंधों में बांग्ला के तरूण गल्प लेखकों की मानसिकता का मूल्यांकन किया है। बांग्ला के तीन प्रमुख कथाकारों यथा अन्नदाशंकर राय, आशापूर्णा देवी और विमल कर के साक्षात्कार अनूदित किए गए। सोलह कहानीकारों की सोलह कहानियां दी गईं हैं। रवींद्रनाथ से लेकर कविता सिंह आदि की चुनी हुई कविताओं का अनुवाद दिया गया। अतः कहा जा सकता है कि बांग्ला साहित्य के गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप आप इस अंक को समायोजित कर सके।

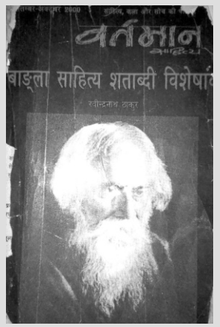

उक्त अंक में आप एक अनुवादक के साथ-साथ एक समालोचक व संपादक की कृति भूमिका में भी पाठकों के समक्ष उभरे हैं। 'बांग्ला कहानी के सौ

वर्ष' नामक एक विस्तृत निबंध आपने लिखा है। यह निबंध किसी भी भाषा के शताब्दी परंत रची साहित्यिक विधा को विश्लेषित करने के लिए प्रेरक सामग्री हो सकता है। इस निबंध में आपने एक सौ वर्षों की अवधि के दौरान बंगभूमि द्वारा अनुस्यूत उन सभी कहानियों को चिन्हित किया है जिनका महत्व बांग्ला साहित्य में दर्ज है। एक सौ वर्ष का समय लंबा समय होता है। उसे मूल्यांकित करने वाले आलोचक की दृष्टि व परखने की क्षमता भी अत्यंत गूढ़व सम्पन्न होनी चाहिए। द्विवेदी जी ने बांग्ला कहानी में फार्म व तकनीक में आए परिवर्तनों व नएपन को आत्मसात करने की कहानीकारों की क्षमता को सम्यक रूप से परखा है। इस अवधि के दौरान बांग्ला कहानी लेखन में विचारों के धरातल व शिल्प के क्षेत्र में हुए प्रत्येक आंदोलन व बदलाव की मंशा को आपने शब्दबद्ध किया है। आप लिखते हैं-'अबंगाली चरित्र और बंगदेश के बाहर की पृष्ठभूमि भी आ गई थी इंदिरा देवी, अनुरूपा देवी अथवा जलधर सेन की कहानियों में। प्रभात कुमार के बाद कहानियों में अनुभूति व अभिज्ञता का क्षेत्र जो बढ़गया था वह समझ में आता है। किंतु कहानी कला की दृष्टि से इन लोगों की रचनाएं प्रभातकुमार की तुलना में हीन हैं।

दूसरी तरफ डिटेक्टिव-गल्प रचना की जो धारा गत शताब्दी के अस्सी-नब्बे के दशक के दस संधिक्षण से चली आ रही थी जब साधारण रूप से लघु कहानी ने ही आधुनिक गल्प का परिणत रूप धारण कर लिया था रवींद्रनाथ के हाथों। पृ-10, वर्तमान साहित्य, सितंबर-अक्तूबर 2000। सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक असमानता व राजनीतिक उथल-पुथल को दर्ज करने वाली कहानियों को आपने उल्लेखनीय घोषित किया है।

'बांग्ला उपन्यासों की शताब्दी व्यापक यात्रा' में द्विवेदी जी ने 1858 में प्यारी चांद मित्र के 'अलालेर घरेर दुलाल' से आरंभ हुई बांग्ला उपन्यास यात्रा के महत्वपूर्ण अंशों को आलोचना के केंद्र में रखा। जाहिर है कि उपन्यास साहित्य को समालोचित करना, वह भी शताब्दी की लंबी अवधि में रचित उपन्यासों का मूल्यांकन करना श्रमसाध्य कर्म है। प्रस्तुत निबंध में आपने इस दायित्व का वहन करते हुए निश्चित रूप से पाठकों को आह्लादित किया है। बांग्ला उपन्यास जगत का क्रमिक विकास कई पड़ावों को पार करते हुए हुआ। आपने इन सभी पड़ावों में उपन्यास लेखन के कथ्य व स्टाइल में आए परिवर्तन का सम्यक अध्ययन किया है। बंकिम चंद्र, रमेशचंद्र दत्त, रवींद्रनाथ ठाकुर, प्रभातकुमार मुखोपाध्याय, भारतचंद्र चट्टोपाध्याय, अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त, बुद्धदेव बसु, प्रबोधकुमार सान्याल के उपन्यासों में चित्रित बंगीय समाज व इन कृतियों का बंगीय बुद्धिवादी व पाठक वर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव को चिन्हित किया है।

'बांग्ला कविता के सौ वर्ष' निबंध में द्विवेदी जी ने बांग्ला कवियों के कविता संकलनों की लंबी सूचियों को सौंम्मलित किया है। निस्संदेह किसी भाषा में रची गई कविताओं का आकलन करते समय चयन प्रक्रिया सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण होती है। कहना न होगा द्विवेदी जी इस कठिन अग्नि परीक्षा में भी सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। कवियों व कविताओं तथा काव्य संकलनों की सूची तैयार करते समय आपने बड़े मननपूर्वक काम किया है। जिन रचनाओं ने बांग्ला पाठकों व उनसे भी आगे बढ़कर देश-विदेश के रचना-शिल्पियों व कविता-प्रेमियों को रसास्वादित किया है उनके प्रति कोई अवहेलना न हो। रवींद्रनाथ, माइकल मधुसूदन दत्त, काजी नजरूल इस्लाम, अरूण मित्र, सुभाष मुखोपाध्याय आदि जगत प्रख्यात कवियों की रचनाधर्मिता का विवेचन किया गया। विशेष बात यह है कि प्रथम विश्वयुद्ध, मार्क्सवादी चेतना का उदय, द्वितीय वि वयुद्ध, भारत विभाजन, आजाद देश की नब्ज को पकड़ने वाली काव्यधाराओं को आपने बड़ी तन्मयता से परखा है। निश्चित रूप से इस प्रकार का गहन विचारपूर्ण निबंध अन्य निबंधकारों व साहित्येतिहास के पृष्ठों को संपन्न करने वाले विचारकों के लिए पथ-प्रदर्शक बनेंगे।

यह मान्य तथ्य है कि रंगमंच व नाट्य साहित्य का सुसमृद्ध भंडार बांग्ला साहित्य का चिर गौरव रहा। द्विवेदी जी ने 'काल के दर्पण में बांग्ला मंच और नाटक' निबंध में बांग्ला नाटक के उद्भव व विकास से लेकर बांग्ला नाट्य साहित्य के मंच पर उभरे हर परिवर्तन को विश्लेषित किया है। व्यापक चिंतन व गहन अध्ययन के फलस्वरूप इस प्रकार का निबंध रचा जा सका है। बांग्ला नाटकों का सामाजिक व राजनीतिक प्रभाव अक्षुण्ण है। कहा जाता है कि बंगाल के क्रांतिकारियों व समाज-सुधारकों की सोच को निर्मित करने में भी बांग्ला थियेटर का अतुलनीय योगदान रहा। कदाचित इसी योगदान को परखते हुए आपने गिरीष घोष, शिशिर कुमार, रवींद्रनाथ, उत्पल दत्त, शंभु मित्र आदि प्रख्यात नाटककारों की कृतियों व समाज से उनके लेखन के करीबी ताल्लुकात को दर्शाया है। विशेषकर मिनर्वा थियेटर, स्टार थियेटर, बहुरूपी थियेटर, बंगाली थियेट्रिकल कंपनी, कार्ल वालिस आर्य थियेटर आदि मंचों पर खेले गए नाटकों के प्रभाव को अंकित किया गया। बांग्ला नाटकों को कभी भी मंच व दर्शकों का अभाव नहीं रहा। आप लिखते हैं- उत्पल दत्त अंग्रेजी में शेक्सपीयर के अभिनय एवं एक विदेशी नाट्य निर्देशक के अधीन काम करने का अनुभव लेकर बांग्ला थियेटर में आए। 'बूढ़ो शालिकेर घाड़े रोम', अंगार, तितास, फरारी फौज, कल्लोल आदि प्रस्तुतियों से उन्होंने नाट्य शिल्प के वैभव में वृद्धि की ।....

शंभु मित्र ने अपने थियेटर में ध्रुपदी मिजाज के साथ थियेटर में काव्य रचना करनी चाही है। व्यक्ति और समाज इन दोनों के खींचतान के बीच व्यक्ति मनुष्य में ही सामाजिक मनुष्य को उन्होंने उठाकर रख दिया है।

विजन भट्टाचार्य ने बंगाल के श्रमिकों के जीवन को, कृषि निर्भर समाज के मनुष्य के जीवन और उसके समस्त दुख कष्ट को अपने नाटकों में चित्रित करना चाहा। (वही, पृ-69)

उज्जवल मजूमदार रचित 'बांग्ला निबंधों की सांप्रतिक दशा' लेख का रूपांतरण करते समय रामशंकर द्विवेदी जी ने अनुवादक की भूमिका का सम्यक निर्वाह किया है। बांग्ला वाक्य रचना के वैशिष्टय को ध्यान में रखते हुए उन्हें हिंदी वाक्य के सौंदर्य में ढालने की प्रक्रिया में आपका प्रयास द्रष्टव्य है-''जिन सब पूर्वसूरियों की बात का उल्लेख किया है, उनके ही समकालीन अत्यधिक प्रतिष्ठित निबंधकार इस समय भी चिंतन, दीप्ति, प्रस्तुतीकरण की स्वच्छंद भंगिमा एवं विषय-वैचित्र्य से किसी भी सांस्कृतिक पत्र-पत्रिका का मान बढ़ा सकते हैं, चिंतन की प्रखरता में उम्र के भार को तुच्छ कर सकते हैं, उनमें सबसे पहले उल्लेख योग्य है, सुकुमार सेन।'' (वही,पृ-71-72) उक्त निबंध के अनुवाद की भाषा की प्रवाहमयता व स्वाभाविकता निश्चित रूप से पाठक को प्रभावित करती है। बांग्ला में प्रयुक्त कुछ शब्दों को आपने हिंदी में ज्यों का त्यों अपनाया है जैसे सावलील, सुलिखित, पूर्वसूरी, रूप-रीति, आदि। इसी प्रकार मूल निबंध लेखक के द्वारा प्रयुक्त कुछ अंग्रेजी के शब्दों को भी आपने अनुवाद की सीमा के बाहर रखा। उदाहरणार्थ -रोमाण्टिकता, नास्टेल्जिया, पर्सनल एसे, सेमिनार, एकेडेमिक आदि। अनुवाद के दौरान स्रोत भाषा में लिखित रचना में व्यवहृत शब्दों का किस प्रकार अनुवाद करें, यह अनुवादक के बुद्धि-कौशल पर निर्भर करता है। द्विवेदी जी ने यही दर्शाया है कि उपर्युक्त शब्दों को ज्यों का त्यों हिंदी में स्थान देने से ही निबंध की गतिमयता अक्षुण्ण रहेगी। यह उनके अनुवाद कौशल के अभिन्न बिंदु हैं।

वर्तमान साहित्य के आलोच्य अंक से गुजरते समय यही अनुभव होता है कि बांग्ला भाषा का सम्यक ज्ञान होने के फलस्वरूप रामशंकर द्विवेदी हिंदी जगत में बांग्ला साहित्यिक विधाओं व धाराओं के रूझान, बदलाव व सिलसिलेवार ब्यौरे देने में समर्थ हुए। साथ ही इस अंक में बांग्ला की जिन कविताओं, साक्षात्कारों, आत्मकथा के अंश व कहानियों का चयन किया गया, उनसे भी गत शताब्दी के दौरान बांग्ला महोदधि का निचोड़ मिलता है।

यदि किसी लेखक की रचनाशीलता व उसके व्यक्तित्व में डूबना हो तो

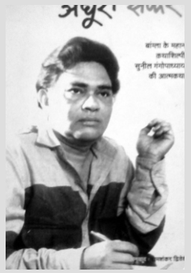

उसकी आत्मकथा से गुजरना अपेक्षित है। किसी भी रचनाकार की आत्मकथा वास्तव में एक साधारण मनुष्य से उसके लेखक बनने की यात्रा की साहित्यिक अभिव्यक्ति होती है। आधुनिक बांग्ला साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकारों में सुनील गंगोपाध्याय का अप्रतिम स्थान है। नाना साहित्यिक विधाओं में आपकी कलम का लोहा मानने में पाठक विवश हुए हैं। इस युगद्रष्टा लेखक की बांग्ला में रचित आत्मकथा को हिंदी पाठकों के हाथों में डॉ. राम शंकर द्विवेदी जी ने सौंपा है। 2008 में संवाद प्रकाशन, मेरठ से प्रकाशित इस अनूदित आत्मकथा में सुनील गंगोपाध्याय के जीवन की नानाविध झांकियों को उन्हीं की लेखन-शैली में पढ़ने का सुख पाठकों को आह्लादित करता है। आत्मकथा की भूमिका में द्विवेदी जी लिखते हैं-'इसमें उनके समकाल का पूरा चित्र है। इसमें इतिहास है, उपन्यास है, कहानी है, नाटक है-- भ्रमण वृत्तांत है, रेखाचित्र है, संस्मरण हैं, पत्र हैं, राजनीति है, पत्रकारिता है, पश्चिम बंगाल है, कलकत्ता है, एक ग्रामीण अंचल है, पर पूरा भारत भी है। जहां-जहां सुनीलदा गए, विश्व के उन स्थलों का विवरण भी है, ...? (अधूरा सफर, पृ-12)

आत्मकथा लिखते समय सुनील जी ने लंबे वाक्यों का सहारा लिया, लंबे, बहुत लंबे। द्विवेदी जी ने अपने अनुवाद कौशल का प्रमाण देते हुए इन वाक्यों को अखंडित रखते हुए उनका अनुवाद किया है। द्रष्टव्य है कि इससे इन वाक्यों में निहित रस, मर्म व अर्थ को कोई क्षति नहीं पहुची है। उदाहरणार्थ- 'उसी पूर्वी माइजपारा ग्राम के एक छोर थी ब्राहमणपल्ली। एक बहुत बड़े आकार के चौकोरमैदान के चारों ओर चार घर। एक पांचवा घर एक कोने की तरफ है, जैसे दूसरी दिशा से उड़कर उनसे आकर मिल गया हो, इसलिए उस वर्गाकार वाले मैदान में उसे जगह न मिली। वह पंचम बाड़ी आकार में भी छोटी है, उसका वेहरा भी मलिन है, उसमें अन्य लोगों की तुलना में एक गरीब परिवार रह रहा है।'' (अधूरा सफर, पृ-18) अनुवाद के दौरान बांग्ला ग्रामीण जीवन को सुनील जी की तरह द्विवेदी जी ने भी उभारने की ईमानदार कोशिश की है। वे लिखते हैं कि इस अनूदित वर्णन में बांग्ला ग्रामीण घरों की मूलभूत विशेषताओं से हिंदी जगत का पाठक परिचित होता हैं इसके बाद आत्मकथा ग्रामीण पारिवारिक संरचना का परिचय देती हुई बांग्ला ग्राम्य जीवन की सादगी, गुण-अवगुण के प्रति पाठक को आकर्षित करती है। द्विवेदी जी बड़े धैर्यपूर्वक सुनील जी के जीवन के उषाकाल का वर्णन करते चलते हैं। केवल एक रचनाकार का जीवन-वृत्तांत आत्मकथा नहीं होती, यदि ऐसा होता तो कदाचित द्विवेदी जी इतने परिश्रम व लगन से यह अनुवाद कार्य हाथ में न लेते। बल्कि इस आत्मकथा में तत्कालीन भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवेश का शोधपरक व जागरूक अन्वेषण मिलता है। उदाहरण के लिए-देश को पराधीनता से मुक्त कराने के लिए जो लोग सशक्त संग्राम में विश्वासी थे, गांधीजी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने जिनका समर्थन नहीं किया था, ब्रिटिश सरकार ने जिन्हें टेररिस्ट अथवा आतंकवादी नाम दिया था, उनके तेज का इस समय एक बार ही ह्रास हो गया, प्रायः सभी विप्लवी पकड़ लिए गए, उन्हें पटापट या तो फांसी दे दी गई, अथवा उन्हें अंडमान भेज दिया गया, चटगांव में सूर्यसेन को फांसी दे दी गई।? (अधूरा सफर, पृ-24) यह अनुवाद भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के एक महत्वपूर्ण पृष्ठ को साकार करता है। 'पटापट' शब्द बांग्ला से ज्यों का त्यों उसके लालित्य के साथ हिंदी जगत में पदार्पण कर गया। बंगालियों की सबसे बड़ी पूजा दुर्गा पूजा के वर्णन का अनुवाद भी प्रादेशिक जीवन-धारा को राष्ट्रीय मंच पर स्थापित करने का सफल प्रयास है-'संपन्न हिंदू परिवारों में शुरू हो जाती है दुर्गा-पूजा की प्रस्तावना। नौका पर चढ़कर कुम्हार लोग आ जाते हैं, घरों में ही होने लगता है प्रतिमा -निर्माण, पहले बांस की खपच्चियों के ढांचे पर पुआल, उसके बाद मिट्टी की एक पर्त, दूसरी पर्त इत्यादी। (वही,पृ-25)

बांग्ला भाषा अन्य सभी भारतीय प्रादेशिक भाषाओं की तरह बंगाल के अलग-अलग प्रांतों में विकास के नए व अलग रूप दर्शाती है। जैसे उत्तरप्रदेश की हिंदी अलग-अलग जिलों में बोलियों व उपबोलियों से प्रभावित होती है ठीक उसी प्रकार बांग्ला भाषा भी अलग-अलग जिलों में अलग-अलग रूपों में विकसित हुई। खासकर पूर्व बंगाल या वर्तमान बांग्लादेश व पश्चिम बंगाल की भाषा में बड़ा अंतर लक्षित किया जा सकता है। भाषा के इस क्षेत्रगत अंतर को भी अनुवादक ने यों बयान किया है -'एक हिसाब से मैं सौभाग्यशाली हूं, मेरा बाल्य-किशोर-काल शहर और ग्राम दोनों में ही व्यतीत हुआ है। एकदम खास बंगाली घर का लड़का होने पर भी पाठशाला की उम्र से ही कलकत्ता की ठेठ भाषा बोल सकता था, और गांव जाकर साथ खेलने वालों के साथ चुस्त बांगला-भाषा में झगड़ा कर सकता था। ट्रेन से सियालदा स्टेशन उतरते ही 'खेयेचि-बोलेचि' और उधर स्टीमर से उतरते ही 'खाइसी-बलसी!' (वही,पृ-27) ख्याल रहे कि यह अंतर केवल शहरी और ग्रामीण भाषा का अंतर नहीं है बल्कि क्षेत्र या जिले के आधार पर इस अंतर को आधार मिला है।

बंगाली जन की प्रिय खाद्य है मछली। इन मछलियों को पकड़ने की क्रिया का सुनील जी ने खूब रमकर वर्णन किया है और द्विवेदी जी ने वाण, टेंगरा, झींगा आदि का वर्णन करते हुए इनका अनुवाद किया है। दुर्गा पूजा, काली पूजा के दौरान बकरे, भैंस आदि की बलि देने की प्रथा के विषय में लेखक के विचारों व इस बलि के संपूर्ण आयोजन को द्विवेदी जी ने बड़े सुनियोजित ढंग से अनूदित किया है। 'मनुष्य आमिश खाने वाला प्राणी है कुछ मनुष्यों के सात्विक, निरामिष भोजी होने पर भी विश्व की जनसंख्या का अधिकांश मांसलोलुप है। अपनी पसंद के मांस के लिए प्राणियों की हत्या की ही जाएगी, किंतु उसके साथ धर्म की दुहाई क्यों जोड़ी जाएगी? दुर्गापूजा, कालीपूजा में बकरे की बलि, भैंसा की बलि अत्यंत वीभत्स प्रथा है। मुसलमान लोग भी गाय और उंट की कुर्बानी करते हैं। यह सब धर्म का ही अपमान है, इसे क्या इतने युगों के बाद भी मनुष्य समझ नहीं सका है....(अधूरा सफर, पृ-35)

अनुवाद के दौरान सामने आई काव्य पंक्तियों में किसका अनुवाद करना चाहिए और किसे ज्यों का त्यों लक्ष्य भाषा में केवल लिप्यांतरण के साथ प्रस्तुत करना चाहिए, इस विषय में आपकी विचक्षण दृष्टि का कायल हुए बिना नहीं रहा जा सकता। जब सुनील जी ने अपने स्कूल में रवींद्रनाथ की कविताओं की आवृत्ति सुनने का वर्णन किया हैं, वहां कहीं-कहीं किसी कविता की पंक्ति को ज्यों का त्यों द्विवेदी जी ने हिंदी में प्रस्तुत किया है तो कहीं उसका अर्थ कोष्ठक में दे दिया है। 'तक्ती' नामक मिठाई का अनुवाद करते समय आपने केवल लिप्यंतरण किया। एक स्थान पर आप लिखते हैं कि 'उसके बिना कुछ समझे एकदम 'शें' करने से ही मीरा ने आंखें पोंछकर उसे गोद में उठा लिया।? (अधूरा सफर, पृ-45) इस उक्ति में शें करना वास्तव में बांग्ला में बच्चों के जोर से रोने के लिए इस्तेमाल में लाया जाने वाला शब्द है जिसका अनुवादक ने हिंदी में प्रयोग किया है।

द्विवेदी जी ने उक्त अनूदित आत्मकथा में तत्कालीन वैश्विक राजनीतिक पटल पर होने वाली प्रत्येक हलचल को इतने समीचीन ढंग से प्रस्तुत किया है जिससे पाठक के समक्ष वे सारे दृश्य पूरे प्रभाव के साथ उभर कर आते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का अंतिम दौर, बंगाल का वीभत्स अकाल, आजाद हिंद फौज की गतिविधियां, भारत विभाजन, गांधी जी द्वारा बंगाल में हिंदू-मुस्लिम दंगों को रोकने के लिए किए गए अनशन आदि का जितना सजीव चित्रण लेखक ने किया है उतना ही हृदयग्राही अनुवाद द्विवेदी जी ने किया है।

सुनील जी ने द्वितीय विश्वयुद्ध और उस दौरान होने वाले हमलों के साधारण मानव जाति पर पड़ने वाले परिणामों को बड़े तथ्यपरक और गंभीरता से उक्त आत्मकथा में विश्लेषित किया है। अनुवाद के दौरान द्विवेदी जी ने लेखक के भावजगत पर पड़ने वाले प्रत्येक प्रभाव व फलस्वरूप उसकी लेखनी में व्यंजित तकलीफ और दर्द को महसूस किया है। अनुवाद की इस सफलता को पाठक तब अनुभव करता है जब वह इस अनूदित कृति में तन्मय होकर डूब जाता है। वे लिखते हैं-इन सब दंगों में जो लोग मरे, उनमें नब्बे प्रतिशत भाग गरीब, असहाय, दुर्बल मनुष्यों का था। उनके जीवन में धर्म की वैसी कोई भूमिका भी नहीं थी, जीविका की मार से ही वे परेशान रहते थे। एक मुसलमान अंडेवाला हिंदुओं के बाजार में नितांत पेट की खातिर आता था, जो लोग उससे अंडे खरीदते थे, उन्होंने ही उसकी अकारण हत्या कर दी। उससे धर्म की कौन-सी सुराह निकल आई? उस उम्र में वैसा एक दृश्य देखकर धर्म के प्रति मेरे मन में एक दारूण अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। जिन लोगों ने उस अंडेवाले को अकारण मारा, जिन्होंने दूर खड़े होकर उस हत्याकाण्ड को प्रत्यक्ष देखा अथवा उसमें कोई बाधा नहीं दी, वे अगर हिंदू हों, तो मैं वैसा हिंदू नहीं होना चाहता। चूल्हे में जाए ऐसा धर्म।'' (अधूरा सफर,पृ-105) प्रस्तुत अंश अनूदित साहित्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि यह मानवतावाद को अपील करने वाला लेखन है और इसे एक भाषा के कठघरे से बाहर निकालकर अन्य भाषा के पाठक तक पहुंचाकर अनुवादक ही नहीं साहित्य-साधक के रूप में भी द्विवेदी जी ने विषद मानवीय दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

'चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर भाषा वाली उक्ति सभी भाषाओं पर समान रूप से लागू होती है। बांग्ला भाषा के इस वैविध्य को दर्शाने के लिए द्विवेदी जी ने आत्मकथा में वर्णित ऐसे अंशों को बड़ी सावधानी के साथ अनूदित किया है जिससे उनकी बोधगम्यता और प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा न आए। बंगाल के जो निवासी पीढ़ी दर पीढ़ी भारत में स्थित बंगाल वाले अंश में रहते हैं उन्हें घटी कहा जाता है और जो बंगाली 1905 के बंग-भंग, उससे पूर्व या बाद में भारत विभाजन के दौरान पूर्वी बंगाल से भारत में स्थित बंगाल में आकर बसे हैं, उन्हें बांगाल कहा जाता है। क्षेत्रगत भिन्नता के कारण मूलतः बंगाली होने के बावजूद इनकी भाषा व बोलियों में काफी अंतर है। उसी अंतर को प्रस्तुत उदाहरण में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है-'बंगाली और घटी लोगों की भाषा में चंद्रबिंदुगत भेद तो था ही, उसके अलावा थी 'ल' और 'न' एवं 'च' और 'छ' के प्रयोग की विधि भी बहुत कौतूहलजनक है। इस ओर 'ल' वर्ण के प्रति घोर अरूचि है। सिर्फ 'नमची', 'नेबू', नस्का' ही नहीं, 'लुकिए' शब्द हो जाता है 'नुकिए', 'लफानों' शब्द के बदले हो जाता है 'नापानों', 'लेप' के बदले 'नेप'। (अधूरा सफर, पृ-64)

कहीं-कहीं पर गीतों का उल्लेख करते समय द्विवेदी जी ने इनका लिप्यंतरण कर दिया है। जैसे-

शुक्र वले : आमार कृष्णेर माथाय मयूर पाखा

सारिश्वले : आमार राधार नामटी ताहे लेखा (अधूरा सफर, पृ-71)

उक्त स्थलों पर यदि हिंदी में इनका अनूदित रूप कोश्ठक में दे दिया जाता, कदाचित यह हिंदी के पाठक के लिए अधिक बोधगम्य होता। पुस्तक के पृष्ठ संख्या 84 में परमाणु बम विस्फोट का उल्लेख करते हुए सुनील जी ने भगवत्गीता के श्लोक का भी उल्लेख किया है और बांग्ला में गीता के अनूदित रूप से भी पंक्तियां उद्धृत की हैं। ऐसे स्थलों पर अनुवादक ने संस्कृत के श्लोक का हिंदी में अनूदित रूप कोष्ठक में प्रस्तुत किया है। लेकिन बांग्ला में अनूदित गीता के श्लोक का मात्र लिप्यंतरण प्रस्तुत किया है। ऐसे कुछ स्थलों पर हिंदी के पाठक के लिए थोड़ी असुविधा हो सकती है।

पृष्ठ संख्या 99 में आपने बांग्ला में बहुप्रचलित एक कहावत का प्रयोग किया है- आप रूचि खाना, पराई रूचि पहनना, जिसका तात्पर्य यह हैं कि भोजन अपनी रूचि से करना चाहिए और पोषक के समय देखने वाले की रूचि का ख्याल रखना चाहिए। इस प्रकार अनुवादक ने हिंदी के मुहावरों के जगत को और अधिक सम्पन्न करने का समर्थ प्रयास किया हैं।

भारत में भाषा के व्यवहार में भी लोग सांप्रदायिक संकीर्णता से बुरी तरह से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। इस पूर्वाग्रह के विषय में आत्मकथाकार ने बड़े ही दिलचस्प तथ्य का उल्लेख किया है जिसका अनुवादक के रूप में द्विवेदी जी ने भी पूरी सावधानी बरतते हुए प्रस्तुतीकरण किया है-सिर्फ बंगालियों में ही क्यों जल और पानी शब्द के व्यवहार के आधार पर हिंदू और मुसलमान की पहचान की जाती है। कोश में दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति एक-सी है। जल तो संस्कृत से आया ही है, पानि अथवा पानी भी संस्कृत से आया है।... प्राकृत भाषा के मार्ग से होता हुआ बंगीय शब्द कोष में दिया हुआ है संस्कृत पानीयुक्त लि पानी, पाष्पाणि अन्तु वाष्पाणि, पाणी। किसी रहस्यमय कारण से हिंदू -मुसलमान बिना विचारे अधिकांश भारतीय पानी का प्रयोग करते हैं। मुगल भाासन काल में सेना की विभिन्न जाति और भाषा-भाषी लोगों के बीच एक सामान्य भाषा बन गई, जिसका नाम उर्दू है, उसमें संस्कृत, अरबी, फारसी, हिंदी के विविध प्रकार के शब्द मिश्रित हैं, वहां पर भी जल के बदले पानी का प्रयोग किया जाता है। जो बंगाली पानी को मुस्लिम शब्द मानते हैं और जल को अपने मजहब की भाषा का शब्द मानते हैं, वे भी उन्हीं के समान भोले हैं। (अधूरा सफर, पृ-109) यहां पर अनुवादक ने अपने अनुवाद की क्षमता के बल पर शब्दों के प्रयोग की आड़ में छिपी मानसिकता का जायजा लेने की लेखक की मंशा को भली-भांति परखा है। एक जगह पर हम देखते हैं कि द्विवेदी जी ने बांग्ला गीत का लिप्यंतरण किया है पर वह गीत इतने सरल शब्दों रचा गया है कि इसका लिप्यंतरण ही पाठकों को इसका अर्थ समझाने में काफी है। इस तरह के निर्णय लेने की स्वाधीनता अनुवादक को होती है और इस स्वाधीनता के दायरे में रहकर द्विवेदी जी जैसे अनुवादक मूल लेखक और अनूदित पाठ के पाठक के साथ न्याय करते हैं उदाहरणार्थ-

'आमार ठाकुरेर नाइ कोनो आचार /ओगो नाई कोनो नाम, नाई कोनो धाम
नाई कोनो जात-विचार /केउ बले अल्लाह ओ अकबर
केउ बले वनमाली, श्याम, नटवर..... अधूरा सफर, (पृ-113)

इसी प्रकार के एक उदाहरण से पाठक तब भी गुजरता है जब अनुवादक ने बांग्ला में लिखे 'लक्ष्मी पांचाली' का ज्यों का त्यों लिप्यंतरण किया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि करीब साढ़े चार सौ पृष्ठ की इस आत्मकथा को द्विवेदी जी ने बड़े प्रभावशाली व सुरूचिपूर्ण ढंग से अनूदित कर पाठकों के हाथों में सौंपा है। अनुवाद में प्रवाह के कारण पाठक अक्सर यह भूल जाता है कि वह एक मौलिक पुस्तक नहीं वरन् अनूदित पुस्तक से गुजर रहा है।

डॉ रामशंकर द्विवेदी जी के द्वारा बांग्ला से हिंदी में किए गए अनुवादों से गुजरते हुए पाठक एक बात से विस्मित हुए बिना नहीं रहता कि आपने बांग्ला साहित्य की विभिन्न विधाओं का अनुवाद किया है। जहां एक ओर साक्षात्कारों के अनूदित रूप पाठकों को रूचिपूर्ण लगते है तो दूसरी ओर आत्मकथा, डायरी और निबंधों के अनुवाद भी पाठक को बांध लेते हैं। पाठक के लिए यह अनूदित साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि साहित्य की चिर प्रचलित विधाओं से हटकर इन कम चर्चित विधाओं में उपलब्ध रचनाओं से गुजरने का सुअवसर मिलता है।

'प्रेम बिना शिल्प कहां' पुस्तक रामशंकर द्विवेदी जी द्वारा बांग्ला साहित्य व शिल्प के क्षेत्र में प्रख्यात कलाकारों व शिल्पियों का अनूदित संकलन है। पुस्तक की भूमिका में आप लिखते हैं-'इस पुस्तक में संकलित साक्षात्कारों और

संस्मरणात्मक निबंधों के पीछे मेरी अपनी रूचि तो रही है, पर साथ में यह विचार भी रहा है कि हिंदी के पाठक यह देखें कि हिंदी से भिन्न एक भारतीय भाषा के साहित्यकारों की अपनी क्या समस्याएं रहीं हैं, उनकी रचना प्रक्रिया क्या है, उन्होंने क्यों लिखना प्रारंभ किया, अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को कैसे निखारा, प्रतिभा और 'टैलण्ट' के साथ उनका अपना अध्यवसाय कितना कारगर रहा है। वे भी मामूली आदमी थे, घोर परिश्रम और प्रत्यह जीवन की कठिनाइयों को अतिक्रमण करते हुए आज सफलता के शिखर पर पहुंच सके हैं। शायद हिंदी के पाठक और साहित्यकार इससे कोई प्रेरणा ले सके। (प्रेम बिना शिल्प कहां, पृ-4) इन साक्षात्कारों में एक तरफ बांग्ला साहित्य और शिल्प के स्वनामधन्य कर्णधारों के विचारों से पाठक अवगत होता है तो दूसरी तरफ रामशंकर द्विवेदी जी की अनुवाद कला भी उन्हें अभिभूत कर देती है।

आशापूर्णा देवी से साक्षात्कार लेते समय चित्रा देव ने उनसे प्रश्न किया कि आप साहित्य के क्षेत्र में किस प्रेरणा से आईं? इस प्रश्न के उत्तर में आशापूर्णा देवी ने जो उत्तर दिया वह कई छोटे-छोटे वाक्यों में व्यक्त उनके निजी अनुभवों का संचय है। द्विवेदी जी ने इनका अनुवाद इतने सरस रूप में किया कि ऐसा प्रतीत होता है मानो लेखिका स्वयं हिंदी के पाठकों से वार्तालाप कर रही है। '....पहले की रचना कविता थी। वह जिसमें छपी थी वह बच्चों की पत्रिका थी। इसने ही मेरे उत्साह की अग्नि में मानो घी का काम किया। एक रचना छप गई और दूसरी भी मांगी जा रही है। मेरा घर खूब रूढ़ीवादी था। लड़कियों को स्कूल भेजने की परिपाटी नहीं थी।' (प्रेम बिना शिल्प कहां, पृ-17) ध्यातव्य है कि बांग्ला लेखिका के जीवनानुभव को हिंदी प्रांत का पाठक अनुभव करता है। उस अनुवाद में सहजता लाना जरूरी है अन्यथा सुदूर हिंदी प्रांत में बैठा पाठक उस भाव से स्वयं को एकाकार नहीं कर पाएगा। इन अनूदित साक्षात्कारों को पढ़ते समय महसूस होता है कि यह वरिष्ठ लेखिका हमारे अंतर्मन के कितने करीब है। इन साक्षात्कारों में अतीत के पर्दे के पीछे छिपा हुआ एक युग हमारे समक्ष उभर कर आता है। पराधीन भारत में मध्यमवर्गीय समाज में स्त्रियों की स्थिति साक्षात्कार के निम्नांकित अंश से स्पष्ट हो जाता है। ''हमारे यहां बारह वर्ष की उम्र से हम लड़कियों का घर से बाहर जाना बंद होने का कड़ा नियम था। मां बोली- ''इस बार पूजा देखने जा रही हो देख आओ। अगले वर्ष नहीं जा सकोगी। अब बड़ी हो गई हो....(वही, पृ-21)

बांग्ला रंगमंच युगों से भारत के सभी प्रांतों के रंगकर्मियों का प्रेरणा-स्रोत रहा। देवाशीष दासगुप्त को दिए गए साक्षात्कार मे रंगकर्मी कुमार राय ने बांग्ला रंगमंच, ग्रुप थियेटर, नाटक खेलने से जुड़े अनुभवों को साझा किया है। इस अनूदित साक्षात्कार को पढ़ते समय द्विवेदी जी की अनुवाद कला की सहजता, प्रवाहमयता एवं वाणी की नाटकीयता को बनाए रखने की क्षमता से अभिभूत हुए बिना पाठक रह नहीं सकता। आपके अनुवाद ने कुमार राय के विचारों व वाणी को अतुलनीय सरलता के साथ हिंदी के पाठकों के लिए सुगम बना दिया। उदाहरणार्थ -'नरेश मित्र ने यह प्रमाणित कर दिया कि अभिनय पूर्ण रूप से एक अन्य तरह की वस्तु है। सदा आवाज अथवा चेहरे पर निर्भर नहीं रहती है। हम लोगों के बचपन में ऐसी धारणा थी कि आवाज गंभीर होने से लगता था कि एक अच्छा अभिनेता हुआ जा सकता है। शंभु दा कहा करते थे कि तब तो ग्रीष्मकाल में जिस फेरी वाले की भारी आवाज की पुकार पर मैं भाग जाता था वही बड़ा अभिनेता हो सकता है।'' वही,पृ-47

संगीताचार्य गिरीशचंद्र चक्रवर्ती पर सुप्रिय बागची द्वारा कलमबद्ध संस्मरणात्मक लेख का अनुवाद भी द्विवेदी जी ने बड़ी तन्मयता से किया है। इस निबंध में आपने गिरिजा शंकर जी के कुछ प्रिय धुपद-धामरों का भी अनुवाद किया है जो शास्त्रीय गायन के प्रति अनुरक्त पाठक के लिए अत्यंत मनभावन सिद्ध होगा। डालिया सरकार द्वारा संगीताचार्य दिलीप कुमार राय पर आधारित साक्षात्कार का अनुवाद करते समय द्विवेदी जी ने उस परिवेश से पाठक को अवगत कराने की चेष्टा की जिसने इन संगीत-शिल्पियों को अपनी पराकाष्ठा तक पहुंचने में सहायता की। विशेष बात यह है कि द्विवेदी जी ने इन संगीत-शिल्पियों के विषय में गहन अध्ययन करने के पश्चात इनके साक्षात्कार को अनूदित रूप दिया। दिलीप कुमार राय के साक्षात्कार में प्रश्नोत्तर का एक बड़ा दिलचस्प प्रकरण पाठकों के समक्ष अनूदित रूप में यों साकार हुआ है -

''वह एक मजेदार संवाद है। एक बार सुरेंद्रनाथ स्वयं द्विजेन्द्रलाल के घर आकर हाजिर हुए। द्विजेंद्रलाल ने स्वयं जिज्ञासा प्रकट की-'महाशय के आगमन का कारण' सुरेंद्रनाथ ने कहा - 'सुना है महाशय की एक कन्या है। उस कन्या को मैं अपनी पुत्रवधू बनाना चाहता हूं।'

-आपने ठीक ही सुना है। कन्या है। आपने कन्या को क्या देखा है?

-बिना देखे ही कह रहा हूं। उसी कन्या को घर ले जाउंगा पुत्रवधू बनाकर।

-किंतु, मैं तो बनाने नहीं दूंगा।

-क्यों? कारण जान सकता हूं क्या?

-बड़े लोगों के अधिकांश लड़के मनुष्य नहीं होते हैं, हो सकता आप का लड़का हो। फिर भी, मेरी कन्या आपको नहीं मिलेगी।.....,(वही,पृ-96-97)

ठुमरी गायक सचीनदास मतिलाल के साक्षात्कार का अनुवाद करते हुए द्विवेदी जी ने अब्दुल करीम साहब, मेजुद्दीन खान, उस्ताद बदल खां के गायन पर शचीनदास जी के विचारों से पाठकों को परिचित किया। अन्नदाशंकर राय से लिए गए साक्षात्कार, वार्तालाप का निचोड़ सुरजीत दासगुप्त ने प्रस्तुत किया है जिसका अनुवाद करते समय आपने अपने धैर्य व गहन अध्ययन का परिचय दिया है। इस साक्षात्कार की प्रकृति आमतौर पर दिए गए साक्षात्कारों से भिन्न है। इस भिन्नता व वैविध्य को द्विवेदी जी ने बड़ी कुशलता से आत्मसात किया है। अन्नदाशंकर जी के साक्षात्कार में एक मर्मस्पर्शी स्थल पर पाठक का चित्त बिना अभिभूत हुए नहीं रहता जिसका अनूदित रूप इस प्रकार है-''प्रेम के बिना कहीं शिल्प होता है? नारी के लिए पुरूष का पुरूष के लिए नारी का, मनुष्य के लिए मनुष्य का और मानव मात्र के लिए शिल्पी का।'' (वही,पृ-136)

बांग्ला की छोटी कहानियों के क्षेत्र में विमल कर का अन्यतम स्थान है। 'कहानियों में मेरा परिश्रम एक मजदूर जैसा ही है' शीर्षक साक्षात्कार के माध्यम से हिंदी पाठक बांग्ला कहानीकारों के मानस व पत्र-पत्रिकाओं का कहानी-विधा के प्रकाशन व विकास में योगदान से अवगत होता है। इस अनूदित साक्षात्कार से गुजरते समय द्विवेदी जी का निम्नांकित कथन मन में कौंध जाता है-''कहीं-कहीं मैंने मूल बांग्ला वाक्य-बंधों या शब्दावली को इसलिए रहने दिया ताकि हिंदी के पाठक अपने ही देश की एक अन्य भाषा की मुहावरेदानी से परिचित हो सके।'' (पुस्तक की भूमिका से)

'पथेर पांचाली' व 'अपराजितो' जैसे विश्व विख्यात कृतियों के रचयिता विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय जी के भ्रमण-वृत्तांत पर आधारित 'अरण्य गाथा' उनकी सात डायरियों का संकलन है। भावी पीढ़ी के लिए कुछ लिखकर रख जाने की प्रेरणा से परिचालित होकर उन्होंने 'हे अरण्य कथा कहो, उत्कीर्ण, स्मृति रेखा, तृणांकुर, उर्मि मुखर, अभियात्री, वन और पहाड़ भ्रमण' शीर्षक से सात डायरियों का प्रणयण किया जिसे दो खंडों में कुल 846 पृष्ठों में रामशंकर द्विवेदी जी ने कठिन अध्यवसाय के परिणामस्वरूप हिंदी में अनुवाद किया। ये अनूदित ग्रंथ पाठकों के लिए भ्रमण-साहित्य के एक से एक नवीन व अनोखे पक्ष अनावृत्त करते हैं। आपके अनुवाद कर्म की सफलता इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि भ्रमण साहित्य पर आधारित ये ग्रंथ पर्दे पर चलने वाली फिल्म की तरह एक साथ पाठक के चित्त पर दृश्य-श्रव्य प्रभाव छोड़ते हैं। एक साहित्यकार के जीवन में भ्रमण की महत्ता तथा प्रकृति व देश की माटी को अनुभूत करने की उसकी ललक की तृप्ति को ये ग्रंथ प्रमाणित करते हैं।

वर्षा मुखर श्रावण के दिन लेखक छोटी इलायची के बढ़े हुए जंगल के सौंदर्य को पाठकों के साथ साझा करते हुए हमारे लोक-पर्वों की मार्मिकता, सौंदर्य व महक का वर्णन करते हैं। विशुद्ध ग्रामीण प्रकृति का वर्णन करने में जितना

आनंद लेखक को मिला है उतना ही इसका अनुवाद करते समय निस्संदेह द्विवेदी जी को भी मिला है जो निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट होता है- 'एक ओर घना, हरा, कोमल, कषाढ़का वन है, निचला पाड़, जल का थोड़ा हिस्सा वर्षान्त में उगने वाली दाम-घास से भरा हुआ है, कलमी लता का अजस्र साग, और कलमी घास में बगुला और पनडुब्बी चिड़ियां बैठी हुई हैं। सिर के उपर आकाश में उड़ता हुआ सवाईपुर के मैदान की तरफ से पक्षियों का खूब बड़ा झुंड अपने घर की तरफ लौट रहा है, लगता है जटामारी की झील से लौट रहा है, पांच पोता की दह की तरफ जा रहा है। ....एक शिमूल वृक्ष के पीछे के आकाश में ईंटों जैसे रंग का मेघों का द्वीप है, चारों तरफ एक अपूर्व श्यामलता, कैसी श्री, कैसी शांति, कैसी स्निग्धता, कैसे अपूर्व आनंद से मन भर देती है....। (''पुस्तक विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय की अरण्य गाथा, पृ-422 खंड) पूरे यात्रा वृत्तांत से गुजरते वक्त हिंदी का पाठक न जाने कितने ही पेड़ों, वनस्पतियों, फूलों के नाम, उनकी विशेषताओं व अनोखेपन से रूबरू होता है जिसका संपूर्ण श्रेय द्विवेदी जी के अनुवाद कला को जाता है क्योंकि इस अनुवाद के माध्यम से ही हिंदी का पाठक देश की मिट्टी की खुशबू में डूब जाता है। हे अरण्य कथा कहो में एक स्थान पर वर्षा का वर्णन भी प्रांतीयता के सौंदर्य से अभिमंडित है -''घर पहुंचते ही वर्षा गिरने लगी। वह कैसी तो झम-झम वर्षा है। दो घंटे तक लगातार एक जैसी झर-झर वर्षा! 'भन्ना' वर्षा का अर्थ है अविराम मूसलाधार वर्षा।'' (वही, पृ-118 खंड 1) हिंदी के पाठक ध्यान देने पर अनुभव करेंगे कि 'वर्षा गिरने लगी' यह प्रयोग हिंदी मे कम ही पाया जाता है बल्कि इस पर बांग्ला भाषा के प्रभाव को स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। इसी प्रकार खंड 2 में नागपुर व सिंहभूम इलाके में खिलने वाली वन्य शैफाली और सप्तपर्णीलता व चंद्रनाथ में पाई जाने वाली अनोखी रक्त करबी अर्थात लाल कनेर के सौंदर्य ने पाठक को अभिभूत कर दिया है। मछली बंगालियों की अत्यंत प्रिय भोज्य पदार्थ मानी जाती है। मछली पकड़ने के आनंद का विभूतिभूषण जी ने रम कर वर्णन किया ठीक उससे ताल-मेल बैठाते हुए द्विवेदी जी ने भी इस सुख से पाठकों को आप्लावित कर दिया।-''इस बार इच्छामती पर मछलियां भी खूब हुई हैं। मुझे तो अपनी छोटी वंशी से पूंटी और टेंरा छोड़कर और कुछ भी मछलियां वहीं नहीं मिलीं.....।'' (पृ-154 खंड 1)

एक ही देश के बाशिंदे होने के बावजूद हमारी अनेकता व विविधता चकित कर देने वाली है। भारत के विभिन्न प्रांतों के भोजन के जायके में पाया जाने वाला यह वैविध्य भी उक्त यात्रा वृत्तांत को हिंदी के पाठकों के लिए पठनीय बना देता है। द्विवेदी जी ने बंगाली खाने के अनोखेपन को बनाए रखते हुए उनका लिप्यंतरण करते हुए इस प्रकार नामोल्लेख किया है- लुचई, पुलाव, मछली की कालिया, मुड़ी घंट, झेंचड़ा, चटनी, दही, पायस, संदेश, रसगुल्ला आदि। इस प्रकार के लिप्यंतरण के पीछे अनुवादक की यही मंशा काम करती है कि पाठक बंगाली व्यंजनों के नाम से परिचित हो। क्योंकि स्वाभाविक है कि ज्यों ही हिंदी में इनके अर्थ दिए जाएंगे त्यों ही पाठक का ध्यान इनके नाम से हट जाएगा और उसकी उत्सुकता का भी ह्रास होगा।

प्रकृति की जो अतुलनीय संपदा भारत के विभिन्न प्रांतों में बिखरी पड़ी है उसका बड़ा ही मनमोहक चित्रण लेखक ने किया है। द्विवेदी जी के अनुवाद ने पाठकों के लिए बांग्ला के इस अविस्मरणीय वर्णन को सुबोध व सुलभ बनाया है। प्रकृति का गद्य विधा में ऐसा चित्रण दुर्लभ माना जा सकता है। ''सलाई बंगला बहुत चमत्कारपूर्ण स्थान पर अवस्थित है। बांए, सामने, अत्यंत निकट सघन वन से आच्छादित पर्वतमाला दो हजार फुट उंची है। पर्वत की ही पृष्ठभूमि में सामने ही खूब मोटा, लगभग दस फुट व्यास वाला एक सेंमल का वृक्ष है। उसके पीछे असंख्य जंगली वृक्ष हैं, नटराज की तरह नृत्य मुद्रा में साखारूपी बाहुओं को फैलाए हुए कैसा तो एक वृक्ष वन के मध्य खड़ा हुआ शोभा को बढ़ा रहा है। ''वही, पृ-80 प्रकृति के रंगीन कैनवास को शब्दों में बांधकर प्रस्तुत करना निश्चित रूप से इनकी दक्षता का प्रमाण है। द्विवेदी जी ने अनुवाद के दौरान उस सौंदर्य में जरा सी भी कमी आने नहीं दी। प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा अपूर्व अनूदित रूप हिंदी में कदाचित दुर्लभ है-''सामने निहार रहा हूं, उत्तुंग शौल शिखर पर थोक-के थोक बनानी, लाल पत्थर और मिट्टी से भरा हुआ पर्वतगात्र, बहुत उंचाई पर बड़े-बड़े बरगद, पीपल जैसे वनस्पति, उनके उपर भारत की दोपहर का नीला आकाश, पास ही विशाल हिडनी प्रपात की रूई के बोरों जैसी द्रुत नीयमान जलधारा, उसकी दाहिनी ओर पुनः जंगल, उसके नीचे 'नंन्टाना केमरा' के जंगली रंगीन फूल। .....'' (वही, पृ-41 खंड 1)

इन सघन वनों में रहने वाले भूमिपुत्र आदिवासीवृंद अपने जीवन की प्रत्येक जरूरत के लिए इन्हीं वनों पर पूर्णरूपेण आश्रित हैं। इस अनुवाद के दौरान लेखक ने स्रोत भाषा में वन-प्रांतरों के बाशिंदों के रहन-सहन, खान-पान व जीवन-चर्या का भी अत्यंत संप्रेषणीय अनुवाद किया है। खड़िया जाति के लोगों द्वारा दिन में एक बार भात खाने, दूसरे पहर भूखे पेट रहने की विवशता, खड़िया स्त्रियों द्वारा खानों में मजूरी का कष्टसाध्य काम करना और अपने भोलेपन व सरलता से आगन्तुक को मोह लेने का रोचक विवरण है। हो जनजाति का वह वर्णन भी पाठक को द्रवित कर देता है जब भीषण सर्दी में भी वे पेड़ के नीचे केवल आग जलाकर, चटाई बिछाकर रात बितातें हैं और भोजन के रूप में बटलोई में भात और पेक्ची नामक कंद डालकर दाल पकाकर खाते हैं। विभूतिभूषण जी ने कई स्थलों पर अंग्रेजी काव्य-पंक्तियों, सूक्तियों का प्रयोग किया है जिनका द्विवेदी जी ने यथोचित अनूदित रूप पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ ''अरनेस्ट टेलर के शब्दों में कहता हूं-

In the war lined a man among millions Karl Liebkrecht, his was the voice of truth and of freedom, even the prison groove could not silence that voice.''

युद्ध में भी लाखों व्यक्तियों में कार्ल लिबक्रेट नामक एक व्यक्ति था जिसकी वाणी सत्य और स्वतंत्रता की वाणी थी कारागार की कोठरी भी जिसकी आवाज को नहीं दबा सकी। (''पृ-87, खंड-2) इन डायरियों के अनूदित रूप से गुजरते समय हिंदी का पाठक बांग्ला भाषा की कई विशिष्टताओं का जानकार बन जाता है। जैसे यह भाषा कितनी संस्कृतनिष्ठ है, वाक्य-संरचना के नियम, मुहावरों का लहजा आदि।

समग्रतः कहा जा सकता है कि डॉ रामशंकर द्विवेदी जी ने पूरी ईमानदारी से बांग्ला साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों को हिंदी जगत को अपने अनुवाद की दक्षता के आधार पर सौंपा है। निस्संदेह उनके इस महत प्रयास ने हिंदी साहित्य को और अधिक सुसम्पन्न व सुदृढ़बनाया। भारतीय साहित्य की विभिन्न भाषाओं में इस प्रकार के अनुवाद न केवल भाषागत दूरी को पाटते है बल्कि एक प्रांत में बसे लोग सुदूर दूसरे प्रांत के बाशिंदों के जीवनगत तथ्यों से अवगत होकर उनके और करीब आ जाते हैं। यह अनुवाद-साहित्य निश्चित रूप से हिंदी साहित्य के बहुमुखी विकास का माध्यम बन सकता है ।

2-ए, उत्तरपल्ली, सोदपुर, कोलकाता-700110
मो-09433675671

अनंतिम

भाषा का समुचित सम्मान पत्रकारिता की पवित्र प्रतिज्ञा है और परम्परा से प्राप्त शब्दों की प्रतिष्ठा अधिक से अधिक बढ़ाना या कम से कम उसे कायम ही रखना उसके मार्गदर्शी दायित्वों में से एक है। इस महत्वपूर्ण परम्परा का श्रेष्ठ निर्वाह हमारे पूर्वज पत्रकारों ने भक्ति-भाव से किया, लेकिन समकाल के पत्रकारों ने इस ओर किन्चित ध्यान नहीं दिया बल्कि सत्ता और शक्ति के साथ नये पाखंड में कदम ताल करते हुये शब्दों का अवमूल्यन सायास और तेजी से किया है। यशस्वी शब्दों के अनर्गल और घटिया इस्तेमाल से उनके अर्थ दीन और श्रीहीन हो गये। इस पाप से वर्तमान पत्रकारिता को कोई यक्ष भी मुक्ति नहीं दिला सकेगा। यही वजह है कि 'क्रांति', 'जन-विद्रोह', 'लोक-जागरण', 'समाजवाद', 'प्रजातंत्र' 'संसद', 'चुनाव', 'वोट', 'प्रेम', 'आस्था' 'सौहार्द' आदि अब तक के अर्जित बहुमूल्य शब्द अपने आशय खोकर बाजारू हो गये हैं जिनकी कीमत दो टके की भी नहीं रह गई हैं। ये कोठे पर फेके जाने वाले पैसों की तरह जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं जहाँ शराफत मदमस्त पैरों तले रौंदी जा चुकी है।

शब्दों के अपमान के बाद भाषा को प्रदूषित करने में भी इस समय की पत्रकारिता का अच्छा-खासा योगदान है। देश में विभिन्न बोलियों के पारस्परिक मेल-जोल और संसर्ग से और हिन्दी-उर्दू के एकात्म से 'हिन्दोस्तानी' के रूप में एक ऐसी जुबान हमें मिली जिसकी अद्भुत ग्रहणशीलता के कारण व्यापक पैमाने पर उसे बोला-समझा गया। यह वह आदर्श माध्यम है जिसे अन्य लोक-बोलियों और प्रांतीय भाषाओं के साथ जोड़कर देश के कोने-कोने तक फैलाया और सर्वस्वीकृत कराया जा सकता है। शायद इस रास्ते देश की राष्ट्र-भाषा संबंधी समस्या का कोई उचित और सर्वसहमत हल भी निकल सकता। लेकिन इस समस्या को न्यस्त स्वार्थो की राजनीति ने उलझाकर ज्यादा से ज्यादा जटिल होने दिया और अंग्रेजी को स्थापित और प्रतिष्ठित करने की योजनाबद्ध साजिश को सफल होने दिया। इस षड्यंत्र में इस समय की पत्रकारिता भी बराबरी से शरीक है। उसने भारतीय भाषाओं के दम पर अपनी रोटी सेंकने के बावजूद अपनी भाषाओं की तरक्की और विस्तार पर कोई ध्यान नहीं दिया बल्कि अंग्रेजी का अधिकाधिक उपयोग करना शुरू कर दिया है, यहाँ तक कि जिन अर्थों को वहन करने वाले सुन्दर और समुचित शब्द भारतीय भाषाओं में हैं, उनके भी स्थान पर अंग्रेजी शब्दों के नियमित और निरन्तर इस्तेमाल को बाकायदा चलन में लिया जा रहा है। इस तरह की प्रदूषित भाषा का उपयोग गर्व और गौरव से किया जा रहा है। हालात यहाँ तक आ पहुँचे हैं कि संसद में महामहिम राष्ट्रपति द्वारा भी इस साल एक आयोजन में दिया गया पारम्परिक भाषण भी इस प्रकार की प्रदूषित भाषा से अछूता नही रहा। जहाँ सामान्य तौर पर हिन्दी या उर्दू या भारतीय भाषाओं और लोक-बोलियों के शब्दों को आसानी से भाषा में रखा जा सकता है, वहाँ इन पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी को खुलकर और ठप्पे से थोपा जा रहा है। ऐसे हालात में मशहूर शायर साहिर लुधयानवी के अंदाज में हमें ठीक ही पूछना चाहिए कि ''सनाख्वाने तस्दीके-मशरिक कहाँ हैं '' यानी '' जिन्हें नाज है हिन्द पर, वो कहाँ हैं '' भारतीय संस्कृति और हिन्दी की रक्षार्थ गर्वीले सांड़ की तरह डकराने वाले हमारे प्यारे संगठन आखिर कहाँ हैं ' इस जबाब को वे सब लूट के पैसों की घुट्टी में घोल कर पी गये।

अब जब वर्तमान पत्रकारिता अपने उद्देश्य, धर्म और लक्ष्य से भटक चुकी है, वैकल्पिक पत्रकारिता की बात उठना कतई स्वाभाविक और आवश्यक हो गया है। अपसंस्कृति और अवमूल्यों को पनाह दे रही इस पत्रकारिता के ऐन सामने वैकल्पिक पत्रकारिता के रूप में वे पत्र-पत्रिकायें हिम्मत से खड़ी हैं जो पूँजीवादी ताकतों के खिलाफ, मानवीय मूल्यों के पक्ष में अपनी पूरी संवेदनशीलता और दायित्व-बोध के साथ मैदान में हैं जिनका मूल स्वरूप साहित्यिक है लेकिन उनके संदर्भ साफ तौर पर राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक हैं। इसलिये इस संघर्ष में उन छोटी पत्र-पत्रिकाओं को नहीं भुलाया जा सकता जो निष्ठुर बाजारवाद के इस दौर में भी अपने संकल्प और साहस के साथ दृढ़ता से खड़ी हैं। हम उन परिस्थितियों के बारे में भली-भांति परिचित है जिनके बीच और जिनमें रहकर वे किसी तरह निकाली जा रही हैं। आर्थिक साधनों के भरपूर अभाव और प्रचार-प्रसार की सुविधाओं के बिना भी समय-असमय प्रकाशित कर पाने का उनका साहस और संघ वाकई काबिले-तारीफ है। वे विशुद्ध साहित्यिक मुद्दों पर सार्थक बहसें उठाती हैं। विज्ञापनों की किल्लत होने के बावजूद किसी पूँजीपति की गोद में नहीं बैठतीं। हालांकि वे गुटों की राजनीति में उलझी रहती हैं लेकिन उनके द्वंद्व साहित्यिक सैद्धांतिकी पर आधारित होते हैं। उनके संयाजक महत्वाकांक्षी हो सकते हैं लेकिन वे बेईमान नहीं हैं। संभव है कि प्रकाशित लेखों में उच्च कोटि की मीमांसा और परिपक्वता भले ही न हो लेकिन वे अस्पष्ट, बनावटी और गोलमोल नहीं हैं। कई रचनाओं में कलात्मकता की कमी नजर आ सकती है किन्तु विचार का अभाव या दुराग्रह नहीं है। अपनी एक निश्चित विचारधारा, वर्तमान हालात पर स्पष्ट पक्षधरता और सुविचारित लक्ष्य का निर्धारण ही उनकी पूँजी के तौर पर है। उनकी हिम्मत, हौसला, प्रतिबद्धता और दायित्व-बोध ही उनकी शक्ति है। वे बड़े पैमाने पर वितरित नहीं हो पातीं। उनकी ग्राहक संख्या भी बहुत कम होती है जो अनियमित और अनिश्चित होती है। बहुधा उनका सदस्यता-शुल्क का पैसा नहीं मिलता या बरसों अटका पड़ा रहता है। किसी एक सूत्रधार के न रहने पर अक्सर वे बंद हो जाती हैं। कहा जाता है कि मकान बनबाने में गांठ का सब कुछ चला जाता है पर मकान तो रहता है, लेकिन साहित्यिक पत्रिका निकालने में मकान ही चला जाता है। इतनी सारी मानसिक पीड़ा, शारीरिक कष्ट और आर्थिक कठनाईयों को सहते हुये जो लोग साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन में एकनिष्ठ होकर जुटे हैं, वे हमें बीते समय के उन पुराने अखबारों, रिसालों और पत्रिकाओं की बरबस याद दिला देते हैं जिन्होंने इसी तरह हर प्रकार की तकलीफ सहते हुये अपने छोटे-छोटे जन-समूहों में आजादी की आग जगाई थी और उनके सीनों में उसे हर तूफानी हवा के सामने जिन्दा रखा था। उनमें से बहुतेरों का नामोनिशान भी बाकी नहीं रहा, लेकिन वे अपने मक्सद में इस तरह कामयाब रहे कि हमारे सिर आज भी उनके प्रति आदर से झुक जाते हैं। आज फिर किसी ऐसी आग की तलाश है जो यकीनन हमारे ही आस-पास है। देखने की नजर भर चाहिये। भारत में पत्रकारिता का जन्म और विकास तत्कालीन प्रतिबद्ध साहित्यकारों के गतिशील नेतृत्व और मार्गदर्शन में हुआ, आज रंग और रूप के कुछ परिवर्तन के साथ समय वही वापस लौटा है और ऐसे में आज वैकल्पिक पत्रकारिता के लिये उन जैसे साहित्यकारों की जरूरत है और अपेक्षा है जो इस प्रतिकूल समय में मूल्यों की लड़ाई आस्था और विश्वास के साथ लड़ सकें।

बाजारू मीडिया की रौशनी की जगमगाहट इतनी तेज और तल्ख है कि इस बेमुरव्वत और बेगैरत चकाचौंध में इन्सान लगभग अंधा हो चुका है। इस लगभग अंधेरे में अपने आत्म-बल के जोर पर जो कुछ नजर आ सकता है, वह सिर्फ इन लघु पत्र-पत्रिकाओं के हाथों में थरथराती कंदील की लौ भर है। इस संकट के समय उम्मीद सिर्फ अब इधर से ही नजर आती है। स

मोबाइलः 94250-14166

Follow us on /RNTUniv www.rntu.ac.in

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL *(Formerly known as AISECT University)*

AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

Where aspirations become achievements!

nirf
INDIA RANKINGS 2017
(Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India)
Among all Central, State, Private and Deemed universities

Ranked amongst Top 20 Engineering Universities in India — competition success review

Ranked amongst India's Top 30 Private Universities 2018 — INDIA TODAY

Awarded ★★★★ Rating for Best University of India 2018 — CAREERCONNECT

BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 — करियर्स 360

Recognised as one of the Leading Private Universities of India — OUTLOOK

Ranked Number 2 in Madhya Pradesh 2018 — competition success review

COURSES OFFERED 2018-19

Engineering & Technology | Management | Arts | Commerce Computer Science & IT | Paramedical | YogaScience | Agriculture | Mass Communication | Law | Nursing | Education | Ph.D. & M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

AWARDS AND ACCOLADES

- Most Innovative University of Central India" by News 18
- RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
- RNTU Awarded as India's first Skill based University by Career Connect Magazine 2018
- ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
- World Education Summit 2017 & 2017 (Dubai)

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Contact us :
9893350135, 8085384458, 9826812783

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
City Office : 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016,
Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email : info@rntu.ac.in